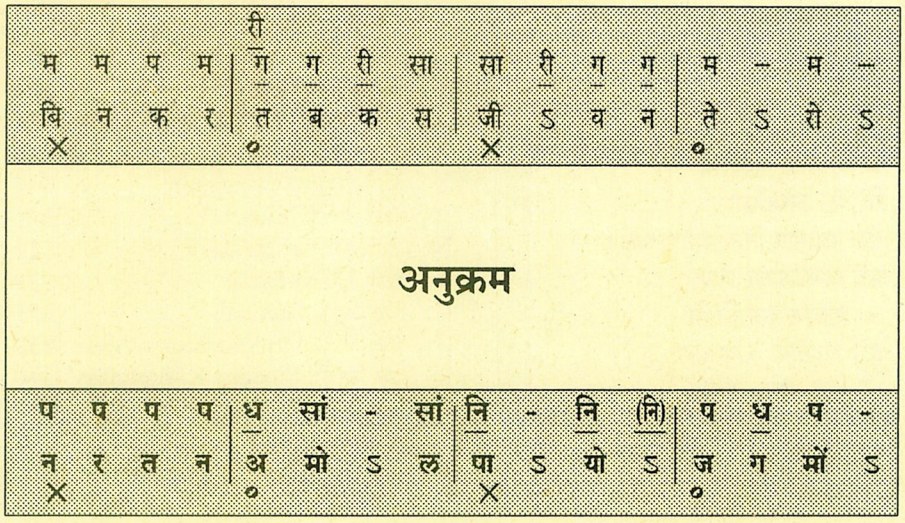

दुसरा खंड

विशिष्ट लेख (हिन्दी)

१. पं. एस.सी. आर. भट ११७
२. डॉ. सुमति मुटाटकर १२८
३. पं. प्रभाकर चिंचोरे १४०
४. प्रो. अमरेशचंद्र चौबे १४५
५. प्रो. वि. रा. आठवले १५०
६. श्री रघुनाथ सेठ १५६
७. श्री मनोहरकुमार गंगाजलीवाले १५९
८. सौ. सरोजिनी गंगाजलीवाले १६२
९. प्रा. वसंत राजूरकर १६५
१०. प्रो. मुकुंद विष्णु कालविंट १७०
११. पं. राजाभाऊ देव १७६
१२. प्रो. एम. आर. गौतम १८०
१३. श्री सुनील बोस १८३
१४. प्रो. गोविंद नारायण दंताळे १८७
१५. डॉ. पं. कुमार गंधर्व २०१
१६. डॉ. वसंतराव राजोपाध्ये २१३
१७. पं. वसन्तराव कुलकर्णी २१७
१८. श्री मदनलाल व्यास २२१
१९. डॉ. अरुणकुमार सेन २२६
२०. पं. सी. आर. व्यास २२९
२१. श्री बालाजी श्रीधर पाठक २३५
२२. श्री सीताशरण सिंह २३९
२३. कमला श्रीवास्तव २४३

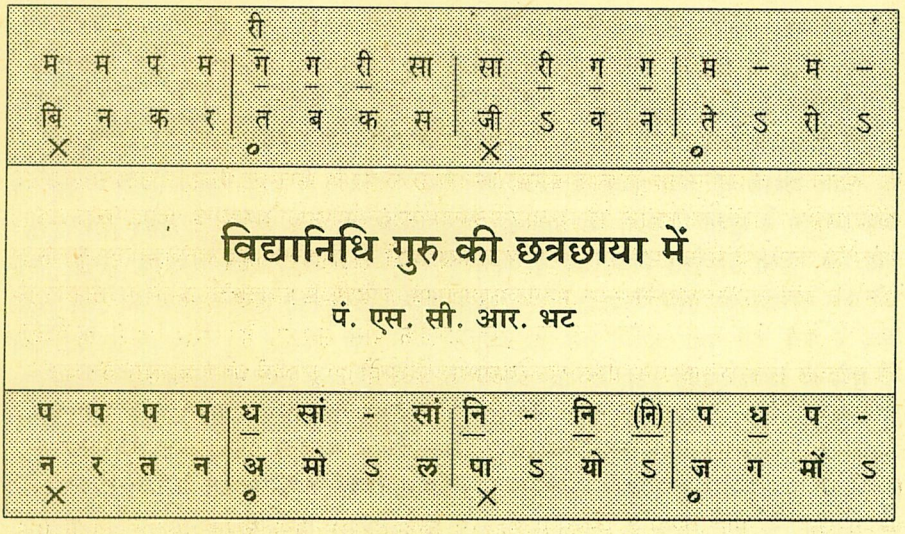

[आचार्य अण्णासाहब रातंजनकर के सर्वज्येष्ठ शिष्य। पैंतीस वर्ष गुरु की सन्निधि और मार्गदर्शन से लाभान्वित। अधिकारी ध्रुपद गायक तथा ख्यालिए। रसिकों के लिए भट और के. जी. गिंडे का युगल गायन ध्रुपद प्रस्तुति का एक अनोखा अनुभव था। संपूर्ण जीवन संगीत के लिए समर्पित। संप्रति 'श्रीवल्लभ संगीतालय' (सायन, बम्बई) में 'एकैडेमिक प्रिन्सिपल'।]

मुझे श्री अण्णासाहब के चरणों में मेरे ही आदि गुरु परम पूज्य स्वर्गीय श्री. कृष्णभट होनावरजी (जो कि पू. अण्णासाहब के भी गुरु थे) ने डाला। मेरे आदि गुरु कृष्णभट मेरा अगला संगीत का शिक्षण किसी अच्छे खानदानी उस्ताद से दिलवाने के हेतु ईसवी सन १९३२ में मेरे बड़े भाई साहब के साथ मुझे मुंबई लेकर आए थे। पर १९३२ से १९३५ तक मुझे किसी भी उस्ताद के सुपुर्द करने के प्रयत्नों में उन्हें सफलता प्राप्त हो नहीं सकी। क्योंकि उस जमाने में वे मुझे जिन लोगों से तालीम दिलवाना चाहते थे, वे सब अपने अपने ट्यूशनों में इतने व्यस्त रहते थे कि उनको और ट्यूशनें लेने के लिए समय ही नहीं रहता था। मेरा समय ऐसा ही बीतता जा रहा था, साथ साथ मेरी अगले शिक्षण की सुविधा न हो पाती थी। एक दिन हमारे गुरु श्री कृष्णभटजी की भेंट श्री अण्णासाहब के बड़े भाई साहब श्री. दत्ताराम रातंजनकर जी से हुई। यह भेंट करीब २०-२१ साल के बाद हो रही थी। इस कारण यह स्वाभाविक ही था । गुरु श्री कृष्णभटजी ने श्री अण्णासाहब के बारे में पूछा कि आजकल वे कहां हैं, क्या करते हैं। सब कुशल मंगल समाचार पूछा। उत्तर के हेतु श्री दादासाहब रातंजनकरजी ने उनसे कहा, "वे आजकल लखनऊ में मैरिस म्यूजिक कॉलेज के प्रिन्सिपल हैं, और कल ही दुर्गापूजा की छुट्टी की वजह से यहाँ आए हुए हैं, तथा २०-२५ दिन यहाँ रहनेवाले हैं। यह सुनकर गुरु श्री कृष्णभट बड़े ही खुश हुए। और तुरंत श्री दादासाहब रातंजनकरजी से कहने लगे कि चलो, मैं उन्हें अभी देखना चाहता हूं; यह कहकर उन्हींके साथ श्री अण्णासाहब को देखने उनके घर गए। श्री अण्णासाहब भी अपने आदि गुरु श्री कृष्णभटजी को २०-२१

साल के बाद देखकर बड़े ही प्रफुल्लित हुए और नमस्कार करते हुए तुरंत अपने दोनों तानपूरे मंगवाकर गुरु श्री कृष्णभटजी को उनकी ही सिखाई हुई चीजें गायकी के साथ गाकर सुनाईं।

श्री अण्णासाहब का गाना सुनकर श्री कृष्णभट बहुत ही धन्यता के साथ प्रसन्न हुए। अपने घर से निकलने के पहले उन्होंने श्री अण्णासाहब से पूछा कि मेरा एक शिष्य मेरे पास रहता है, आप जितने भी दिन मुंबई में रहेंगे उतने दिन उनको क्या कुछ सिखा पाएंगे? तब श्री अण्णासाहब ने खुशी से कहा कि अवश्य, आप उनको मेरे पास भेजिए, मैं जरूर सिखाऊंगा। उस दिन गुरुजी प्रफुल्लित होकर हर्ष के साथ घर आते ही, हमसे कहने लगे कि तुम्हारे लिये मैंने एक अच्छा गुरु प्राप्त किया है, कल सुबह उनके पास तुमको सीखने जाना है। अब इसके बाद वे जब जब यहां आवेंगे तब तब तुम्हें उन्हींके पास सीखना है। ऐसा गुरुजी के कहते ही मुझे तो इतना आनंद हुआ कि वह लिखने के लिए मेरे पास कोई भी शब्द नहीं हैं। क्योंकि मैं अपना अगला संगीताभ्यास करने के हेतु १९३२ से १९३५ तक कई लोगों से बहुत प्रयत्न करने के बावजूद मेरा सीखने का जम नहीं रहा था। इस कारण मैं आंतरिक दृष्टि से बहुत ही दुःखी था। जब हमारे गुरुजी ने मुझे उपरोक्त बात सुनाई कि "तुम्हारे लिए मैंने एक बहुत ही अच्छा गुरु प्राप्त किया है, कल सुबह तुम्हें उनके पास सीखने जाना है।" तो उसे सुनते ही उस दिन की रात एक साल की-सी लगी। सच बात तो यह है कि मुझे उस रात को पूरी नींद भी नहीं आई। इस वजह से दूसरे दिन सुबह थोड़ा जल्दी ही उठकर मेरा नित्यक्रम समाप्त करके मेरे गुरुजी के तैयार होने के एक घंटा पहले ही मैं तैयार होकर बैठा था। आखिर गुरुजी तैयार होकर मुझसे कहने लगे कि चलो अब बाबू के घर (हमारे आदि गुरु भी श्री अण्णासाहब को 'बाबू' कहकर पुकारते थे)। मैं गुरुजी के साथ निकला और पू. अण्णासाहब के घर पहुंचकर उनको नमस्कार करके एक ओर बैठ गया। उन्होंने मेरा नाम वगैरा पूछा और अंदर से तानपूरा मंगवाकर कहा कि तुमको जो कुछ भी आता हो, वह गाकर सुनाओ। मैंने पू. गुरुजी की सिखाई हुई राग तोड़ी की एक चीज गाकर सुनाई। हमारा तोड़ी का मसाला समाप्त होते ही मैंने गाना बंद किया, बंद करते ही मुझे पू. गुरुजी अण्णासाहब कहने लगे कि तानपूरा बंद मत करना, बजाते रहना। कहने लगे कि मैं जो कुछ भी गाऊंगा उसको उसी प्रकार स्वरों से (नोटेशन) तुम गाकर बताना कि वे किस राग के स्वर हैं। उन्होंने अलग अलग रागों के स्वर-समूह गाना शुरू किया। जिन रागों के स्वर मैं पहचानता था, उन रागों के नाम तथा स्वर-करण तो मैंने सौ फी सदी सही किया ही, साथ साथ जिन रागों के स्वर-समूह के नाम मैं नहीं जानता था, उनके नाम मैं नहीं बता पाया, तो भी उसका स्वर-करण तो मैंने सही किया। तब उनके साथ आए हुए विद्यार्थी श्री श्रीपाद बंदोपाध्याय से बोले कि इसको कहते हैं स्वरज्ञान। (गुरुवर्य श्री कृष्णभटजी की ओर उंगली दिखाकर) इसी प्रकार मुझे भी इन्होंने ही स्वरज्ञान दिया है", इस प्रकार स्वरज्ञान करना इनका ही हक है, कहके उन्होंने गुरुजी श्री कृष्णभटजी की तारीफ की।

इस प्रकार मेरी स्वरज्ञान की परीक्षा आधे घंटे तक हुई। पू. अण्णासाहब के पास ही उनके बड़े भाई साहब श्री दत्ताराम रातंजनकर बैठे थे। वे भी मुझसे कहने लगे कि अब मैं तुमसे एक आखिर का प्रश्न पूछता हूं। "बारह ही स्वरों का आरोह-अवरोह गाकर सुनाओ तो कैसे?" पहले तो मैं उनके प्रश्न का अर्थ समझा ही नहीं। हालांकि भिन्न भिन्न रागों में वे सब स्वर तो मैं गाता ही था, तब भी उस समय सारा संगीत बारह स्वरों के भीतर ही होता है, यह

मुझे मालूम ही नहीं था। इस वजह से मैंने गुरुजी श्री कृष्णभटजी से साफ कहा कि मुझे प्रश्न का अर्थ ज्ञात नहीं हुआ है। ऐसा कहते ही हमारे गुरुजी ने मुझसे पूछा कि 'सा' कितने हैं, 'री' कितने हैं, 'ग' कितने हैं ऐसे सब स्वर गिनो तो देखो कितने स्वर होते हैं? तो मैंने गिनकर देखा और कहा कि १२ स्वर होते हैं। बस, जैसे तुम यमन, भैरव इत्यादि रागों के आरोह-अवरोह गाते हो, वैसे ही बारह स्वरों का आरोह-अवरोह गाकर सुनाना है। इतना कहते ही प्रश्न समझ में आया और मैंने तुरंत बिना किसी प्रयास के बारहों स्वरों का आरोहावरोह गाकर सुनाया। तब मेरे आदि गुरुजी के साथ सब ही खुश हुए। इस प्रकार मैं गुरुजी के स्वरज्ञान की परीक्षा में फर्स्ट क्लास में उत्तीर्ण हुआ। इस प्रकार पू. अण्णासाहब स्वरज्ञान की परीक्षा लेते थे।

अब यह सब होने के बाद पू. गुरुवर्य अण्णासाहब कहने लगे अब तुम कल से ठीक सुबह ९.३० बजे तक आना। जबतक मैं मुंबई में हूँ तब तक आते रहना, तथा शाम को मैं यहां गाने बैठता हूं, हो सके तो तुम भी आना और मेरे साथ पीछे संगत करना। उनके दर्शन के पहले ही दिन से उनकी संगत करने का सौभाग्य मुझे उन्होंने ही प्राप्त करा दिया। इसीसे सिद्ध होता है कि यह उनकी कितनी बड़ी उदारता है। इस प्रकार मैं दूसरे ही दिन से नित्य उनके पास सुबह सीखने जाने लगा, डेढ़ दो घंटे तक सिखाते थे। शाम को उनके रियाज के समय भी उनके साथ पीछे बैठकर संगत करने को जाता था। ऐसे कुछ दिन गुजरने के बाद एक दिन उन्होंने पूछा कि "भट, तुमको गाना सीखना है ना? तो तुम लखनऊ क्यों नहीं आते हो? लखनऊ में ३-४ साल आकर सीखोगे तो तुम्हारा गाना बहुत कुछ अच्छा ही होगा। उसी दिन से मेरे मन में अब संगीत का अगला अभ्यास करने के लिए लखनऊ जाने की तमन्ना सवार हुई। मैंने अपने बड़े भाई से कहा कि मुझे किसी न किसी तरह से लखनऊ भेजने की व्यवस्था करो। मेरे घर की परिस्थिति या मेरे बड़े भाई की परिस्थिति ऐसी नहीं थी कि मुझे हर महीने १५-२० रुपये तीन चार साल तक भेज सके।

इधर पू. गुरुजी अण्णासाहब ने मुझे बताया कि कॉलेज की फीस हम माफ करेंगे, सिर्फ तुम्हारे रहने खाने की व्यवस्था कर लेना। देखिए यहां भी उनकी कितनी उदारता! अस्तु, अब लखनऊ जाने के बारे में विचार करते करते एक खास मित्र ने सुझाया कि हमारी ज्ञाति की एक संस्था है, वह विद्यार्जन करने के लिए 'लोन स्कोलरशिप' देती है, गाना सीखने के लिए देगी या नहीं यह नहीं कह सकते। तब भी प्रयत्न करने में क्या आपत्ति है? 'लोन स्कोलरशिप' (रु. २०) के लिए मैंने अर्जी दी, पर केवल दस रुपये ही मंजूर हुए। "बाकी के दस रुपये की व्यवस्था किसी न किसी प्रकार से हो जावेगी, तुम अपनी इच्छा के अनुसार लखनऊ जाकर अच्छी तरह से संगीत सीखना" मेरे बड़े भाई ने धैर्य दिया और उसी समय मेरा लखनऊ जाने का निश्चित हुआ। पू. गुरुवर्य अण्णासाहब के पहले पाठ से ही मुझपर परिणाम हुआ कि इनके पास सीखने के बाद और किसीके पास जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, और सच्ची बात यह है कि हम लोगों को ऐसी जरूरत पड़ी ही नहीं। इनके पास संगीत का अगाध भंडार था जो कि हम लोग अपने सात सात जनमों में भी हजम नहीं कर सकते, अस्तु।

इस प्रकार ईसवी १९३६ के जुलई महीने में मैं लखनऊ पहुँचा; वहां पहुँचते ही मुझे गुरुजी ने तीसरे वर्ष में याने मध्यमा के वर्ष में दाखिल कर लिया। मध्यमा में पू. गुरुवर्य नातू साहब सिखाते थे। उनकी कक्षा में हम केवल ६ ही महीने रहे। मध्यमा उत्तीर्ण होने पर पू. गुरुवर्य

अण्णासाहब की कक्षा में पहुँचा और लगातार गुरुजी के आखिर के क्षण तक उन्हींके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मेरे माता पिता के तथा बड़े भाई साहब के आशीर्वाद-बल से मिला। उनकी कक्षा में पहुँचते ही वे जो भी सिखाते थे, उसे ध्यानपूर्वक सुनकर जो भी समय मिलता था रियाज करने के सिवाय दूसरा कुछ नहीं करता था। उस जमानें में एक प्रथा थी कि गुरुजी जो भी सिखाते थे, उसे केवल अनुकरण करके गाने के सिवाय एकाध शंका कुशंका आई तो उसका निरसन करने के हेतु, गुरुजी को विद्यार्थी सादा प्रश्न भी पूछ नहीं सकता था। उदाहरण के लिए एक बार मेरे आदि गुरु कृष्णभट मुझसे कहने लगे कि "राग यमन के आरोहावरोह में 'म' तथा 'नि' को निकाल कर आरोहावरोह करो।" तो मैंने झट से 'सा री ग प ध सां, सां ध प ग री सा' करके आरोहावरोह गाकर सुनाया। बाद में कहने लगे कि राग यमन में सिखाए हुए सब पलटे (अलंकार) इसमें भी गाकर सुनाओ तो वह भी मैंने घंटे डेढ़ घंटे तक बिना गुरुजी की सहायता के आसानी से गुरुजी को गाकर सुनाया। यह सब सुनकर उनका चेहरा प्रफुल्लित प्रसन्न देखकर, मैंने कुतूहल से गुरुजी से पूछा कि, गुरुजी, इस राग का नाम क्या है? यह प्रश्न सुनते ही वे मुझपर बहुत नाराज हुए। कहने लगे कि राग का नाम सुनकर तुम्हें क्या करना है? जो भी मैं सिखाता हूं उसे चुपचाप सीखना। मुझे फालतू प्रश्न वगैरा नहीं पूछना और नाराज होकर चले गए। यही नहीं तो दंड के तौर पर मुझे दो दिन सिखाने के लिए भी नहीं आए। इस प्रकार के संस्कार मुझपर छुटपन से ही होने के कारण कोई गाता या बजाता हो, उनसे उस राग का नाम तक पूछने के लिए एक प्रकार का डर सा लगता था।

इसी कारण लखनऊ में गुरुजी पू. अण्णासाहब के पास भी कुछ शंका आई तो उनके निरसन के हेतु कोई भी प्रश्न पूछने में बहुत ही डर लगता था। वे जो भी सिखाते थे, उसे अच्छी तरह ध्यानपूर्वक सुनकर रियाज करने के सिवाय कोई भी प्रश्न डर के मारे उनसे भी नहीं पूछता था। इस कारण उनकी मेरी ओर भी और विद्यार्थियों के समान सामान्य दृष्टि थी। उनके पास में पहली बार जाते ही उन्होंने दो तीन महीने राग 'श्री' में नोंम्तोंम्, आलाप, धमार, बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल और तराना वगैरा गायकी के साथ सिखाया। उनकी क्लास याने रोज एक जमी हुई महफिल होती थी। क्योंकि क्लास में संगत करने के लिए मिर्जा महूमद अल्ली नामक एक सुरीले सारंगिये रहते थे। गुरुजी की एकाध हरकत किसी विद्यार्थी के गले से नहीं निकली तो वे उसे सारंगी पर निकाल कर हम लोगों का मार्गदर्शन करते थे। इस प्रकार गुरुजी की हरेक दिन की कक्षा पूरी महफिल ही हुआ करती थी। उनका गायन सिखाना सुनने के लिए हर रोज़ कक्ष के बाहर लोग जमा होते थे। इस प्रकार उनकी क्लास चलती थी। उनके दो तीन महीने की श्री राग की तालीम को मैंने डट के याद किया था। रियाज में मुझे आनंद भी आने लगा था। उस जमाने में कालेज को गर्मी की छुट्टी करीबन पूरी तीन महीने की होती थी। उस छुट्टी में मैंने बंबई में हमारे मित्रों के घर ५-६ बार जब जब यह श्री राग गाया तब गाना जम ही जाता था। श्रोतागण भी खुश हो जाते थे। इस प्रकार उस समय श्री राग पर एक आत्मविश्वास आया था, तथा वह हमारा प्रिय राग हो गया था।

गर्मी की छुट्टी समाप्त होने के बाद मैं फिर लखनऊ पहुंचा। उस जमाने में एक प्रथा थी कि हर शनिवार के दिन विद्यार्थियों का मंच-प्रदर्शन याने डिमोंस्ट्रेशन होता था। उसमें पहले कुछ विद्यार्थी गाया-बजाया करते थे। बाद में समापन कोई शिक्षक करते थे। १९३७ जुलै

में गर्मी की छुट्टी के बाद जब कॉलेज खुल गया तब पहले शनिवार को ही मुझसे पूछा गया कि क्या तुम गाओगे? ऐसे अवसर को उस समय मैं कभी छोड़ता नहीं था। मुझसे पूछते ही मैंने भी तुरंत संमति दी। उस समय ऐसी भी प्रथा थी कि विद्यार्थियों के मंच प्रदर्शन के समय श्रोताओं के नाते प्रिन्सिपल, वाईस प्रिन्सिपल, शिक्षक और सभी विद्यार्थी उपस्थित रहते थे। तो उस शनिवार के दिन मैंने गुरुजी के सिखाए हुए श्री राग को ही उनके सिखाए हुए नोम् तोम् आलाप से शुरू किया। मेरे षड्ज लगाकर श्री राग के तीन चार स्वरों का उच्चारण करते ही सामने ही बैठे हुए पू. गुरुजी नातू साहब ने मुझे शाबाश कहकर उत्साहित किया। उनके पास ही गुरुजी अण्णासाहब बैठे थे। उनका भी चेहरा प्रफुल्लित देखकर न मालूम मेरे शरीर में कौन-सा प्रवाह संचार होने लगा। मैंने नोम् तोम् आलाप खतम करके विलंबित ख्याल शुरू किया और उसमें उन्होंने जो भी बातें सिखाई थीं उन्हें गाना शुरू किया। हर बार मैं जब सम पर आता था तब शाबाशी मिलती थी। ख्याल का विस्तार करते समय अब गुरुजी मुझे अमुक स्वर पर मुकाम करके सम पर आओ वगैरा फरमाइशें वहीं की वहीं करने लगे। उन्हींकी कृपा से जो भी वे कहते थे वह सब गले से बिना आयास तुरंत ही निकल जाता था। जब मैंने छोटा ख्याल शुरू करके तान की शुरुवात की तब एक बार कहने लगे, अब ऐसी तान गाओ कि, तान तार सप्तक के पंचम से शुरू करके, मंद्र के पंचम तक जाकर, फिर तार के पंचम तक बिना कहीं रुके या अटके पहुँचो और तान को समाप्त करके सम पर आओ। यह भी फरमाइश गुरुजी की ही कृपा से उनके मन के मुताबिक निकल गई और सब शिक्षकगणों के साथ भी विद्यार्थियों ने तालियां बजाईं। यह पहला ही अवसर था कि गुरुजी के सामने मेरा जमकर गाना हुआ। गाना समाप्त होते ही गुरुजी नातू साहब और शिक्षकगणों ने मुझे बधाई दी।

बाद में गुरुवर्य अण्णासाहब ने भी मुझे बुलाकर शाबाशी देते हुए कहा कि, तुम्हारा खाना होने के बाद मेरे कमरे में आकर मिलना। यह उनका वाक्य ही मेरे लिए भरपूर खाना था। क्योंकि मुझे तो उनका इतना डर था कि उनके कमरे से आते जाते समय उनके कमरे में झांककर देखने के लिए भी संकोच लगता था। ऐसी हालत में, मेरे रियाज पर प्रसन्न होकर गुरुजी का मुझसे 'मेरे कमरे में आकर मिलो।' कहना, मेरे सांगीतिक जीवन का पहला ही अवसर तथा सौभाग्य का दिन था। रसोई में आकर देखा तो खाना तैयार होने के लिए देर थी, यह देखकर मैं बेचैनी के साथ वैसे ही गुरुजी के कमरे में गया। उनके कमरे में जाते ही 'खाना खाया क्या' यह पूछना वे भी भूल गए होंगे। यदि यह वे पूछते तो मुझे झूठ ही बोलना पड़ता था। खैर! उनके कमरे में जाते ही कहने लगे कि बैठो। मैं एक ओर बैठा। वे कहने लगे कि आज तुम्हारा गाना अच्छा हुआ। ऐसे ही नियमित अभ्यास करते रहोगे तो तुम अच्छा ही गाओगे। यह कहकर मुझे प्रोत्साहित किया। कहने लगे कि "देखो मैंने तुमको इसलिए बुलाया था कि तानें गाते समय तानोंको इस प्रकार गाना चाहिए" और स्वयं राग पूरिया धनाश्री में गाकर सुनाया और मुझसे उनके अनुसार घंटा भर गवा लिया। उनकी सूचनाएँ सुनकर जब मैं अपने कमरे में जाने निकला तब कहने लगे कि सुनो, मैं जब जब भी यहां गाऊंगा तब मेरे साथ तानपूरा लेकर संगत करने बैठना, मेरे बुलाने की राह नहीं देखना। तुमको रियाज करते समय कोई कठिनाइयां महसूस होती हों, मेरे पास आकर पूछना। किसी प्रकार का संकोच न करना। यह सुनकर मैं तो चकित हुआ। इतना आनंद हुआ कि, उस आनंद के मारे मुझे भूख भी

नहीं लगी, साथ साथ रात भर नींद भी नहीं आई। इसी दिन से मैं उनके विशेष निकट सहवास में आया। कोई भी विद्या गुरुजी को भरपूर पैसे देकर कभी भी नहीं आती, विद्या तब ही आती है जब कि शिष्य लगन से तनमन से अपने गुरुजी को उनके मन के मुताबिक परिश्रम तथा रियाज करके संतुष्ट या प्रसन्न करता है। वही अपने गुरुजी की निकट से निकट संगत पाता है और उनसे तनमन से विद्या पाता है। सच बात तो यह है कि अपने गुरुजी ट्यूशनें तो करते ही नहीं थे। उन्होंने जिन्हें जिन्हें सिखाया है, उनसे एक फूटी कौड़ी भी नहीं ली है। यहां तक कि उनकी कुछ सेवा करने जावें तो उससे वे बहुत नाराज होकर उन्हें उससे रोकते थे। ऐसा उनका अनोखा स्वभाव था। उपर्युक्त कथन से वे अपने शिष्यों की ओर कितने तत्पर थे तथा कैसे प्रोत्साहन देते थे यह विदित होता है।

न जाने क्यों पू. गुरुजी को आकाशवाणी में गाना पसंद नहीं था। ईसवी सन १९३७ की बात है। आकाशवाणी के कई अधिकारियों ने उनको आकाशवाणी में गवाने का प्रयत्न किया। पर उन लोगों के उस प्रयत्न को सफलता प्राप्त हो नहीं सकी। आखिर पू. गुरुजी के ही एक मित्र ने, जो कि देहली आकाशवाणी में ही स्टेशन डाइरेक्टर थे, पू. गुरुजी पर जादू करके आकाशवाणी में गाने के लिये राजी किया। उनके राजी होते ही देहली आकाशवाणी में उनको गाने के लिए निमंत्रित किया गया। उस जमाने में आकाशवाणी पुरानी देहली में थी। उनके गाने में गाने की संगत करने के लिये मैं ही गया था तथा तबले की संगत के लिए श्री सदाशिवराव गुरव को गुरुजी ले गये थे। तभी से गुरुजी ने आकाशवाणी में गाना शुरू किया। उसी समय पू. गुरुजी नातू साहब का भी आकाशवाणी में कार्यक्रम रखा गया था। हम लोग सब वहां के एक प्रतिष्ठित कश्मीरी सज्जन श्री. शिवराज बहादुर कौल साहब के घर में ठहरे हुए थे। उनका घर काफी बड़ा था। पू. अण्णासाहेब तथा पू. नातू साहब के आकाशवाणीके कार्यक्रम बहुत अच्छे हुए क्योंकि सारंगी की संगत के लिये सारंगी-नवाज स्वर्गीय उस्ताद बुंदू खाँ साहब भी रहते थे। पू. गुरुजी के सब आकाशवाणी के कार्यक्रम समाप्त होने पर एक दिन शाम को श्री शिवराज बहादुर जी ने अपने घर पू. गुरुजी की एक खास महफिल रखी थी। उस महफिल में संगीत के खास जानकार लोगों को ही आमंत्रण दिया था। वहां भी सारंगी पर संगत के लिये उस्ताद बुंदू खाँ साहब को ही बुलाया था। राग पूर्वी से गाना शुरू हुवा। उस समय गुरुजी ३७ साल उमर के जवान थे। बैठते ही आवाज लग जाती थी और बखूबी महफिल जम जाती थी। यद्यपि मैं तानपूरे पर संगत करने के लिये बैठा था, मुझे ज्यादा साथ-संगत करने का अवसर ही नहीं मिला। क्योंकि ये दोनों राग के वातावरण में एकदम मगन हो गये थे। गुरुजी अपनी आलाप-तानें गाते तो बुंदू खाँ साहब वाह वाह करते, और बुंद्र खाँ साहब के बजाते समय गुरुजी वाह वाह करते। बीच बीच में श्रोताओं की वाह वाह। इस प्रकार उस दिन करीब दो घंटे गुरुजी पूर्वी राग ऐसा गाये कि दो घंटे का समय कैसा निकल गया यह किसीको भी मालूम नहीं हुआ। ऐसा ही लगता था कि गाना शुरू होकर आधा ही घंटा हुआ। रात को अपने कमरे में गपशप करते समय पू. गुरुजी से पू. गुरुवर नातू साहब भी कहने लगे कि बाबूराव, आज का पूर्वी राग अप्रतिम हुआ। गुरुजी के पूर्वी राग समाप्त करने के बाद उस्ताद बुंदू खाँ साहब भी मुस्कुराते हुए गुरुजी से कहने लगे कि पंडित जी वाह, वाह, क्या बात है! आजकल रागों को इस नजर से कौन देखता है? ऐसी तालीम कहां मिलती है? वगैरा बातें होने के बाद उत्तरांग की महफिल शुरू हुई। उस दिन गुरुजी करीब साढ़े नौ

बजे तक गाये। मुझे पू. गुरुजी का गाना बहुत सुनने को मिला। पर श्री शिवराज बहादुर के यहां की देहली की वह महफिल तो और ही कुछ थी। सुननेवाले और भी चाहते थे कि पू. गुरुजी गाएं, पर देर हो चुकी थी, इस कारण उस दिन की महफिल वहीं समाप्त हुई। यह महफिल भी मेरे सांगीतिक जीवन की एक अनमोल महफिल थी, जिसका वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता, अस्तु।

उस जमाने में हर साल पू. गुरुजी ग्वालियर के माधव संगीत विद्यालय की परीक्षा लेने के नाते करीब एक महीने के लिए ग्वालियर जाते थे। प्राथमिक कक्षा से विशारद तक की परीक्षा वे ही लेते थे। यह सब खत्म करने के लिये महीना भर जरूर लगता था। पू. गुरुवर्य राजाभैय्याजी पूंछवाले उनके उस वास्तव्य का पूरा लाभ उठाते थे। हर रोज परीक्षा के बाद किसी न किसी के घर उनकी महफिल रखी जाती थी, जिसका लाभ वहां के सब विद्यार्थियों को तथा वहां के निवासियों को मिलता था। मेरे ख्याल से पू. गुरुजी ग्वालियर में जितना गाए होंगे, उतना और कहीं भी गाए नहीं। मुझे भी गुरुजी के साथ ग्वालियर जाने का मौका कई बार मिला, और उस समय उनकी खूब संगत करने का अवसर भी मिला। उनकी एक खास बात यह थी कि अपना विद्यार्थी संगत करके जबतक सम पर नहीं आता तबतक बीच में कभी भी शुरू नहीं करते। जब अपना विद्यार्थी एकाध अच्छा आलाप-तान गाकर सम पर आता तो, वहीं के वहीं हँसते हुए वाह कहकर उन्हें प्रोत्साहन देते थे। ऐसा उनका अनहोना स्वभाव था। यह कितनी बड़ी बात है!

जब मैं लखनऊ में छात्रावास में रहता था तब एकाएक विद्यालय की छात्रों की संख्या इतनी बढ़ गई कि सिखाने के लिये शिक्षक कम पड़ने लगे तब गुरुजी ने एक तरकीब निकाली कि, ४ थी या ५ वीं कक्षा के जो विद्यार्थी दो-एक प्राथमिक कक्षाएं लेने लायक हों, उन्हें दो-एक क्लास देकर शिक्षक की कमी की समस्या को हल करें। ३-४ विद्यार्थियों को उन्होंने चुना। उन विद्यार्थियों में मैं भी एक था। मैं उस समय ४ थी कक्षा में पढ़ता था। रोज की तरह मैं अपने कमरे में रियाज कर रहा था तब उनका चपरासी मेरे कमरेमें आकर मुझसे कहने लगा "भट बाबू, आपको प्रिन्सिपल साहब बुलावत हैं।" यह सुनकर मैं इतना घबराया कि मैं गलत रियाज तो नहीं कर रहा था न, ऐसे कई प्रश्न मेरे मन में आने लगे। डरते डरते गुरुजी के दफ्तर में पहुंचे। वहां जाते ही गुरुजी कहने लगे कि बैठो। मेरे एक ओर बैठते ही मुझसे पूछने लगे कि क्यों भट, एकाध प्रथम वर्ग की कक्षा को तुम पढ़ाओगे? यह सुनते ही मेरी मति सुन्न हुई। क्योंकि मैं तो लखनऊ में संगीत सीखने के लिए गया हूं, और पू. गुरुजी मुझसे पूछ रहे हैं कि एकाध प्रथम वर्ष की कक्षा पढ़ाओगे क्या! उनके इस प्रश्न को क्या जवाब देना यही मुझे सूझा नहीं और कुछ देर चुप रहा। यह देखकर जरा ऊँचे स्वर में कहने लगे कि पढ़ाना नहीं चाहते हो? यह उनका ऊँचा स्वर सुनते ही मैं समझा वे नाराज हो रहे और मैंने घबराते हुए गुरुजी से कहा कि क्लास नहीं लेना चाहता हूं ऐसी बात नहीं है, हां एक शर्त पर क्लास लूंगा! शर्त! काहे की शर्त? शर्त याने ऐसी कोई बड़ी शर्त नहीं है। मैंने आज तक १०-१५ विद्यार्थियों को भी सिखाया ही नहीं है। यदि आप हमारी कक्षा में कम से कम दो दिन आकर मेरा सिखाना सही मार्ग पर है या नहीं, इस बारे में मार्गदर्शन देते रहेंगे तो मैं खुशी से सिखाऊंगा। जब मैंने यह कहा तब गुरुजी प्रसन्न मुद्रा से कहने लगे, "जरूर आऊंगा, मैं यहां किसलिये हूं? तुमको सिखाते समय कोई भी कठिनाई महसूस होती हो, बिना किसी

संकोच के मुझसे पूछना, मैं उसे दूर करूंगा। तो उन्होंने फिर पूछा, तुम एकाध क्लास पढ़ाओगे न!'' और जब मैंने हां कहा तब प्रसन्न चित्त से कहने लगे कि अब तुम जा सकते हो।

दो तीन दिन बाद ही मेरे जिम्मे एक प्रथम वर्ग की कक्षा आई। इसी क्लास में प्रसिद्ध पार्श्वगायक तलत महमूद ने नाम दर्ज किया था। इस प्रकार जब मैं ४ थी कक्षा में पढ़ता था उस समय छोटी कक्षाओं को पढ़ाने भी लगा था। मेरी कक्षा में करीब २०-२१ विद्यार्थी थे। मेरी क्लास में पू. गुरुजी भी हफ्ते में दो तीन दिन बराबर आते थे और बीच बीच में स्वयं सिखाया करते थे। उनका सिखाना तो मुझे ही परोक्ष मार्गदर्शन रहता था कि इस प्रकार से भी सिखाना चाहिए। सच बात तो यह है कि वह एक प्रकार का 'टीचिंग ट्रेनिंग' ही हुआ करता था। मैं वहां के जो प्रथम वर्ष के वर्ग चलते थे, उसका बारीक नजर से निरीक्षण करता ही था और देखता था कि विद्यार्थियों को साधारणतया रागों के स्वर बैठते ही, प्रारंभिक कुछ १०-१५ अलंकार सिखाकर बाद में पाठ्यक्रम के सरगम लक्षणगीत गीत वगैरा सिखाना शुरू करते थे। ये प्रारंभिक १०-१५ अलंकार अच्छा स्वरज्ञान कराने के लिये पूरे नहीं पड़ते हैं, ऐसा मुझे लगता था। एक दिन मैंने गुरुजी से पूछा कि इन १०-१५ अलंकारों के सिवाय और भी कुछ वक्र अलंकार क्या मैं सिखा सकता हूँ? जरूर, तुम जितने अलंकार सिखा सकते हो उतने अलंकार सिखाओ। प्रथम वर्ग की कक्षा के विद्यार्थियों को साल डेढ़ साल में अच्छा स्वरज्ञान करवाना है, यही लक्ष्य प्रथम कक्षा में होना चाहिए। कक्षा में सभी प्रकार के विद्यार्थी रहते हैं। कुछ कुशाग्र बुद्धि के, कुछ साधारण, कुछ बिलकुल कच्चे भी रहते हैं।

ऐसे ही एक दिन मैं अलंकार सिखाता था। गुरुजी मेरे पास आकर बैठे और बारीक निरीक्षण करके एक विद्यार्थी को चुन कर उससे कहने लगे कि, ''अब तुम, जैसे तुम्हारे मास्टर साहब सिखाते थे वैसे ही उस अलंकार को औरों को सिखाओ भला।'' बाद में सब लोग उसे गाएं। ऐसा कहके, मेरे कान में कहने लगे कि इससे तुमको थोड़ा आराम मिलता है। और साथ साथ उन विद्यार्थियों का हौसला भी बढ़ जाता है। और हुआ भी वैसा ही। उस विद्यार्थी ने अलंकार को पूरा करते ही, दूसरे ने अंगुली उठा कर कहा कि सर क्या अब मैं सिखाऊं? गुरुजी मेरी ओर हंसते हुए देखकर उन्हें कहने लगे कि तुम और अलंकार सिखाओ। इस प्रकार हम लोगों को सिखाने में भी अमूल्य मार्गदर्शन मिलता था। इस प्रकार से सिखाने जावेंगे तो प्रथम वर्ग के विद्यार्थियों को जिस दर्जे का स्वरज्ञान होना चाहिए, वह अपने आप हो ही जाता है। सच बात तो यह है कि जब ये सब विद्यार्थी अपना पाठ्यक्रम पूरा करके परीक्षा के लिये बैठे तब उनमें से ५-६ विद्यार्थी प्रथम श्रेणी में और बाकी के सब दूसरी श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। तीसरी श्रेणी में कोई भी नहीं था। मेरी कक्षा का निर्णय जब गुरुजी ने देखा तो मुझे बुलाकर हंसते हंसते कहने लगे कि ''भट, तुम्हारी कक्षा का निर्णय सब से अच्छा लगा है, बधाई!'' मैंने कहा कि ''सर, यह आप ही की कृपा से हुआ। इसीलिये मैंने आपसे कहा था कि मेरी कक्षा में हफ्ते में कम से कम दो बार आना ही पड़ेगा। आप आते रहे और इसीलिए ऐसा फल निकला। यह बधाई तो आपकी ही है।'' इससे मालूम हो सकता है कि, उनका दृष्टिकोण तथा अंत:करण विद्यार्थियों के बारे में कैसा रहता था। इसके बाद उन्होंने तुरंत मुझे तीसरा तथा चौथा दर्जा पढ़ाने को दिया। साथ साथ कहने लगे कि सिखाते समय कोई भी कठिनाई लगी तो मेरे पास आकर पूछना। मैं भी उनके कथन का पूरा पूरा फायदा उठाता था। कोई भी शंका आई तो तुरंत उनके पास जाकर उनसे चर्चा करके

शंका का पूरा निरसन कर लेता था । अब तक गुरुजी के पास मेरा ऐसा नाता जुड़ा हुआ था कि कोई भी बात उनसे पूछने में संकोच नहीं लगता था । सिखाने के बारे में भी अमूल्य मार्गदर्शन का यह सौभाग्य मुझे उनसे ही अपने आप प्रेम से मिला ।

हम लोग उनके सही मार्गदर्शन से ही आगे जा रहे हैं, यह देखकर उनको हमे कुछ विद्यार्थियों पर खूब भरोसा था । उन विद्यार्थियों में मैं भी एक था । जब डॉ. केसकर साहब आकाशवाणी के मिनिस्टर थे तब हम दोनों 'मैं तथा श्री गिंडे साहब' ध्रुपद धमार का युगल-गान गाने लगे थे । एक बार आकाशवाणी के संगीत सम्मेलन में हम दोनों का युगल-गान था और वह कार्यक्रम सवेरे था । ऐसे समय ऐसी एक प्रथा थी कि कलाकार जो राग गाते हैं उसकी एक सूची उनको आकाशवाणी को देनी पड़ती थी । आकाशवाणी उसी सूची से राग चुनकर कलाकार को भेजती थी और उन्हें वही राग गाना पड़ता था । उस समय डॉ. सुमति मुटाटकरजी आकाशवाणी की चीफ प्रोड्यूसर थीं । इसी समय गुरुजी भी कुछ काम से देहली गये थे और डॉ. सौ. सुमतिजी के यहाँ ही ठहरे हुए थे । सौ. सुमतिजी ने सहज में ही पू. गुरुजी से पूछा कि श्री गिंडे जी तथा भटजी का संमेलन में सबेरे गाना है । इन दोनों को कौन-सा राग गाने के लिये कहूं? तब गुरुजी ने उनसे कहा कि राग लक्ष्मी तोड़ी लिखो । सच बात यह थी कि हम लोगों ने यह राग सीखा ही नहीं था और किसी से सुना भी नहीं था । एक दिन श्री गिंडे साहब को पू. गुरुजी का एक पोस्टकार्ड आया । उसमें लिखा था कि तुम दोनों का आकाशवाणी संगीत सम्मेलन में सबेरे कार्यक्रम है । इस कार्यक्रम में तुम दोनों को राग लक्ष्मी तोड़ी गाना है । अमुक दिन बंबई आनेवाला हूं और तीन दिन रहूंगा । उस समय उस राग को सीख लेना । वह पत्र श्री गिंडे साहब ने मुझे दिखाया । वह पत्र पढ़ते ही मेरी मति तो सुन्न हो गई । मन में लगा कि यह अपने पर कौन-सा संकट आया । क्योंकि यह एक राग ऐसा है कि इसको महफिल में गाकर रंग जमाना छोड़िये, कुछ आकर्षक रीति से भी गाकर रिझाना बड़ा कठिन कर्म है । मैंने तो हमारे सांगीतिक जीवन में यह राग और किसीसे भी सुना नहीं । यह राग हम लोगों को गाने को जब निश्चित हुआ, तब देहली में भी पू. गुरुजी के पास इस बारे में चर्चा हुई कि क्या वे दोनों (श्री गिंडे तथा भट) यह राग जमकर तो छोड़िए, भली प्रकार गा पाएंगे ? हम लोगों ने तो सुना कि ऐसा पूछनेवालों से गुरुजी ने आत्मविश्वास के साथ कहा था कि वे जरूर गाएंगे । इस प्रकार उनको अपने कुछ विद्यार्थियों पर भरोसा था । खैर !

जिस तारीख को पू. गुरुजी आनेवाले थे, उस प्रकार वे आये, आते ही उन्होंने शाम को १॥-२ घंटा आलाप सिखाये, उसी समय एक धमार की स्थायी की बंदिश भी बांधकर सिखायी और कहने लगे कि कल सुबह आना । उस समय अंतरा हो जाएगा । दूसरे दिन जब सुबह पहुंचे फिर १॥-२ घंटे आलाप सिखा कर अंतरा भी सिखाया । इस प्रकार गिनकर उन्होंने तीन दिन इस राग की तालीम दी और कहने लगे कि, अब इस राग की कल्पना तुम दोनों को आयी होगी । अब इसका रियाज करना और जमकर गाना । मैं मन ही मन सोच रहा था कि यह कौन-सा संकट हम लोगों पर आया है । अभीतक राग ठीक समझ में नहीं आया है और ये (पू. गुरुजी) कल जा रहे हैं । ..... इत्यादि विचार मन में आने लगे क्योंकि पहले दिन आलाप सिखाते समय आलाप का जो रंग था वह दूसरे दिन नहीं रहा, और तीसरे दिन तीसरा ही रंग रहा । इस कारण राग की पूरी कल्पना ही मन:पटल पै नहीं आई थी । तब

मैने गिंडे साहब के कान में कहा कि "छोटबा", (हम लोग प्यार से उनके 'छोटबा' कहके पुकारते हैं) पहले दिन के आलाप में एक रंग था, दूसरे दिन के आलाप में दूसरा और तीसरे दिन के आलाप में तीसरा ही रंग था, इस वजह से राग की पूरी शकल मन में नहीं आयी है । इसलिये नमूने के लिये कुछ आलाप लिख कर देने लिये गुरुजी से कहो न ।" तब यह कहने की बात उन्होंने मुझपर ही छोड्डी । मैंने बड़े ढाढ़स के साथ उपर्युक्त बात उनसे कही और कुछ आलाप नमूने के तौर पर लिख देने के लिए विनति की । मेरी यह बात सुनते ही वे हंस पड़े, और कहने लगे कि तुम लोग इसे ध्यानपूर्वक अच्छी तरह से रियाज करोगे तो इसे अच्छी तरह से ही गाओगे, कहकर वहींका वहीं कागज पेन लेकर तुरंत ६-७ स्थाई तथा अंतरे के आलाप लिखकर दिए । बाद में उन आलापों के आधार पर हम दोनों उस राग के पीछे पड़े और उस राग को थोड़ा-बहुत तैयार किया । ८-१० दिन उस राग का रियाज होने पर उस राग की थोड़ी कल्पना मन में आई और मन पर की धड़कन जरा-सी कम हुई । कार्यक्रम के लिए देहली जाते जाते राग तैयार हुवा ही था, उसी राग को उस कार्यक्रम में गाये भी, गुरुजी के ही शुभाशीर्वाद एवं कृपा से उस दिन न जाने हम लोगों के शरीर में कौन-सा प्रवाह संचार कर रहा था। हम लोगों का वह कार्यक्रम इतना जम गया कि उसकी तिलमात्र भी कल्पना स्वयं हम लोगों को भी नहीं थी । श्रोतागण में विद्वज्जन- जैसे स्वर्गीय पू. मुश्ताक हुसैन, उनके लड़के, (स्वर्गीय) पू. अल्ताफ हुसैन, (स्वर्गीय) पू. अंतूबुवा, (स्वर्गीय) पू. गजाननबुवा, (स्वर्गीय) पू. अजमत हुसैन, स्वयं (स्वर्गीय) केसकर साहब इत्यादि कई गुणीजन थे । इन सब ने कार्यक्रम की तारीफ हमारे पू. गुरुजी के पास की और हम लोगों को भी बधाई दी । इससे हम कल्पना कर सकते हैं कि पू. गुरुजी को अपने कुछ विद्यार्थियों पर कितना भरोसा रहता था, जो कि स्वयं हम लोगों को नहीं था ।

एक समय की बात है । लखनऊ में कुछ साल पहले मैं तथा पंडित वी. जी. जोग एक ही मकान में एक साथ रहते थे । सन १९३८ में लखनऊ में आकाशवाणी शुरू हुई, तब हर महीने में बंबई से एक या दो कलाकारों को लखनऊ की आकाशवाणी में गानेके लिये आमंत्रित किया जाता था । इस महफिल में पू. गुरुजी अण्णासाहब, नातू साहब और कुछ खास श्रोतागण आते थे । ऐसे ही एक समय हमारे यहां श्री कागलकर बुवा आए थे वे ऊँचे स्वर पर याने सफेद चौथे स्वर पर गाते थे । बडे सुरीले तथा तैयार गाते थे । आवाज में एक प्रकार का जोश था । उनकी भी हमारे यहां एक महफिल थी । उस महफिल में श्री बुवाजी ने भूपाली राग पौने दो, दो घंटे तक ऐसा गाया कि महफिल जम गई । वे सचमुच बहुत ही अच्छे गाये । भूपाली राग खत्म करते ही उठे, और पू. गुरुजी के पास बैठकर उनसे कहने लगे कि अण्णासाहब, अब मुझे आपका गाना सुनना है । गुरुजी ने शुद्ध अंत:करण से कहा कि बुवासाहब आज आप इतना अच्छा गाये हैं कि समां बांध दिया है । वाह, क्या बात है ! इसके बाद मेरा गाना याने गाने पर जुल्म करना होगा । आप ही महफिल चालू रखिये न । ऐसा साग्रह कहने लगे । गुरुजी ने कहा "मेरा गाना मैं आपको जरूर सुनाऊंगा ।" इसपर भी श्री बुवासाहब माने नहीं । बार बार कहने लगे कि आप अभी गाएं तो अच्छा होगा । पू. गुरुजी के पास पू. नातू साहब बैठकर उनकी ये सब बातें सुन ही रहे थे । बुवाजी वही बात दोहरा रहे हैं, यह देखकर पू. नातू साहब गुरुजी से कहने लगे कि बाबूराव, बुवाजी जब इतना आग्रह करते हैं तो गाइए न, उसमें कौन-सी बड़ी बात है? पू. नातू साहब ने जब ऐसा

कहा, तब "अच्छी बात है, थोड़ी देर गाऊँगा" कहके वे उठे और मुझसे कहने लगे कि थोड़े गुनगुने पानी में थोड़ा-सा नमक डाल कर लाना और मेरे लिये थोड़ी चाय बनाना । चाय तो तैय्यार ही थी । मैंने तुरंत नमकवाला गुनगुना पानी दिया और उससे कुल्ला करके गुरुजी चाय पी रहे थे । गुरुजी हमेशा काली दो स्वर पर गाते थे । मैंने गुरुजी से पूछा कि स्वर थोड़ा उतारूं क्या? गुरुजी तुरंत कहने लगे "ना; ना स्वर उतारना नहीं, वही स्वर रहने दो।" फिर राग शाम कल्याण के नोम् तोम् वगैरा गाकर वातावरण बना लिया । बाद में जो परज राग शुरू किया वह तो मानो इतना जम गया कि जैसे हिमालय पर्वत! उतने ऊँचे स्वर में भी गुरुजी तार सप्तक के पंचम स्वर तक जाकर आते थे । श्री बुवा साहब तो यह परज सुनते ही वाह करते हुए मुंडी नीचा करके बैठे थे । यह राग खतम होते होते रात का एक बज रहा था । गुरुजी ने अपना गाना खतम करते ही बुवा साहब गुरुजी के हाथ पकड़ कर कहने लगे कि अण्णासाहब, सचमुच मैंने इतना विस्तृत परज राग, वह भी जमकर गाया हुआ आजतक और किसीका सुना ही नहीं । आज ही सुन रहा हूं । परज राग तो गाने का आपका ही हक है । यों कहकर उन्हें अंत:करणपूर्वक बधाई दी । उन्होंने सोचा होगा कि यह दुबली पतली वामनमूर्ति क्या प्रताप दिखाएगी? पर मामला सब उलटा ही हुआ । हालांकि बुवासाहब भी एक वामनमूर्ति ही थे, पर फरक इतना ही था कि दूसरी पहलवान की वामनमूर्ति थी । अस्तु ।

गुरुजी का वह गाना सुनने के बाद बुवा साहब लखनऊ से जाने तक उस परज राग की तारीफ करते रहे । हम लोग जब बंबई आए तब भी जब उनके दर्शन होते थे तब उस परज राग की तारीफ करते थे । उस समय लखनऊ में जो कलाकार आते थे, उन सबके पीछे हम लोगों ने (मैं, श्री गिंडे तथा श्री कायकिणी) शुद्ध अंत:करण से तानपूरे पर साथ-संगत करके मेहमान कलाकारों को प्रफुल्लित किया है । हमने तो अपने विद्यार्थियों के पीछे भी तानपूरा छेड़कर संगत की है । इससे गुरुजी प्रसन्न ही होते थे । इसके लिये हम लोगों को उन्होंने कभी टोका नहीं । क्या आजकल ऐसा दृश्य कहीं देखने को मिलता है? इस प्रकार हमारे गुरुजी का अंत:करण था ।

हमारी विद्यार्थी दशा में हमने पू. गुरुजी की सैकड़ों महफिलें सुनीं । कौन-सी महफिल सबसे अच्छी थी इसकी आज भी हम तुलना नहीं कर सकते । गाने के लिए बैठते ही उनका गाना जम ही जाता था । उनका गाना जमा नहीं ऐसा कभी हुआ ही नहीं। ग्वालियर में भी ऐसा ही होता था । एक बार स्वयं पू. गुरुवर्य राजाभैय्या पूंछवालेजी कहने लगे कि बाबूराव का गाना याने एक स्वच्छ आइना है । वे गाने बैठते हैं तब गाना जम ही जाता है । मैंने तो आजतक उनका गिरा हुआ गाना एक बार भी सुना नहीं है । इतने बड़े विद्वान इस बात को कहते हैं तो यह कितनी बड़ी बात है!!! गुरुजी के मुंह से आजतक किसीके बारे में किसी प्रकार की टीका या गाली वगैरा कभी भी हम लोगों ने सुनी नहीं । ऐसे हमारे ऋषितुल्य गुरुजी थे, जिन्होंने अपना सारा जीवन केवल गुरुभक्ति के कारण ही स्वार्थरहित संगीत की सेवा के लिए ही अर्पित किया! उनकी संगत, मार्गदर्शन तथा क्षण क्षण की यादें हम लोग अपने सात सात जनम में भी भूल नहीं सकते । कुछ लोग कह सकते हैं कि गुरुजी की तारीफ चेला करेगा ही, पर इसमें, परमात्मा की कसम, कोई अतिशयोक्ति नहीं है ।

				री											
म	म	प	म	ग	ग	री	सा	सा	री	ग	ग	म	–	म	–
बि	न	क	र	त	ब	क	स	जी	ऽ	व	न	ते	ऽ	रो	ऽ
×				०				×				०			

मेरे श्रद्धास्थान/आचार्य श्रीकृष्ण रातंजनकर

डॉ. सुमति मुटाटकर, नई दिल्ली

प	प	प	प	ध	सां	-	सां	नि	-	नि	(नि)	प	ध	प	-
न	र	त	न	अ	मो	ऽ	ल	पा	ऽ	यो	ऽ	ज	ग	मों	ऽ
×				०				×				०			

(भातखंडे (मैरिस) कॉलेज की सर्वप्रथम पीएच.डी. उपाधिधारी। स्नातकोत्तर शिक्षा आचार्यजी के पास। उंसके पश्चात् उ. विलायतखां, उ. मुश्ताक हुसेन तथा पं. गजाननबुवा जोशी से शिक्षा प्राप्त। आकाशवाणी पर कार्यक्रम-निर्देशिका (प्रोग्राम डायरेक्टर) की हैसियत से कार्य। तत्पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में 'डीन'। संप्रति आकाशवाणी की सुप्रतिष्ठित (इमरिटस) सदस्या।)

'नादज्योतिः प्रकाशार्थं वन्दे श्रीगुरुसुहृज्जनम् ।'

सन १९४२-४३ में मेरे पिताजी की भेंट आचार्य रातंजनकर जी से होना, उनका प्रभावशाली संगीत सुनने का सुअवसर हमें मिलना, उन दोनों में स्नेहसंबंध की उद्भावना होना यह सब मेरे जीवन की आगामी संगीत-यात्रा की मानो विधिनियोजित पूर्वपीठिका ही थी ।

उसी वर्ष एक अकल्पित क्रांतिकारी मोड़ मेरे जीवन में आया और एम. ए. इत्यादि मेरी चल रही पढ़ाई को छोड़कर संगीत की साधना और अध्ययन को ही अपना लक्ष्य बनाने का मेरा निर्णय हुआ । इसके लिये सर्वोत्तम गुरु आचार्य श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर (अण्णासाहब) और संस्था, उनका मैरिस म्यूजिक कॉलेज, लखनऊ यही योजना सर्वमान्य हुई । मेरे पिताजी (न्यायाधीश श्री गं. ज. अंबर्डेकर) ने अण्णासाहब से अनुरोध किया; उनकी अनुमति मिल गई । पारिवारिक विरोध के होते हुए भी मेरे पति (प्रा. वि. ल. मुटाटकर) की संमति से मैं कहां से कहां, नागपुर से लखनऊ पहुँच गई । गुरुवर्य अण्णासाहब का शिष्यत्व और मार्गदर्शन पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ ।

उन दिनों मैरिस म्यूजिक कॉलेज का वातावरण संगीत से भरा, गूंजता हुआ था । आस्था से सिखानेवाले जानकार शिक्षकों का एवं उत्साही छात्रगणों का अहसास होता था । 'प्रिन्सिपालसाहब'का दबदबा था, उनके प्रति बहुत आदर-सम्मान का भाव था ।

"लघुकाय मूर्ति, पर्वतप्राय कीर्ति" कहावत के अनुसार ही अण्णासाहब का व्यक्तित्व था। उनकी लघुकाय आकृति के विपरीत उनके व्यक्तित्व में एक आंतरिक भव्यता, गरिमा, उच्च संस्कारिता, आदर्शवादिता के दर्शन होते थे। शिष्टता एवं औपचारिकता के साथ स्नेह, कोमलता एवं कलाकार की भावुकता ये उनके स्वभावगुण मुझे प्रतीत हुए। अपने श्रद्धेय गुरु पंडित भातखंडेजी के महान जीवन-कार्य को आप समर्पित भाव से आगे चला रहे थे।

विविध समस्याओं तथा आर्थिक चिंताओं के साथ संघर्ष करते हुए भी उनकी चेतना में संगीत कभी तिरोहित नहीं होता था। संगीत-परंपरा का सारसर्वस्व उनके अंतर में रचा-रमा था। उसीके आलोक में नई बंदिशें, नए रागरूप, नई कल्पनाएं ऐसा उनकी प्रतिभा का नवसृजन चलता रहता। साथ साथ, स्वाध्याय और प्रवचन में वे सदा रत एवं प्रसन्न रहते। "स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्" यह औपनिषदिक आदेश मानो उनके जीवन का मूलमंत्र था। उनका एककक्षीय आवास सबके लिये खुला विद्यामंदिर ही था। प्रश्न, शंका, जिज्ञासा का वे स्वागत करते। अपना चिंतन, अपना दृष्टिकोण कारणसहित समझाते। आवश्यकता के अनुसार प्रत्यक्ष गाकर बताते। मार्गदर्शन करते, सुझाव देते। सम्मान्य कलाकार, संगीतज्ञ विद्वान उनसे मिलने आते, उनके साथ विचार-विनिमय, चर्चा होती जिससे हम लाभान्वित होते। उन दिनों संगीत से संबंधित छोटा-बड़ा जो भी कोई लखनऊ आता, अण्णासाहब से अवश्य ही मिलने आता। कभी कभी ऐसे अवसरोंमें से भी अविस्मरणीय संगीत सुनने के मौके हमें मिलते। लखनऊ में मेरा पांच वर्षों का गुरुकुलवास का कालखंड मेरे जीवन में सर्वतोपरि महत्वपूर्ण रहा। अनुकूल वातावरण में गुरुवर अण्णासाहब के मार्गदर्शन एवं निगरानी में मेरा प्रशिक्षण एवं अध्ययन चलता रहा, क्लास में और व्यक्तिगत रूप से। वास्तव में संस्थागत सामूहिक शिक्षा-पद्धति और गुरुकुलवास का यहां समन्वय था। संस्था का भारी उत्तरदायित्व सम्हालते हुए निष्ठा एवं समर्पण-भावना से प्रेरित होकर अण्णासाहब ने अपनी निजी संगीत-वाटिका बनाई थी जिसका द्वार प्रतिभाशाली जिज्ञासुओं के लिये सदा खुला था। शिष्यों को व्यक्तिगत शिक्षा एवं मार्गदर्शन (जो अत्यावश्यक है) देने की यह उनकी साधन-वाटिका थी। इसमें दिन, रात, छुट्टी के दिन जैसा कोई बंधन नहीं था। वह उनका अपना निजी समय हो, बस।

इस परिवेश में मेरे सांगीतिक जीवन की ठोस आधार-शिला प्रतिष्ठित होकर संस्कारित होती गई। विद्याग्रहण के लखनऊ के कालखंड में गुरुवर्य के साथ पनपा आत्मीय संबंध एवं मार्गदर्शन का सूत्र आगे चलकर निरंतर बना रहा और दृढ़तर होता गया। अण्णासाहब मेरे परिवार के परम स्नेहादरभाजन हो गये।

तीन दशकों की दीर्घ अवधि में अण्णासाहब के जीवन-कार्य की बहुत सारी उच्चांकपूर्ण गतिविधियां प्रत्यक्ष देखने के, उनमें संमिलित होने के सुअवसर मुझे मिलते रहे। उनके साथ घरेलू, अनौपचारिक वातावरण में रहने के प्रसंग बहुत लाभदायक होते। कितने ही प्रश्नों पर उद्बोधक चर्चा होती, रागों के अंत:सार का, सौंदर्य का दर्शन होता, पट खुलते, दिमाग खुलता, उनकी नई बंदिशें मिलतीं। कभी किसी संदर्भ के ग्रंथों का अवलोकन होता जो उन्हें विशेष प्रिय था। दिल्ली में हमारे यहां वे ठहरते तो मुश्ताक हुसैन खां, विलायत हुसैन खां, अनंत मनोहर जोशी, अलताफ हुसैन खां जैसी महान् हस्तियां और कर्नाटक संगीत के विद्वान जी. एन. बालसुब्रह्मण्यम्, टी. के. जयराम ऐयर जैसे लोग उनसे मिलने आते, अन्य बहुत से लोग भी आते। वातावरण संगीत से भर जाता। कभी रोचक गुनचर्चा और प्रात्यक्षिक अनायास

ही उद्‌भूत हो जाते ।

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारतीयता की नवचेतना उत्स्फूर्त हुई । हमारी महान् सांस्कृतिक धरोहर, हमारे संगीत, नृत्य एवं कलाओं की समृद्ध संपदा के प्रति गौरव एवं अभिमान की भावना का उत्कर्ष होने लगा । प्रधानमंत्री नेहरू से लेकर सभी स्तरों पर इन बातों का अहसास होने लगा । महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के साथ विभिन्न क्षेत्रों के जाने-माने विद्‌वानों को जोड़ने के उद्देश्य से समितियाँ इत्यादि का गठन हुवा । आकाशवाणी, संगीत नाटक अकादमी, संबद्ध मंत्रालय तथा अन्य संस्थानों में ऐसी समितियां बनीं । उनमें, संगीत-क्षेत्र के वरिष्ठ विद्‌वान के रूप में अण्णासाहब की सदस्यता अवश्य ही होती । कभी वे अध्यक्ष उपाध्यक्ष भी रहते ।

कला एवं कलाकार के उत्कर्ष एवं प्रतिष्ठा से संबंधित इस राष्ट्रकार्य को अण्णासाहब प्राथमिक महत्त्व देते । उनकी गतिविधियों में अपना पूरा भरसक योगदान देते । कभी कभी महत्त्वपूर्ण मीटिंग के पहले अण्णासाहब के साथ बैठकर पूर्वविचार के लिये कुछ सदस्य हमारे यहां एकत्रित होते । आनेवाले मसलों पर कौन-सी नीति लाभदायक होगी, सांस्कृतिक समस्याओं पर रचनात्मक कल्याणकारी सुझाव कैसे दे सकते हैं इत्यादि चर्चाएं होतीं । मीटिंग के बाद जो कुछ हुवा उसकी चर्चा होती । प्रशासकीय, सरकारी दायरे में, वहांके तौर-तरीके, इत्यादि की एवं कार्यप्रणाली की जानकारी मुझे मिलती । निःसंदेह इन बातों से मुझे एक दृष्टि मिली, मार्गदर्शन मिला । उसके आधार पर मैं अपना कठिन कार्यभार सम्हाल सकी । अपने पद का, अपनी अतिसीमित शक्ति का उपयोग यथासंभव संगीत व संगीतकार के उत्कर्ष की दिशा में, अत्यल्प मात्रा में क्यों नहीं, कर सकी ।

इस प्रकार से विविध प्रसंग, तरंग, विचारबिंदु मन पर अंकित होते गए । 'जलबिंदुनिपात' के क्रम से मेरी चित्त-चेतना समृद्ध होती गई । इस संचित संपदामें से कुछ संस्मरण परस्परसंबंधरहित मुक्तक शैली में यहां प्रस्तुत हैं । गुरुवर्य अण्णासाहब के लोकोत्तर व्यक्तित्व एवं कृतित्व के संबंध में परिगणन और मूल्यांकन जैसी कल्पना से सुदूर, विनम्र श्रद्धांजलि के रूप में मेरा समग्र कथन है :- 'लोकोत्तराणां चेतांसि । को हि विज्ञातुमर्हति ।'

बिलावल शुद्धमेल चर्चा

गुरुवर अण्णासाहब की निष्ठा और चिंतन की धारा को दर्शानेवाला एक अवसर मेरे सामने आ रहा है ।

आकाशवाणी में ठाकुर जयदेवसिंहजी के कक्ष में गु. अण्णासाहब कुछ विद्‌वानों के साथ बैठे हुए थे । कर्नाटक संगीत के भी लोग थे । चर्चा चल रही थी - हमारा आज का शुद्ध थाट बिलावल और उसकी शास्त्रीयता ।

एक मत था कि शास्त्र की दृष्टि से बिलावल शुद्ध सप्तक नहीं हो सकता । इसका अर्थ यह कि उत्तरी संगीत की बुनियाद ही अशास्त्रीय है । लगभग चार पांच शताब्दियों से आजतक उत्तरी संगीत की प्रयोग-परंपरा में बिलावल ही शुद्ध ग्राम रहा है । इसके समाधान में पंडित भातखंडे द्‌वारा सुझाई गई व्यवस्था यह थी कि ग्रंथवर्णित स्वर-स्थापना-विधि को बदल कर (उलटाकर) स्वर-स्थापना अपनी अपनी अंतिम श्रुति के स्थान पर अपनी अपनी आदिम श्रुति पर की जाए तो हमें बिलावल शुद्ध स्वरसप्तक के रूप में मिल जाता है ।

इस व्यवस्था के विरोध में आक्षेप रहा कि यह व्यवस्था प्राचीन काल से आए हमारे शास्त्र-सिद्धांत

के विपरीत है और परिगणन के सामान्य विधि के भी विपरीत है । इसलिये सर्वथा अयथार्थ है ।

इस पृष्ठभूमि का सर्वांगीण विवरण करके गु. अण्णासाहब ने समर्थन के रूप में बताया —

"भातखंडेजी ने देखा था कि चार पांच शताब्दियों के प्रदीर्घ काल से बिलावल ही उत्तरी संगीत की प्रयोग-प्रणाली में मूल सप्तक के रूप में प्रचलित रहा है । इस प्रचार को शास्त्रसंमत बनाना समुचित होगा ।"

मध्यकालीन ग्रंथों में काफी का शुद्ध मेल स्पष्ट रूप से है जिसका बिलावल के साथ निकट का मूर्च्छना-संबंध है । उन्हें प्रतीत हुआ कि छोटी-सी एक तरकीब से काफी के मूलग्राम से बिलावल की प्राप्ति हो जाती है । काफी की निषादादि मूर्च्छना में बिलावल की स्वरप्रणाली निहित है; निषाद को 'सा' मानकर वह बिलावल सप्तक हो जाता है । फिर अपनी अपनी प्रारंभिक श्रुति पर सप्तस्वरों को मानने से शुद्ध सप्तक के गुण उसमें आ जाते हैं - यानी 'चतुश्चतुश्चैव' इत्यादि नियम का दर्शन हो जाता है । इस प्रकार से प्रचार और शास्त्र में सामंजस्य स्थापित करने का यह भातखंडेजी का प्रयास था । यह कोई बाहर की, अभारतीय वस्तु को भारतीय संगीत पर थोपने की क्रिया नहीं थी वरन् परंपरा में विद्यमान, प्रयोग और प्रचार में रची-बसी अपनी निजी वस्तु को शास्त्र के अंतर्गत लाने की दृष्टि इसके पीछे थी ।

विरोधी तर्क-टिप्पणी के बारे में गुरुवर अण्णासाहब का कहना था कि प्राचीन शास्त्रसिद्धांत को हानि पहुंचने की बात करें तो शास्त्र में परिवर्तन प्राचीन काल से होते ही आए हैं । संगीत जैसी प्रयोगशील विधा में लक्ष्य (प्रचार) के प्राधान्य को और आवश्यकता पड़ने पर बदले हुए लक्ष्य के अनुरोध से शास्त्र में परिवर्तन करने की प्रक्रिया को शास्त्र की स्पष्ट मान्यता रही है । ग्राममूर्च्छना जैसे आधारभूत प्राचीन सिद्धांत तक का प्राय: लुप्त हो जाना और उसके स्थान पर मेलराग पद्धति की प्रतिष्ठापना होना इस तथ्य को एक क्रांतिकारी परिवर्तन ही मानना पड़ेगा, जो बदले हुए प्रचार को शास्त्रसंमत बनाने की प्रक्रिया को ही प्रमाणित करता है । इस दृष्टि से भातखंडेजी द्वारा सुझाई गई व्यवस्था का समर्थन हो सकता है । और एक तथ्य इस व्यवस्था के पक्ष में यह है कि प्राचीन काल से चला आया 'श्रुतिबंटन नियम' - २२ श्रुतियों को सप्त स्वरों में बांटने का नियम - भातखंडे द्वारा सुझाई गई व्यवस्था में अक्षुण्ण बना रहता है । गु. अण्णासाहब कहते गए - "भातखंडेजी की दृष्टि एवं उनका तर्क क्या था इसका मैंने विवरण किया । परंतु इससे यदि शास्त्र की जड़ को ही भारी हानि पहुंचती हो तो विद्वानों की परिषद में इसपर व्यापक चर्चा की जाए और उसके आधार पर यथासंभव निर्णय लिया जाए, यह मेरा सुझाव है । निर्णय जो भी हो, पर वर्तमान हिंदुस्थानी संगीत का शुद्ध सप्तक तो बिलावल ही रहेगा ।"

मैंने देखा कि इस पूरे विवरण से विद्वज्जन बहुत प्रभावित हुए । इस दृष्टिकोण के संदर्भ में सोच-विचार होना चाहिए और यह विचारधारा तर्कसंमत जान पड़ती है ऐसी राय सामने आई ।

पंडित भातखंडे के उत्तराधिकारी

सन १९६६-६७ में मैं आकाशवाणी में कार्यरत थी और दिल्ली में विट्ठलभाई पटेल हाऊस में मेरा निवास था। आचार्य बृहस्पति भी उन दिनों वहीं रहते । उन्होंने एक बार मुझसे कहा,

"बहन, पंडित रातंजनकर अब की बार दिल्ली आएं तो मेरी भेंट उनसे करवा देना । मैं उनके साथ वार्तालाप करना चाहता हूं । कुछ गलतफहमी हो और वह दूर हो जाए तो अच्छा ही होगा । मैं वचन देता हूं कि, कोई उलटी सीधी बात नहीं करूंगा ।"

सो मेरे यहां दोनों की भेंट हुई । बातचीत सुसंवादपूर्वक वातावरण में चलती रही। (मेरी थोडी तनावपूर्ण मन:स्थिति थी । किस क्षण न जाने क्या मोड़ आ जाए) अचानक आचार्यजी बोले, "पंडितजी, भातखंडेजी के उत्तराधिकारी तो आप ही हैं न? बताने की कृपा करें कि आपने उनके कार्य में क्या वृद्धि की है । (भातखंडेजी के सर्वत्र माने हुए उत्तराधिकारी तो वास्तव में अण्णासाहब थे ही और उनकी गुरुभक्ति भी अतुलनीय थी । परंतु अचानक सामने आए इस नाजुक अवसर पर उन्होंने अलग ही रवैय्या अपनाया जो उनकी गहरी सूझ-बूझ एवं समयसूचकता को उजागर करता है । उनके इस कथन में भी एक दृष्टि से वास्तविकता है ही ।)

थोड़े रुककर अण्णासाहब बोले, "मैं तो उस संगीतोद्धारक महापुरुष का विनम्र शिष्य और अनुयायी हूं । अपनी बुद्धि और औकात के अनुसार थोड़ा-बहुत कार्य कर रहा हूं । संगीत-विद्या का मैं एक छोटा-सा सेवक हूं । गुरुवर्य भातखंडेजी ने अपनी असामान्य प्रतिभा और आजीवन अथक परिश्रम के बल पर अनमोल संगीत-संपदा का विशाल भांडार निर्माण किया, उसे संगीत की दुनिया के सम्मुख लाकर समर्पित कर दिया । इस नाद-संपदा का निष्ठा के साथ अध्ययन-मनन करके जो कोई जितना अधिकार उसपर प्राप्त करेगा वही उस मात्रा में उस संपदा का उत्तराधिकारी हो सकता है । यह एकाधिकार की बात नहीं है ।"

आचार्यजी के प्रश्न से भी अण्णासाहब का यह उत्तर बहुत ही अधिक अप्रत्याशित था ।

आचार्यजी हंस कर बोले, "तो मैं भी भातखंडेजी का उत्तराधिकारी बन सकता हूं ।" अण्णासाहब ने कहा, "जी हां, क्यों नहीं ? जरूर बन सकते हैं । कहो तो मैं घोषित कर दूं ?" आचार्यजी कुछ बोलें इसके पहले ही अण्णासाहब ने कहा, "पर एक बात ध्यान में रखनी होगी । सच्चे उत्तराधिकारी का कार्य तो संपदा का संरक्षण और परिवर्धन होना चाहिए, उसे हानि पहुंचाना अथवा नष्ट करना तो नहीं हो सकता न ? हां, उसमें जो त्रुटि या कमियां हों, उनकी छान-बीन करके जो उचित हो सो भी करना चाहिए ।"

आचार्यजी ठहाका मारकर जोर से हंसे और उछलकर बोले, "मान गया पंडित जी आपको । लगा दी न अच्छी झांपड आपने इस बालक पर ? मैं इस आदेश को ध्यान में रखूंगा ।" आगे बोले, "वैसे तो रामपुर परंपरा के शिष्य होने से भातखंडेजी हमारे ज्येष्ठ बुजुर्ग लगते हैं । सच तो यह है कि भातखंडेजी और उनका कार्य यदि हमारे सामने न होता तो, हम कहां से होते ? हम भी न होते । आगे बोले - "यह मैं दिल खोलकर सच्चे भाव से कह रहा हूं, यकीन मानिए ।" इस प्रकार से यह नाटकीय प्रसंग सुसंवादपूर्ण रीति से समाप्ति पर पहुंचा ।

पंडित गोविंदराव टेंबे और हारमोनियम

सन १९५३-५४ के लगभग ऐसा संयोग हुवा कि गुरुवर अण्णासाहब दिल्ली आए थे, उसी समय पंडित गोविंदराव टेंबे भी रेडिओ की फिल्मी संगीत चयन-समिति के सिलसिले में दिल्ली आए । दोनों हमारे यहां ठहरे थे । गोविंदरावजी अपना खास बनवाया हारमोनियम ले आए थे जिसमें उनका कहना था कि विभिन्न रागों में लगनेवाले स्वरों के दर्जे भी निकाले जा सकते थे । हारमोनियम की ध्वनि बहुत मंजुल, आकर्षक थी । (पैरिस के विशिष्ट रीड़ लगवाए थे)

शाम को दोनों बैठते और प्रात्यक्षिक के साथ साथ चर्चा होती । अण्णासाहब गाते जाते और गोविंदरावजी हारमोनियम पर निकालते जाते । वे चोटी के हारमोनियमवादक और माने हुए संगीतज्ञ थे । बड़ी खूबी से और खूबसूरती से बजाते, बीच बीच में स्वयंस्फूर्ति से अपनी कला का भी प्रदर्शन करते । एक अनोखी महफिल-सी बन जाती । मेरे पिताजी कभी कुछ सवाल उठाते तो और नई नई कल्पनाएं सामने आतीं ।

एक सीमा तक, विशेषत: शुद्ध-तीव्र स्वरों के स्थान और कुछ कोमल भी, यथार्थ और मनमोहक लगते, बाजे की सांस लंबी होने से और बजाने की कुशलता से टिकाव भी सुंदर लगता । पर जहां तोड़ी दरबारी जैसे रागों के कोमल गांधार, धैवत, ऋषभ, निषाद के दर्जे इत्यादि सूक्ष्म ध्वनियों की और उनकी निरंतरता की बात आती और अण्णासाहब योग्य उच्चारण के साथ विशिष्ट स्वरस्थान स्पष्ट गाकर दर्शाते तो हारमोनियम के स्वर अलग ही रह जाते और अंतर साफ दिखाई देता । हां, गोविंदरावजी बखूबी कुछ सुंदर आभास निर्माण करते जो एक चमत्कार जैसा लगता । थोड़े रुककर गोविंदरावजी बोले - "कितना भी करो तब भी आखिर वह तो एक बाजे की पेटी ही है, इससे कितनी उम्मीद की जा सकती है ? पर इसमें भी कुछ खूबियां, अच्छे गुण हैं जिनके कारण बड़े बड़े नामवर गायक इसे स्वीकार करते हैं और सहारा लेते हैं ।" अण्णासाहब बोले, दादासाहब, हारमोनियम को निकम्मा ठहराने का मेरा कतई प्रयास नहीं है यह मैं पहले ही बता दूं । हम लोग तो अपने रागदारी संगीत की सूक्ष्म विशेषताओं का निष्पक्ष भाव से परीक्षण कर रहे हैं और वही इस समय हमारा मानदंड है । हारमोनियम की कमियां, सीमाएं, उसकी गुणवत्ता और अच्छाइयां हमारे सामने हैं । आप जो सुधार उसमें लाए हैं वे सराहनीय हैं । सच तो यह है कि इसके सीमित दायरे के बावजूद आप कितना मनमोहक संगीत इस बाजे पर बजाते हैं, कितने सूक्ष्म, रागात्मक आभास आप निर्माण करते हैं और सुननेवालों को मंत्रमुग्ध कर देते हैं, साथ-संगत भी ऐसी करते हैं कि गायन में चार चांद लगा देते हैं । यह सब आपकी प्रतिभा और कौशल का ही कमाल है । इस स्तर का हारमोनियम रेडिओ से प्रसारित होने में क्या आपत्ति हो सकती है ?"

यह सुनकर गोविंदरावजी प्रसन्न हुए और कुछ आश्वस्त हुए । (अपने विशिष्ट हारमोनियम को रेडियो द्वारा लोगों को सुनवाने की उनकी इच्छा थी ।अण्णासाहब के संगीत में असाधारण अधिकार और सूक्ष्म दृष्टि से गोविंदरावजी बहुत प्रभावित हुए थे, बोले -

"अण्णासाहब, आप सचमुच पहुंचे हुए क्रियासिद्ध पंडित हैं । भातखंडेजी के अद्‌वितीय जीवन-कार्य के लिये मेरे मन में समादर रहा है, परंतु उस शास्त्र से मैं कला को अलग मानता था । कुछ पूर्वग्रह भी मेरे मन में थे यह मैं कबूल करता हूं । आपको मैं विशेष रूप से शास्त्र का विद्‌वान ही समझता था । आपके कुछ संपर्क में आकर, आपका गायन सुनकर मेरी वह धारणा बदलती भी गई थी । पर आज आपने जो प्रत्यक्ष कर दिखाया उससे आपकी असामान्य प्रतिभा एवं सूक्ष्म चिंतन का दर्शन हुवा । उच्च कोटि के विद्‌वान गायकों के निकट संपर्क से जो मेरे संस्कार बने हैं, उनके अनुरूप ही आपका संगीत पाया ।"

अगले वर्ष १९५५ में गोविंदरावजी फिल्मी गीत चयन के काम से कुछ महीनों के लिये आए थे । उनका हारमोनियम का प्रस्ताव रेडिओ के सामने था ही । वह मान्य होकर गोविंदरावजी का हारमोनियम-वादन अपवादस्वरूप में रेडिओ से शायद प्रसारित हो भी जाता । पर विधि का यह विधान नहीं था । अकस्मात् हृदयविकार से दिल्लीमें ही उनका निधन हो गया । हारमोनियम

की बात उस समय वहीं की वहीं रह गई ।

दीपावली की भेंट

अपने निश्च्छल स्नेह और मेरे अंतर्मन के इष्टार्थ के अनुरूप अण्णासाहब ने एक बार दीपावली की 'ओवाळणी' (भाईदूज के दिन बहन भाई की आरती उतारती है और भाई बहन को भेंट देता है) के रूप में मुझे भेंट दी थी, वह थी—

"नादोदध्यवगाहनशीला सुमतिः सदा सुशारीरा
व्युत्पन्ना भगिनो मे सङ्गीतानन्दलीनास्तु ।"

अर्थात्, नादसागर में अवगाहन करने का जिसका शील है, जो सुशारीर है, ऐसी मेरी बुद्धिसंपन्न भगिनी सुमति सदा संगीत के आनंद में लीन रहे ।

ये आशीर्वचन आजीवन मेरे साथ रहेंगे, मुझे प्रेरणा एवं शक्ति देते रहेंगे यह मेरी श्रद्धा है ।

सरस्वती - वंदना

गुरुवर अण्णासाहब रचित सरस्वती-वंदना श्रद्धाभाव से अनुप्राणित मंत्र के समान धीरेधीरे मेरे चित्त में बस गई । एक बार मैंने उनसे कहा कि इस वंदना में मुझे अलौकिक भावोन्मेष का दर्शन होता है । जैसे "प्रसीद देहि मां देवि....." अर्थात् "हे देवि, प्रसन्न होकर शिवम्, सत्यम् और सुंदरम् मुझे प्रदान करो । (और) ऐसा करो कि मेरे द्वारा वही देखा जाए, सुना जाए, जाना जाए और क्रियान्वित किया जाए जो आपके हृदय के अनुकूल हो। न शास्त्र न काव्य, न ही राग, रस, लय कोई भी व्यवहार तुम्हारे प्रसाद के बिना हो नहीं सकेगा।" "हां, यही भाव है" - कहकर अण्णासाहब ने आगे अपनी मानसी पूजा का रहस्य समझाया । संगीतसाधना के विभिन्न अंग पूजा-विधि के साथ प्रतीक रूप से कैसे जुड़े हुए उन्होंने अनुभव किए यह समझाया । उन्होंने इस प्रकार विवरण किया :–

(१) ध्यानगंध - ध्यानरूपी चंदन (सुगंधी चंदन घिसने की क्रिया को ध्यान के साथ जोड़ा है)
(२) ध्वानधूपं - ध्वनिरूप धूप (जैसे धूप की सुगंध वायु के द्वारा आकाश में फैलती है वैसे ही ध्वनि वातावरण में भी आकाश मार्ग से प्रसारित होती है)।
(३) साहित्यदीपकं - साहित्यरूपी दीपक (शब्द और अर्थ का संयोग ही साहित्य है जो ज्ञान का प्रकाश देता है - दीपक के समान)।
(४) अभिषेकःस्वराः सन्तु - स्वर अभिषेक रूप बनें । (संगीत-साधना से परिष्कृत स्वर-स्वरों की धारा)।
(५) सुशब्दाः कुसुमान्यपि - सुंदर शब्द (अर्थरूपी सुगंध के साथ) पुष्परूप बनें।
(६) लयोऽर्घ्यमाचरंत - लय अर्घ्य का रूप ले । (साधना के द्वारा सिद्ध लय);
(७) रागा रसा नैवेद्यरूपिण : - राग और (उनके) रस नैवेद्य का रूप लें । (नाट्यरसों के सीमित दायरे में इन रसों को न बांधा जाए ऐसा उनका मानना था)।

(संगीत का सारतत्त्व रागों और उनके रसों में निहित है । रस मूलतः रसना का विषय है और नैवेद्य भी रसना के रूप में ही कल्पित है । साधनाद्वारा रागों में रस का संचार होता है जो नैवेद्य के रूप में अर्पित करने का भाव है) ।

यह समझाते समय गु. अण्णासाहब के मुखमंडल पर एक दिव्य समर्पणभाव दिखाई दे रहा था, मानो उनका निवेदन स्वीकार करके मां सरस्वती 'तथास्तु' कह रही हो ।

संस्कृत में आस्था

अण्णासाहब के पिता श्री नारायणराव संगीत के साथ साथ संस्कृत के भी अच्छे मर्मज्ञ थे। अण्णासाहब बताते थे कि जिस आग्रह के साथ उन्होंने मुझे बाल्यकालसे ही संगीत की विधिवत् शिक्षा अच्छे गुरुओं से दिलवाई उसी आग्रह के साथ संस्कृत व्याकरण की सिलसिलेवार शिक्षा का भी प्रबंध किया। संस्कृत की इस बुनियाद का अपनी जीवन-प्रणाली पर, व्यक्तित्व पर, सृजन, चिंतन सभीपर गहरा प्रभाव पड़ा ऐसी उनकी भावना थी। पंडित भातखंडेजी द्वारा निर्मित संगीत-विद्या की विशाल, ठोस आधारशिला के प्रस्ताव एवं आयाम की परिपाटी में आगे जो कुछ कार्य वे कर सके उसकी पूर्वतैय्यारी में संस्कृत एवं उसके संस्कारों का योगदान था ऐसा वे मानते थे। उनके रचना-साहित्य में संस्कृत का प्रयोग अपनी विशेषता रखता है। जैसे, तरानों की अपनी कुछ रचनाओं में उन्होंने अंतरे में तराने के अक्षर अथवा पाटाक्षरों के स्थान पर संस्कृत में सुंदर अर्थपूर्ण पंक्तियों की रचना की, स्थायी के मुखड़े के साथ समन्वय स्वाभाविक लगे इसपर भी ध्यान दिया। ख्याल शैली में आपने कुछ बंदिशें संस्कृत में रची हैं और उनमें गेयता का गुण भरपूर रहे इस पहल का भी ध्यान रखा है। संस्कृत में मेरी विशेष रुचि के कारण अपनी रचनाएं मुझे दिखाकर वे मुझसे गवाते और कभी कभी इनका पुनरावलोकन करते। इन नवीनतापूर्ण रचनाओं को लोकप्रिय तो नहीं कह सकते पर सुधी श्रोताओं की प्रशंसा अवश्य मिलती रही है।

अण्णासाहब की नवनिर्माण की प्रतिभा का सुंदर नमूना रहा उनका गेय नाटक 'शिवमंगलम्'। उज्जयिनी में प्रथम कालिदास समारोह के लिए विशेष आमंत्रण पर महाकवि कालिदास के कुमारसंभवम् काव्य की विषयवस्तु को लेकर और काव्यमें से कुछ महत्त्वपूर्ण घटनादर्शक श्लोकों को चुनकर गेय नाटक की रचना उन्होंने की थी। परंपरागत विधा के अनुसार नटी, सूत्रधार एवं अन्य पात्रों का ग्रथन करके अनुरूप संवाद रचे एवं रत्नजड़ाऊ शैली में चुने हुए श्लोकों को स्वर-राग-तालों में बांधकर मध्यवर्ती वस्तु के रूप में स्थापित किया। उन दिनों वे खैरागढ़ के 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के उपकुलपति थे। वहांके छात्र-छात्राओं के द्वारा खेले गए इस गेय नाटक का पूरा संचालन अण्णासाहब ने अति कौशल एवं कल्पकता से किया था। प्रयोग सारे समारोह का गौरव बढ़ानेवाला, सफल एवं अग्रणी रहा। संस्कृत के विद्वज्जन-समुदाय के द्वारा वह बहुत प्रशंसित रहा। अण्णासाहब को इस सफलता से विशेष तुष्टि हुई। बाद में उन्होंने सहज भाव से (आत्मप्रशंसा और आड़ंबर के साथ नहीं) मेरे पिताजी को बताया, "काकासाहब, कालिदास समारोह में संस्कृत के पंडित और दिग्गज विद्वान एकत्रित थे। उनकी बिरादरी के बाहर का मैं, मेरी औकात ही क्या थी? मेरे प्रयोग को उनके द्वारा अनुमोदन एवं प्रशस्ति मिलना यह भी क्या कम है? 'आपरितोषाद् विदुषां' के अनुसार संतोष की ही बात हुई न?" यह रही उनकी विनम्रता।

'शिवमंगलम्' के प्रयोग की प्रशंसा बहुत हुई जिसके परिणामस्वरूप आकाशवाणी ने उसे रिकार्ड करके प्रसारित करने का निर्णय लिया। बंबई केंद्र पर रिकार्डिंग हुई।

पंडित भातखंड़े के शास्त्रग्रंथ 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' को विशद करने के उद्देश्य से अण्णासाहब

ने 'लक्ष्यसंगीतकारिका' संस्कृत में लिखना उत्साह के साथ प्रारंभ किया था। उसके प्रारंभ से लेकर कुछ अंश वे मुझे अवसर पाने पर दिखाते, जोरसे पढ़ने को कहते। सुस्पष्ट अभिव्यक्ति के साथ कारिका की शैली में वह सब मुझे बहुत ही रोचक लगता। अण्णासाहब के साथ पढ़ने में आनंद आता। एक एक मुद्दे को वे मूल के साथ जोड़ते एवं विशद करते हुए स्पष्टीकरण करते जाते जिसमें उनका अपना दृष्टिकोण भी सामने आता। (संस्कृत के माध्यम से उनके योगदान के कुछ मौलिक अंशोंकी ही मैंने चर्चा की है।)

विवादग्रस्त प्रश्नों की चर्चा में अण्णासाहब की विद्वत्ता, तर्कशीलता और अनुभव का प्रभाव रहता। परंतु कभी कभी, श्रद्धेय भातखंडेजी के विरोध में कोई सवाल उठाया जा रहा हो या ऐसी आशंका हो जाए तो वे सजग और कुछ खिंचे से हो जाते। फिर सवाल महज जिज्ञासावश ही क्यों न हो, और पूछनेवाले उनके कार्य में श्रद्धा रखनेवाले ही क्यों न हों।

एक बार मैंने कहा, "अण्णासाहब, मालकौंस अंग के कौंसी कान्हड़े का जो रूप हमने आपसे सीखा है, उसमें कान्हड़े का अंग स्पष्ट नहीं दिखाई देता, सामान्यत: संपूर्ण मालकौंस जैसा लगता है। हालांकि, यह रूप गाने में, सुनने में सुंदर लगता है, कलाकार उसे गाते बजाते भी हैं। फिर भी यह आपत्ति है, कुछ जानकार लोग भी इसे उठाते हैं। वे एकदम नाराज - से होकर बोले, अच्छा, तो आपको यह रूप पसंद नहीं है। नहीं है पसंद तो उसे छोड़ दीजिए, मत गाइए।" मैंने कहा कि यह मेरा मतलब नहीं था। फिर कहने लगे कि गुरुवर्य को इस राग का यही रूप मिला था। सोच-विचार कर उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया था। अब हम दूसरा रूप भी कान्हड़े के अंग को स्पष्ट दर्शाते हुए बना सकते हैं।

(आगे चलकर कान्हड़े के पहलू को दर्शानेवाला पर कुछ प्रच्छन्न रीति से पुरानी बात को भी रखनेवाला रूप उन्होंने नई बंदिश द्वारा अंकित किया)।

अण्णासाहब ने बताया कि उन्होंने काफी कान्हड़े का जो स्पष्ट एवं सुंदर रूप अपनी बंदिशों के द्वारा प्रस्तुत किया उसका संगीतज्ञों ने स्वागत किया है, कुछ कलाकार तो उसे महफिल में गाने भी लगे हैं। प्रसन्न हुए और कहने लगे किए रागदारी संगीत तो एक विद्या है, इसमें जितना सोच-विचार होगा, छान-बीन होगी उतना ही वह उन्नत और समृद्ध होगा।" काफी कान्हड़े के रूप का, जिसमें कान्हड़े का अंग न होकर काफी एवं बागेश्री का संयोग है, समर्थन करते हुए उन्होंने कहा, "बागेश्री स्वयं एक कान्हड़ा माना गया है। इस दृष्टि से काफी के साथ कान्हड़े के रूप में बागेश्री के संयोग को सयुक्तिक ही मानना चाहिए।"

नई बंदिशें

अण्णासाहब से प्रोत्साहन और मार्गदर्शन पाकर मैंने नई बंदिशें बनाने की दिशा में कदम उठाया।

उन्होंने बताया - "राग के रूप का परिपूर्ण ज्ञान एवं उसे बरतने का प्रत्यय, अनुभव तथा ताल के साथ घनिष्ठ परिचय तो अनिवार्य है ही, परंतु गाने की बंदिश में पद का स्थान भी अपना महत्त्व रखता है। राग-ताल के साथ पद की भी साधना करनी चाहिए। इस दृष्टि से व्रज भाषा का जो समृद्ध गेय-पद साहित्य है उसका मनोयोगपूर्वक अवलोकन विशेष लाभदायक होगा। हमारी परंपरागत बंदिशें रागताल की दृष्टि से उच्च कोटि की होते हुए भी कहीं कहीं पदसाहित्य का स्तर नगण्य रहा। उनमें अंकित प्रामाणिक रागरूपों के लिये ही उनका विशेष

रूप से समादर किया गया। आज के युग में तो यह स्थिति बदलनी चाहिये, बदल भी रही है। रचनाकार पदपक्ष का भी खयाल रखने लगे हैं पर कभी कभी रागदारी अच्छी खासी होते हुवे भी बोल अटपटे, अर्थहीन होते हैं।'' उनके मतानुसार इस पहलू का भी महत्त्व हमें समझना चाहिये। उपलब्ध बंदिशों के पदसाहित्य का परीक्षण भी कुछ सहायक हा सकता है।

इस दिशा में मैं प्रयास करने लगी। शुरू शुरू में अपनी कल्पना के अनुसार कोई बंदिश बनाकर मैं अण्णासाहब को भेजती, फिर उसे वे अपने सुझावों के साथ लौटाते या मिलने पर बताते। इस तरीके से १९५७ के बाद मेरी कुछ प्रगति होने लगी। आज इस दिशा में मेरा प्रयास पर्याप्त मात्रा में सफल है। मेरी रचनाएं स्वयं मेरे द्वारा और अन्यों के द्वारा भी गाई जाती हैं, सिखाई भी जाती हैं।

सहज स्वाभाविक वातावरण में प्रसन्नता

अण्णासाहब में दिखाऊपन का, दिखावटी औपचारिकता का नितांत अभाव मैंने देखा। सहज, स्वाभाविक स्नेह, समादर के वातावरण में वे बहुत प्रसन्न एवं आराम में रहते। हमारे यहां विशेषत: मेरे पिताजी की संगति में उनका मन खिला-सा रहता। कितनी रोचक बातें, घटनायें, चिंतनपूर्ण चर्चायें चलतीं, हास्य-विनोद की बातें भी वे करते जाते।

एक बार हलके फुलके 'मूड़' में वे कहने लगे, ''काकासाहब, अस्मादिक भी, जो है सो, लघुकथा लेखन में दखल रखते हैं। एक हास्यरस का नमूना सुनाता हूं। हम लोग सुनने लगे। कथा मराठी में लिखी थी। प्रारंभ था - दामुअण्णा को साठवें साल में गाना सीखने की सनक आई। फिर देर काहे की, उस्ताद की खोज शुरू हुई, उस्ताद मिल गये। खुशी खुशी तालीम प्रारंभ हुई। दो तीन दिन कुछ तालीम का आभास होता। उस्ताद कुछ गाते और कहते, ''गाओ बेटा''। दामूअण्णा जैसा समझ में आता वैसा उलटा-सीधा गाते। उस्ताद कहते, ''बहुत अच्छा''।

फिर मनमानी तालीम का, उस्ताद के तौर-तरीकों, चायपानी सिगरेट इत्यादि का वर्णन। दामूअण्णा उलझन में पड़ गये, कुछ समझ में आ रहा है या नहीं समझ में ही ना आये।

फिर दामूअण्णा का मनमाना रियाज। (रात को ही वे बैठ पाते) पड़ोसियों की शिकायतें (चिल्लाना बंद करो, नींद खराब मत करो), पत्नी (मराठी में, घरची म्हातारी.) की चिल्लाहट अलग - खूब रोचक और हंसानेवाला चित्रण अण्णासाहब ने किया। हम हंसते हंसते लोट पोट हो गये।

कथा के अंत का किसीको भान नहीं। क्योंकि अंत तक अण्णासाहब पहुंचे भी नहीं!!

बाद में उन्होंने बताया कि गुरुवर्य भातखंडेजी के प्रत्यक्ष अनुभव के एक बयान पर से अण्णासाहब को यह लघुकथा सूझी थी।

महफिल के कुछ अनौपचारिक परिवेश में जहां कंलाकार एवं श्रोताओं के बीच संपर्क संवेदनशील रहता है, अण्णासाहब की प्रतिभा के अनिर्बाध विलास के लिये अधिक अनुकूलता रहती। उसमें भी कुछ जानकार, रसिक और कलाकार भी उपस्थित हों तो उनके गाने में और भी नवीनता और गहराई का रंग भर जाता। (कभी कभी तानूपरे पर छोटूजी (गिंडे), भटसाहब, दिनकर कैकिणी जैसे उनके अंतरंग मेधावी शिष्य गाने में संगत कर रहे हों तब कुछ और ही बात बनती)। उनका ऐसा रंगभीना गाना सुनने का सौभाग्य मुझे कई बार मिला।

एक प्रसंग :- १९५७ में अण्णासाहब के 'पद्मभूषण' से सम्मानित होने के उपलक्ष्य में उनके अभिनंदन का अनौपचारिक आयोजन था। दिल्ली के जाने-माने संगीतज्ञों के साथ उस्ताद विलायत हुसेन खां भी उपस्थित थे। उस शाम उनके गाने में अदभुत रंग का संचार हुवा। लगभग सवा घंटे तक राग त्रिवेणी की अवतारणा में समय का अहसास ही नहीं हुवा। एक संमाहन-सा छा रहा था। सभी ओर से उत्स्फूर्त प्रशंसा होने लगी। अण्णासाहब कुछ अभिभूत होकर बोले, "मैं क्या कहूं? हो सकता है कि आप सबका प्रेम और मेरी सफलता में सत्कार भावना के कारण ही मेरा गाना अच्छा हो गया हो और आप सबको पसंद आ गया हो"।

विशाल सभागृह (ऑडिटोरियम) या पंडाल उनके सहज स्वभाव के विशेष अनुकूल न होते हुए भी ऐसे परिवेश में भी अण्णासाहब के गाने के अद्भुत प्रभाव के अवसर मेरे स्मरण में हैं।

१९५६ में उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से विशाल संगीत समारोह का आयोजन था। सरकार की किसी बड़ी योजना का विशेष सत्र था जिसके लिये बहुत सारे अधिकारी वर्ग (परिवारसहित) एकत्रित थे।

बड़े बड़े संगीतकार समारोह में भाग ले रहे थे। अण्णासाहब लखनऊ से एवं मैं दिल्ली से गई थी। लगभग बीच रात के बाद अण्णासाहब की गाने की बारी आ रही थी, साज मिल रहे थे, राग तय नहीं था। मंच पर चलने के पूर्व उन्होंने मध्यम स्वर में तानपूरे मिलाने को कह दिया।

विशाल सभागृह भरा हुआ था। मध्यरात्रि की हलकी-सी झपकी छाई हुई थी। अण्णासाहबने स्फूर्ति के साथ अचानक प्रारंभ किया "चंद्र जाके भाल बिराजे", राग पंचम में विलंबित। तार षड्ज पर 'सम' ऐसे चमक गई मानो आस्मान से प्रकाश का पुंज अवतरित हुवा। पूरी सभा जैसे मंत्रमुग्ध हो गई। अंतरे में जब 'ऐसो महादेव', पर तार मध्यम स्थिर हुवा तो ऐसा लगा कि सचमुच गिरि कैलास के शिखर पर भगवान शंकर प्रत्यक्ष खड़े हैं। कंठस्वर में भी एक ऊर्जा का अनुभव था। उस रात का पूरा कार्यक्रम एक चमत्कार-सा मन पर छा गया। आश्चर्य यह कि कार्यक्रम के बाद कितने ही लोगों ने अण्णासाहब से मिलकर कहा कि हमें संगीत की, राग-वाग की समझ नहीं है, पर आपका गाना अदभुत लगा। यह कैसा प्रभाव कि हमें अनुभव हुआ है कि कैलासपति शंकर के हमें प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं।

और वह 'हरप्रिया' राग!

अप्रैल १९७० में अण्णासाहब दिल्ली विश्वविद्यालय के संगीत विभाग में एम.ए. के परीक्षक के रूप में आए थे। हमारे साथ ही ठहरे थे।

दिनभर परीक्षाओं में व्यस्त रहते। सायं घर लौटने के बाद चाय पीते पीते ही कोई बात छिड़ जाती जो कुछ विशेषता लिये होती। कुछ लोग उनसे मिलने भी आ जाते। एक दिन अण्णासाहब ने कहा, "एक नये राग की कल्पना आई है। सुनो, कैसा लगता है बताओ"। वे गाने लगे। काफी ठाठ के सुर लग रहे थे पर रूप कुछ समझ में नहीं आ रहा था। अण्णासाहब ने कहा "इसका एक राज है। यमन ठाठ के धैवत को 'सा' मानने से काफी ठाठ मिलता है, तो यह काफी हमारा ठाठ है, पर विस्तार में मूल मूर्च्छना " ध नि सा रे ग म प ध, नि सा रे ग" को ध्यान में रखकर करना है और उन संगतियों को काफी के संदर्भ में अंकित

करना है। तुरंत उन्होंने कागज पर लिखकर दिखाया। (मैनें इसे जतन करके रखा है जो इस आलेख के साथ प्रस्तुत है) । वे सुविधापूर्वक विस्तार करने लगे, तब भी मुझे ग्रहण करने में कठिनाई लग रही थी। अण्णासाहब मुसकरा कर बोले, "ज्यादा दिमाग को खपाने की जरूरत नहीं। मेरी तो मूर्च्छना-मेल की यह दिमागी खटपट है, ऐसा ही कुछ चलता रहता है। नाम इस राग का 'हरप्रिया' रखा है। बंदिश भी बनाई है—

"सुन रे सुजान, मनमोहन एक राग,
'हरप्रिया' सुंदर नाम।
गायक-गुनिगंधर्व जो साथ ग्यानी
भेद वाको जाने, ना और काहूको ये काम।"

मुझे उनके 'रजनी-कल्याण' का स्मरण हो आया। नाद-भेद-रहस्य के दर्शन में अण्णासाहब कहीं पहुंचे हुए थे।

एक बार नए रागरूपों के मानदंड के बारे में बातचीत चली । मैंने नटभैरव के बारे में पूछा । भैरव में तीव्र रिषभ लेनेवाला सरसांगी मेल है । अण्णासाहब ने कहा, "मेल अथवा ठाठ में से, विशेष परिकल्पना मन में लेकर, उसे तराशने पर उसमें रागत्व का संचार होता है ।" फिर कुछ देर सोचकर बोले, "जैसे नटभैरव के रूप को नाम के अनुरूप रागत्व देने के लिये पूर्वांग 'सा रे ग म प' एवं उत्तरांग 'म प ध नि सां' को लेकर पूर्वांग में नट के अंग से और उत्तरांग में भैरव के अंग से स्वरसंचार रच-रच कर उन्हें मिलाते जाओ तो अच्छा रूप उभर आ सकता है । और, इस राग को नया राग यूं मानना चाहिये कि नट और भैरव तो दोनों परंपरागत राग हैं परंतु दोनों के विशिष्ट संयोग से बना हुआ नटभैरव का रूप तो नया ही है ।"

प्रत्यक्ष गाकर उन्होंने इस प्रक्रिया को स्पष्ट रीति से समझाया । मेरे मन पर वह छा गया । धीरे धीरे राग का रूप स्पष्ट होता गया । मैंने बंदिशों की रचना की, गाने लगी । सभी ओर से अनुमोदन मिला, संतोष हुवा । उसी दौरान 'Musical Aspect of Kāku' ('काकु' का सांगीतिक पक्ष') यह खोजपूर्ण लेख मैंने 'संगीत नाटक अकादमी' के लिए लिखा था । उन्हें दिखाया, लेख पसंद आया, विवरण यथार्थ लगा । बोले, "सचमुच यह महत्त्वपूर्ण पहलू है । हमारे संगीत के क्षेत्र में सामान्यत: 'नाट्यकाकु' से भिन्न, मात्र संगीत के ही दायरे से सबंध 'काकु' की जानकारी की कमी है । शास्त्रग्रंथों में इसका सुस्पष्ट विवरण मिलता है जिसमें, संगीत में निहित प्रायोगिक सूक्ष्मता एवं सौंदर्य के प्राणतत्त्व के रूप में 'छाया' की कल्पना उभरती है । विशिष्ट रागों में प्रयुक्त होनेवाले स्वरों के सूक्ष्म दर्जों को परंपराओं के विद्वान संगीतकार प्राथमिक महत्त्व देते आए हैं, और वे सब काकुतत्त्व के ही अंतर्गत आते हैं । शास्त्र के साथ प्रयोग को जोड़नेवाला यह मौलिक तत्त्व है । इसका विस्तृत अध्ययन एवं प्रचार नि:संदेह लाभदायक होगा ।"

(गुरुवर्य के साथ संगति और उद्‌बोधक परिचर्चा के आनंद में कुछ दिन बिताने का यह अंतिम अवसर था । इसके बाद हम बंबई जाते तो उनके आवास पर उनसे मिलना होता । उनका स्वास्थ्य तब गिरने लगा था.....)

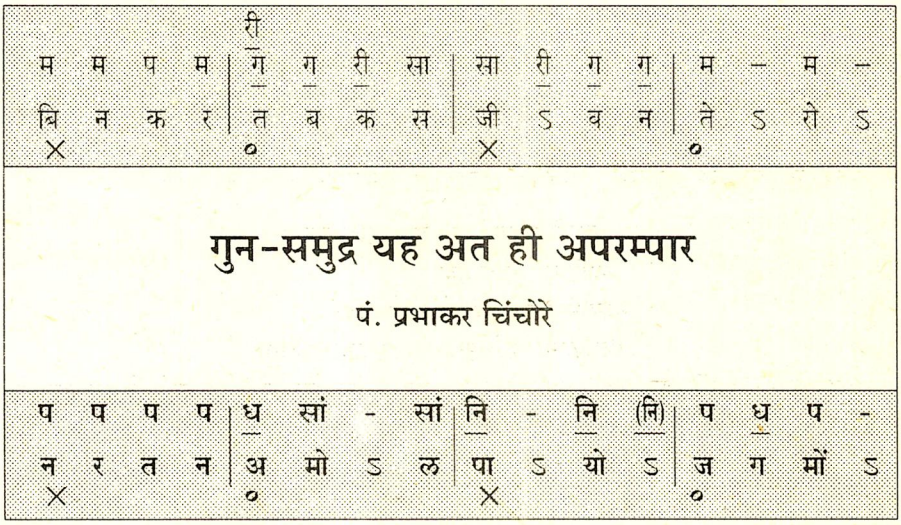

(भातखंडे संगीत विद्यापीठ के पहले संगीत - निपुण। शांतिनिकेतन में सेवाकार्य। ग्वालियर के माधव म्यूझिक कॉलेज और इंदौर के शासकीय संगीत महाविद्यालय के प्राचार्य रहे। इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़ के उपकुलपति भी। संप्रति लखनऊ के भारतीय संगीत विद्यापीठ के प्रधान निर्देशक।)

'जय जय जय जय विजये! माय मराठी' इन्दौर की ज्येष्ठ पीढ़ी के कविवर्य श्री. स.का. देव की यह कविता महेश्वर में बृहन्महाराष्ट्र परिषद के उद्घाटन के अवसर पर महाराष्ट्र-गीत की तर्ज पर मुझे गानी थी। उद्घाटन के लिये पं. विनायकराव पटवर्धन और शिल्पकार फड़के विशेष रूप से आमंत्रित थे। दोनों महानुभावोंने मेरा गायन बहुत पसंद किया। पं. विनायकराव पटवर्धन ने तो मेरी पीठ भी थपथपाई। दूसरे दिन सुबह मुझे अपने पास बुला लिया और कुछ गाने के लिये कहा। साज मिलाकर शुरुवात करने ही जा रहा था कि अण्णासाहब फड़के प्रविष्ट हुए और तबले पर संगत करने बैठ गए। जौनपुरी-भैरवी की बंदिशें बड़ी खबरदारीसे मैंने अण्णासाहब के साथ गाईं। दोनों ने मुझे भरपूर प्रोत्साहित किया। दूसरे दिन सहस्रधारा का कार्यक्रम निश्चित हुआ। सुबह चार बजे नाववाले तैयार हुए। मैंने अपने लिये श्री विनायकराव की डोंगी में स्थान बना लिया। रास्ते में मैंने उनसे आग्रहपूर्वक कहा, "मैं ध्यानपूर्वक गायन सीखना चाहता हूं। आपके साथ पूना चलूंगा। स्कूल में पढ़ता रहूंगा और आप मुझे गाना सिखाइए। अच्छा पढ़ा-लिखा, शिक्षित गवैया बनूंगा"। उन्होंने मुझसे कहा, "कुछ दिन बाद मुझे पुनः स्मरण दिलाना। उत्तर मैं तुम्हें अवश्य दूंगा।" हाइस्कूल और ग्वालियर की चतुर्थवर्षीय परीक्षा उत्तीर्ण करके मैंने उन्हें पुनः स्मरणपत्र भेजा, जिसके जवाब में उन्होंने मुझे लिखा, "एक अच्छा पढ़ा-लिखा गवैया बनना चाहते हो। बहुत सोच-समझकर लिख रहा हूं, तुम्हारे लिये लखनऊ के श्री रातंजनकर सुयोग्य गुरु होंगे। उन्हें स्वयं लिखो, वे तुम्हें निराश नहीं करेंगे।" मेरे हितचिंतकोंमें लंबी चर्चाएं हुईं और इंटर आर्टस् तथा लखनऊ की 'संगीत विशारद' परीक्षा पूर्ण करके, आगे की शिक्षाके

लिए इधर-उधरसे पैसे जोड़-जाड़ कर, मैं लखनऊ आ गया। लगभग उन्नीस-बीस वर्ष बाद 'राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर' की कोर्सेस कमीटीमें उनसे मेरी पुनः भेंट हुई। अकादमी के अध्यक्ष श्री गोवर्धनलाल काबरा से मेरा परिचय कराते समय श्री विनायकराव ने उपर्युक्त घटना का स्मरण उपस्थितों को कराया।

इन्दौर में होलकर स्टेट शिक्षाविभागीय परीक्षाएं संचालित करने के लिए गुरुवर श्री रातंजनकर रामबाग में उनके एक मित्र श्री बाम के यहां ठहरे थे। इनकी यह उपस्थिति शहर के संगीत-प्रेमियों के लिए बड़े कुतूहल का विषय थी। शनिवार की रात को श्री बाम के यहां उनका गायन हुआ। उनके इर्द-गिर्द, अपने भावी गुरु की टोह लेते रहने का मेरा क्रम, यथावत् चलता रहा। रातभर गाना सुन लेने के बाद लगभग दस बजे सुबह मैं श्री बाम के यहां गया। वह रविवार था। साप्ताहिक अवकाश होने से ज्ञात हुआ कि श्री रातंजनकर बाहर गए हैं और वे शाम तक लौटेंगे नहीं। यह भी मालूम हुआ कि उस दिन वे रामूभैया दाते के मेहमान रहेंगे। रामूभैया का घर मेरे लिये कोई नया नहीं था, अतः सीधे वहां पहुंच गया। वहां देखता हूं तो चुने हुए पांच सात जाने-माने श्रोताओं की नितांत प्राइवेट महफिल जमा हुई थी। हार्मोनियम पर श्री बच्चूभैया ढोबले और तबले पर श्री मुन्नालाल पंवार बैठकर गपशप के मूड़ में कभी बातें करते तो कभी गाते-बजाते थे। श्री रातंजनकर के साथ रामूभैया का आगमन होते ही बैठक ने अपना निश्चित आकार ग्रहण किया और बाकायदा साथ-संगत, गाना-बजाना शुरू हुआ। देसी रागमें 'निरोंजन कीजे' झपताले का साधरा शुरू हुआ। कुछ समय बीता और हार्मोनियम श्री रामूभैया ने अपने पास खींच लिया और संगत करने लगे। देसी को अधूरा छोड़ कर जौनपुरी का एक और साधरा शुरू हुआ। फिर लखनऊ के गाने-बजाने की बात चलते ही 'बरकतवा लिये ठाड़ो कंकर मारत' का संक्षिप्त अस्ताई-अंतरा हुआ। वह भी पीछे रह गया और भैरवीमें 'भवानी, दयानी' का आवाहन शुरू हुआ। आज इतना ही स्मरण है कि महफिल का वातावरण बिगड़ गया। अपनी अल्पायु के कारण बड़ों की बड़ी बातें मैं गहराईसे समझ नहीं सका। गाना-बजाना चल तो रहा था। परंतु बुज़ुर्ग लोग नाक-भौं सिकोड़कर हार्मोनियम की पट्टियां उलट-फेर रहे थे। आज वे दोनों महानुभाव ज़िंदा नहीं हैं। तथापि रागोंका क्रम और दर्शकोंके चेहरोंका स्मरण होते ही समझ रहा हूं, गायन किस संदर्भमें चल रहा था। और बिना खाए-पिए महफिल क्यों उखड़ गई। बादमें एक दो प्रसंगों में हार्मोनियम की संगत पर गाया हुआ गुरुवर रातंजनकरजी का गायन भी मैंने सुना था। परंतु उस समय दुराग्रह नाम की कोई स्थिति नहीं थी और न ही था रागोचित स्वरों की हिंदुस्तानियत के मापदंड का सवाल।

लखनऊ में प्रवेश लेते समय मेरी कक्षामें २-३ वर्ष पूर्वसे श्री चंद्रशेखर भट और शंभू महाड़कर अध्ययनरत थे। गुरुवर ने मेरा परिचय ज्येष्ठ गुरुबंधु श्री. एस. सी. आर. भट से करा दिया और कहा कि मैं भी संगीत का एक फुल टाइम साधक हूं और अनेक मुश्किलों के बाद लखनऊ पहुंच सका हूं। 'बिधु बदन युवतिगण' सरपरदा की इन पंक्तियों से मेरी तालीम प्रारंभ हुई। एकाग्र चित्त से हम सब गा रहे थे । इतने में अंतरे की उठान हुई और मुझे रुकना पड़ा। ˇग प, ध ˇनि ऽ ऽ ऽ ध , ˇनि ऽ ऽ ˇˇनि ऽ सा... तार षड़ज् के घर में घुसती हुई उस सुदीर्घ निषाद ने मुझे आकर्षित किया। गला फाड़-फाड़कर लाख कोशिशों के बावजूद हार्मोनियम की वह ढीली-ढाली पोली-पोली निपाद मैं गाता रहा। इसमें अंतरे का स्वाद ही नहीं था। उधर गुरुवर अपनी तर्जनी और अंगूठा दोनों को भिड़ाकर पानी के छींटे मारने जैसे इशारे करते हुए मेरी

आवाज को थोड़ा ऊपर, और थोड़ा ऊपर ले जाने के लिये कहते रहे। मैं हैरान हो गया। सरपरदे में तालीम का यह क्रम कोई दो माह तक चला। नियमित रूपसे अपना गला और कान दुरुस्त करने में बिताता। बीच बीच में गुरुवर जब बाहर दौरे पर चले जाते तब श्री भट मुझे अपने पास बुला लेते और मेरी कमजोरियों को ठीक करनेका प्रयास करते। खूब रियाज करवा लेते। वर्षों तक हम दोनों एक साथ गाए और एक दूसरे को सहारा देते रहे।

कक्षा में देवगिरी बिलावल की तालीम शुरू हुई और वह थमने का नाम ही नहीं ले रही थी। औड़व देवगिरि, संपूर्ण देवगिरि, ध्रुपदियों की देवगिरि, ख्यालियों की देवगिरि, उन सब की अलग अलग बंदिशें, साज-सिंगार की खूबियां गुरुजी विस्तार से समझाते और हम लोगों से गवा लेते। प्रात: ८ से १२ बजे तक यह शारीरिक मेहनत चलती। हम लोग दूसरे किसी राग की अपेक्षा कर रहे थे। श्री भट ने गुरुजी से कहा, "साहब! देवगिरि में तो ३-४ बड़े ख्याल हम लोग सीख चुके। परंतु रेडियो में इसी राग को गाने की इच्छा हुई तो क्या बड़ा ख्याल गाकर चुप हो जाएं? इसके जोड़ में छोटा ख्याल भी सिखाइए न? और अहो आश्चर्य! हमारे सामने गुरुजी के कंठ से अक्षरश: किसी विशाल झरने का स्रोत फूट पड़ा। कागज पेन्सिल ढूंढते अस्ताई पूर्ण होकर गुरुजी ने ५-६ बार सुना भी डाली। वे अंतरा बांधने लगे और हमने चीज मुखस्थ कर लेना ठीक समझा। लय धीमी करके पुन: गाने लगे। दिर् दिर् तनन दीम तनन दीं दीं तदीं, तनन दिर् दिर् तोम् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दिर् दानी, तार दानि, तोम् तननन॥ यललि यललि यलि यला य्याल्लेलल, धित्लांग् तक दिर् दिर् , धित्लांग तक दिर् दिर्, धा किटतक धुम् किटतक किडनग धित्तां, क्डां तक् धा, क्डां तक धा॥

गीतरचना के क्षेत्र में उनकी हरएक कृति ऐसी ही उद्देश्यपूर्ण रहा करती थी। प्रत्येक गीत का अपना स्वतंत्र प्रसंग है, विस्तृत इतिहास है। इसे अब कौन और कैसे लिखेगा? हिन्दुस्तानी संगीत का शृंगार इतनी उत्कटता से सजानेवाला बहुआयामी व्यक्तित्व एकमात्र श्री रातंजनकर ही थे।

एक दिन कक्षा में हम लोग लच्छासाख की तालीम ले रहे थे। अचानक कोई शख्स वहां आया और उसने बताया– "उस्ताद फैयाजखां लखनऊ में कश्मीर होटल में ठहरे हैं। द्वितीय महायुद्ध चल रहा था। वॉर फंड के लिए हरदोई, सीतापुर, लखिमपुर, फैजाबाद में उनके जलसे होंगे।अत: ५-६ दिन तक वे प्रतिदिन आते जाते रहेंगे। उन्होंने 'श्रीकृष्ण' को याद किया है।" तालीम रोक कर गुरुदेव ने हमसे कहा, शहर में खांसाहब की मौजूदगी में मैं आपको तालीम नहीं दे सकता। आप दोनों अभी उनके पास जाकर बताइए लच्छासाख का सामान जुटाना है। राग की कोई बंदिशें हों तो हमें सिखाइए। हम उन्हें सम्हाल कर रखेंगे। श्री भट और मैं दोनों सीधे उठकर ११ बजे काश्मीर होटल पहुंच गए और आनेका कारण बताया। खां साहब हंस दिए और इधर उधर की बातें हुईं। प्रतिदिन ११ बजे हम लोग उनके पास जाते और लौट आते। एक दिन खांसाहब एकदम अकेले बैठे हुए थे। इतनेमें उनके भोजन की तैयारी हुई। तौलिया फैलाकर एक प्लेट में ४०-५० फुलके और चीनी के बड़े कटोरे में आधा सेर मटन-शोरबा लेकर खांसाहब बैठ गए। एक फुलका उठाकर पूरा का पूरा मटर पर रखते हुए हाथ में उठा लिया और हमसे कहने लगे, "सुनो! आज ४-५ दिन से तुम दोनों मेरे पास बराबर आ रहे हो। क्यों अपना वक्त बरबाद करते हो? किसी दूसरे के शागिर्द होते तो एक-दो चीज़ें गुनगुनाकर सिखा देता। पर चूंकि तुम श्रीकृष्ण के शागीर्द हो मैं ऐसा नहीं कर सकता। सच बात बताऊं,

मुझे लच्छासाख की तालीम नहीं है। ऐसे राग श्रीकृष्ण के सिवाय कौन जानता है? उसके रहते हुए तुम पीछे क्यों पड़ गए? क्या उसपर तुम्हारा भरोसा नहीं? भावावेश में हमने खां साहब के, हमारे दादागुरु के पैर पकड़ लिए और अपराधी चेहरा लेकर अपने गुरुवर के पास वापस चले आए। ऐसा नेकदिल इन्सान साक्षात् परमेश्वर नहीं तो और क्या होता है?

एक बार रैंगलर परांजपे की उपस्थिति में सुबह के राग सुनने का प्रस्ताव श्रीमती शकुंतलाबाई परांजपे ने गुरुदेव के पास भेजा। सुननेवालों में पूनाके कतिपय रसिक और संगीतकार आमंत्रित थे। महफिल का कमरा लोगों से ठसाठस भरा हुआ था। तानपूरे मिल जानेपर गायनाचार्य मिराशीबुवा का आगमन हुआ। जैसे तैसे जगह बनाकर गुरुदेव के सामने परंतु मेरे तानपूरे के पास उनके लिये भी जगह बनाई गई और गायन की शुरुआत हुई। प्रारंभिक तोहफे के रूपमें, गायक की ओर से, श्रोताओं को 'सालग बराली' पेश की गई। नितांत गंभीर वातावरण में तोड़ी और काफी की वह लुका-छिपी समझदार श्रोताओंके रोंगटे खड़े कर रही थी। सभी के मनमें राग के नाम के विषय में कुतूहल जाग उठा। इतनेमें एक वाचाल सज्जन ने श्री मिराशीबुवा से ही राग का नाम पूछ लिया। इशारेसे ही बुवासाहब ने उसे चुप करा दिया। कुछ समय बीता और राग अपने अंतरें में फैल गया। पुनः उसी सुगबुगाहट ने जोर पकड़ा और वह गुरुवर की तंद्रामें विघ्न पैदा करने लगी। पीछे बैठे हुए मुझसे गुरुदेव ने पूछा, कौन बात कर रहा है? राग का नाम जानने की श्रोताओं की इच्छा मैंने उन्हें बताई। क्षणभर रुककर गुरुदेव ने संक्षेप में अपनी नई कल्पना का परिचय बुवासाहब को दिया। बंदिशें पुराने ढांचे की होने से बुज़ुर्ग लोग तो अपनी शिक्षा-दीक्षा को याद करते हुए निजामुद्दीन औलिया का स्मरण करने लगे। भोजन के समय रैंगलर परांजपे ने नए-पुराने मेल-मिलाप पर एक छोटा-सा वक्तव्य कर दे डाला।

ऐसा प्रयोगशील गायन क्या अब सुनने, सीखने, अनुभव करने मिलेगा? उनके हाथों कितने ही लुप्तप्राय रागों ने पुनर्जन्म लिया तो न जाने कितने रागों ने नया अवतार ग्रहण किया!

एक दिन 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' की मीटिंग में सम्मिलित होने के लिए ग्वालियर से खैरागढ़ संध्या सात बजे पहुंच गया। गुरुजी के कमरे में गानसम्राज्ञी सिद्धेश्वरी देवी, उनकी कन्या शांतादेवी, हॉस्टेल के कुछ छात्र-छात्राएं बैठ कर गाने-बजाने के विषय में चर्चा कर रहे थे। देस, सोरठ, नारायणी, खमाज, झिंझोटी, तिलंग जैसे रागों की बारीकियों पर तथा उनके स्वरोच्चारण को लेकर बातें हो रही थीं। सोरठ में 'गुन को मोल तोल ना कीजे' और 'आज नंद घर जाए कृष्ण कन्हाई' बंदिशोंकी रचना हो गई थी। मुझे देखते ही गुरुवर ने नई बंदिशें सिखाना शुरू किया। रागों का वह नाक-नक्श देख कर सिद्धेश्वरी बाई चुप नहीं बैठ सकी। मुझको तालीम देनेका बहाना कर वहां पर बैठे हुए हम सभी एक साथ गाने लगे। दस-पंदरह रागों की नई-पुरानी बंदिशें, रागों की खूबियां, उच्चारण की बारीकियां एक के बाद एक प्रकट होने लगीं। सिद्धेश्वरी देवी तो अपना सारा मान-सम्मान भुला कर बाकायदा तालीम ही लेने लगी। कोई ३०-३५ बंदिशों की हम सभी ने उस रोज तालीम ली। ऐसा जीता-जागता 'इनसाइक्लोपीड़िया' थे हमारे गुरुवर!

वर्ष १९४३ के दिसंबर माह में मेरी 'संगीत निपुण' भाग १ की परीक्षा निश्चित हुई। भातखंडे विद्यापीठ में सम्पन्न होनेवाली इस कक्षा की यही सर्वप्रथम परीक्षा थी। विद्यापीठ ने इस प्रसंग को पूर्ण गंभीरता से लिया। सभी की आंखें, परीक्षकों की विशाल टोली की आंखें, मेरे रूप में सामने बैठे हुए एकमात्र बलि के बकरे की ओर तथा वहां पर होनेवाली उठापटक की तरफ

गड़ गई थीं। परीक्षकों में थे उस्ताद मुश्ताक हुसैन खां, उस्ताद अलाउद्दीन खां, पं. वाडीलाल शिवराम नायक, पं. राजाभैया पूंछवाले और मेरे गुरुवर पं. रातंजनकर। प्रश्नों की झड़ी का शुभारंभ पं. राजाभैया पूछवाले ने किया। "तुमने तो रागोंकी लंबी फेहरिस्त दे रखी है। इतने सब राग तैयार हैं?" मेरे हां कहने पर शाम कल्याण की फरमाइश हुई। ४०-४५ मिनिट तक शाम कल्याण के मैदान में मन:पूत घूम लेने पर मुझे रोक दिया गया और अलाउद्दीन खां साहब ने पूछा - "बंगाल भैरव क्या होता है? जरा समझाओ तो।" कुछ देर बाद अगला सवाल किया। और कोई भैरव आता है? तीन-चार भैरवों की बंदिशों की अस्ताई, अंतरे सुन लेने पर मुश्ताक हुसैन खां काफी और सिंधुरे पर अड़ गए। साधरे-धमार तक उन्होंने सुन लिए पं.. वाडीलाल बिलावल और उसकी किस्मों पर अड़ गए। अलाउद्दीन खां ने अचानक धनाश्री की फरमाइश की। राग का पहला आलाप जैसे ही हुआ वाड़ीलाल जी ने भीमपलासी गाने के लिये कहा।

अब धनाश्री सुनाओ। एक बार भीपलासी, एक बार धनाश्री। फिर भीमपलासी, फिर धनाश्री, पुन: भीमपलासी। यही क्रम दस-बीस मिनिट तक चलता रहा और मैंने अपना होश खो दिया। क्या मैं गलत गा रहा हूं? वही वही सवाल बार बार क्यों पूछ रहे हैं? परीक्षा एकदम रोक दी और मुझे जाने के लिये कह दिया। मैं तो पसीने से तर हो गया था। समझ लिया; अपने गुरुजी की शिक्षा-दीक्षा को आज मैंने मिट्टी में मिला दिया। तानपूरे उठाकर पासवाले कमरे में घुस गया। गुरुबंधु श्री. के. जी. गिंडे ने यह सब देख लिया वे भी समझ नहीं पाए, रागों की यह उलट-फेर बार बार क्यों होती रही? मैंने उनसे कहा, मुझे अकेले छोड़ दो। अब मैं जी भरकर रोऊंगा। परीक्षा का माहौल शांत हुआ। सब लोग कालेज छोड़ कर चले गए। मैं उस बंद कमरेमें छटपटाता पड़ा रहा। वाड़ीलालजी ने चुपकेसे छोटबा से पूछा, "अरे! वह चिंचोरे कहां है? कहीं दिख नहीं रहा?" वे स्वयं मेरे पास आये; कमरा खुलवाया और रिक्षामें बैठा कर केसरबाग चौराहे तक ले गए। बड़े लाड़-दुलार से बातें कीं । मेरे शांत हो जाने तक, हंस देने तक हम दोनों रिक्षा में बैठे रहे और फिर कॉलेज लौट आए। "अरे! चिंचोरे! तुम्हारी आंखों में पानी? मेरे उस नाटक का तुमने क्या अर्थ निकाल लिया? मैं तो रामपुर के उन दोनों उस्तादों को दिखा रहा था कि भातखंडे जी की सोहबत में रागों की चट्टानें कैसे स्थिर और अटल बन जाती हैं।"

बाद में मुझे मालूम हुआ कि नंबर घटाने-बढ़ाने को लेकर श्री रातंजनकर और उस्ताद मुश्ताक हुसैन खां में लंबी बहस हुई और पूरे नंबर दिए नहीं जाते, इस शिष्टाचार को खां साहब ने मान लिया।

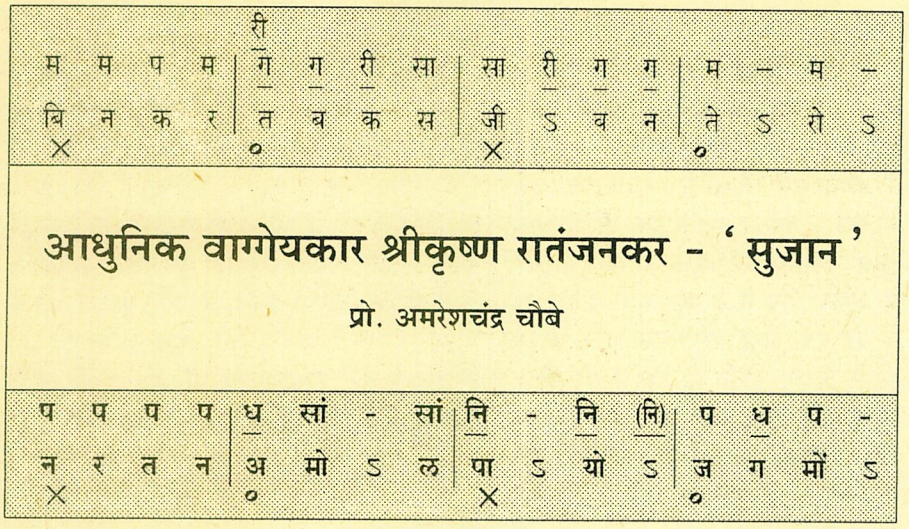

(भातखंडे संगीत कॉलेज के स्नातक। संगीत-निपुण। इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय से अध्यापक के नाते आरंभ से संलग्न। संप्रति कंठ्य संगीत विभाग के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष।)

'वाक्' अर्थात् भाषा, साहित्य , एवं 'गेय' अर्थात् 'संगीत' इन दोनों पदोमें सिद्ध रचनाकार को शास्त्रों ने ''वाग्गेयकार' कहा है और उसे 'गुणी', 'कलावंत', 'गंधर्व', 'नायक' एवं 'पंडित' इन सभी कोटियों से श्रेष्ठ माना जा सकता है। पाश्चात्य संगीत में 'वाग्गेयकार' की ही भांति Composer को सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ ने एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार के लक्षण गिनाए हैं। श्रेष्ठ वाग्गेयकार की कसौटी पर यदि हम श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर 'सुजान' को परखें तो वे शत प्रतिशत खरे सिद्ध होंगे। श्री रातंजनकरजी की मातृभाषा मराठी होने पर भी, उनके जीवन का अधिकांश भाग हिंदीभाषी प्रांतों, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में व्यतीत होने के कारण उन्होंने, न केवल हिंदी , व्रज अवधी एवं उर्दू भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था, वरन् वे यहां के जन-जीवन में घुल-मिल गए थे। शब्दानुशासन-ज्ञान, (अर्थात् व्याकरण-शास्त्र का ज्ञान), अभिधान-प्रवीणता (अमरकोष आदि ग्रंथों का ज्ञान), छंद प्रभेदवेदित्व (छंदों का ज्ञान), अलंकार-कौशल, रसभाव-परिज्ञान आदि वाग्गेयकार के आवश्यक गुण उन्हें, उनके पिता, श्री नारायण रातंजनकर द्वारा संस्कृत भाषा के शिक्षण के कारण प्राप्त हुए थे। जहांतक उनके संगीत-ज्ञान का प्रश्न है, सर्वविदित है कि श्री रातजंनकरजी को पंडित बालकृष्ण बुवा के शिष्य पं. अनंत मनोहर जोशी (औंध), पटियाला घराने के उस्ताद कालेखां, आगरा घराने के मूर्धन्य कलाकार उस्ताद फैयाजखां के शिष्यत्व में देशी राग-ज्ञान, आलप्ति-नैपुण्य, लय-ताल-कला का ज्ञान एवं सुभग गेयता प्राप्त हुई थी। इसी प्रकार पं. भातखंडे जैसे महान् शास्त्रकार के सान्निध्य एवं कृपा के कारण प्रबन्ध-प्रगल्भता अर्थात् (प्रबन्धों का उत्तम ज्ञान), अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बंध रचना करने की शक्ति तथा नूतन धातु-विनिर्मितिज्ञान (नई नई स्वर-रचना करने की शक्ति) मिली थी। इस प्रकार 'मातु' एवं 'धातु' इन दोनों अंगों में निपुणता प्राप्त

कर श्री रातंजनकरजी आधुनिक युग के एक श्रेष्ठ वाग्गेयकार बन सके।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री रातंजनकर एक उच्च कोटि के संगीतज्ञ, शिक्षक एवं शास्त्रकार भी थे। वाग्गेयकार के रूप में वे विख्यात थे और उन्होंने अपना उपनाम 'सुजान' धारण किया था। सन १९२७ से १९५६ तक 'भातखंडे संगीत महाविद्यालय', लखनऊ के प्राचार्य के रूप में अथवा सन १९५७ से १९६० तक 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय', खैरागढ़ के उपकुलपति के रूप में कठिन प्रशासनिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए भी रातंजनकर जी का भावपूर्ण हृदय, निरंतर कलात्मक अभिव्यक्ति करता रहा। एकांत अथवा व्यस्तता के मध्य, कार्यालय में अथवा रेल में प्रवास करते समय उन्हें कभी भी अन्त:प्रेरणा होती थी और कुछ ही क्षणों में वह एक सुंदर कलात्मक गीत का रूप धारण कर लेती थी। उनकी प्रथम अभिव्यक्ति ही इतनी उत्कृष्ट होती थी कि न तो दुबारा उसे सुधारने की आवश्यकता थी और न ही उसके लिये उनके पास समय था। रातंजनकरजी ने इस प्रकार के लगभग ७५० शास्त्रीय गीतों को संगीत-साधकों के कल्याण हेतु रचा जो 'अभिनव गीत मंजरी' पुस्तक के ३ भागों के रूप में प्रकाशित हुए। तीसरे भाग के प्रकाशन के उपरान्त भी अनेक गीत रचे गए जिनका प्रकाशन किया जाना संगीत-जगत् के लिए हर दृष्टि से लाभप्रद होगा।

'अभिनव गीत मंजरी' के ३ भागों में प्रचलित सभी शास्त्रीय गीत-प्रकार जैसे ध्रुवपद, धमार, ख्याल, तराना, लक्षण-गीत, सरगम आदि के उत्कृष्ट नमूने उपलब्ध होते हैं। रातंजनकरजी ने बहुप्रचलित रागों में तो गीत-रचना की ही, उन्होंने विशेष ध्यान उन अल्प प्रचलित रागों की ओर भी दिया कि जिनके स्वरूपों का मानकीकरण (Standardisation) नहीं हो सका था, और जिनमें परंपरागत गीतों का अभाव था। ऐसे राग जैसे नट, कुकुभ, शुक्ल, बिलावल, हेमनट,, दीपक, शिवमत भैरव, आनंद भैरव, प्रभात भैरव, गौरी, मालवी, पंचम, भटियार, बरवा, खट, बिलासखानी, भूपाल तोड़ी, लक्ष्मी, लाचारी तोड़ी आदि अनेक रागों में विभिन्न गीतप्रकारों को रचकर, राग-संगीत की धरोहर को लुप्त होने से उन्होंने बचाया, उन रागों के स्वरूपों को स्पष्ट किया तथा विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया।

हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत पद्धतियों में परस्पर समझ एवं सद्भाव बढ़ाने के उद्देश्य से उन्होंने, अनेक कर्नाटकीय रागों, जैसे हंसध्वनि, पूर्व कल्याण, चारुकेशी, मलय मारुतम्, नट भैरवी, वसंत मुखारी, गोपी वसंत, नारायणी, आभोगी, दाक्षिणात्य वसंत में बंदिशें कीं जो पर्याप्त लोकप्रिय हुई हैं।

कर्नाटकीय गीत-प्रकार 'वर्णम्' को अपनाकर उन्होंने छात्रों के कल्याणार्थ, मोहनम्, कल्याणी, खमाज, केदार गौल, भैरव, तोड़ी आदि कई रागों में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में 'वर्णम' की भी रचना की। गला तैयार करने, राग स्वर एवं लय को साधने के लिये इन 'वर्णम्' गीतों का छात्रों के हेतु विशेष उपयोग है। ये 'वर्णम्' वर्णमाला नामक पुस्तक में प्रकाशित हो चुके हैं। जिस प्रकार तान-अंग की बन्दिशों या टप्पा-रचनाओं को सीखने से गले में फिरत आती है उसी प्रकार इन 'वर्णम्' का अभ्यास करने से, न केवल तानों के लिये गला बनता है, बल्कि विभिन्न लयकारियों का भी अच्छा अभ्यास होता है।

जैसा अभी कहा गया, स्व. रातंजनकरजी को संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान था। अतएव, उन्होंने प्रबुद्ध श्रोताओं के हेतु संस्कृत भाषा में भी 'ख्यालों' की सुंदर रचनाएं कीं। यथा - पूरिया में मध्यलय त्रिताल का ख्याल 'श्रुणु मधुप रे, नवकुसुममकरंदरसज्ञता, ते अवलोकति

ब्रवीमी ते कुतूहलप्रेरितो।' अथवा राग चारुकेशी में 'प्रिय चारुकेशी मनसिज मनोहारिणी चन्द्रमुखी सुन्दरी, नैव विद्यते, उपमा ते हृद्यताया:।' ये सरल संस्कृत में रचे गए ऐसे गीत हैं जिनमें काव्य, उसके भावप्रद एवं स्वरलय पक्ष इन दोनों का बड़ी कुशलता से निर्वाह किया गया है। तानसेन प्रशस्ति 'ध्रुव: कण्ठस्वरोद्गार शब्दोच्चारो ध्रुवस्तथा। रागशुद्धि यत्र तानसेन पदं ध्रुवम्'। आठ रागों की रागमाला में अथवा सरस्वती-वंदना में 'हंसारूढा सितवसनयुता शारदा ब्रह्मपुत्री', छ: रागों की रागमाला में रची गई ये दानों प्रशास्तियां पर्याप्त लोकप्रिय भी हुईं। मौलिक प्रयोगों की शृंखला में उन्होंने कुछ ऐसे तराने भी रचे जिनमें तराने के निरर्थक अक्षरों के साथ फारसी के स्थान पर संस्कृत भाषा की काव्यात्मक पंक्तियां हैं।

यद्यपि रातंजनकरजी ने ध्रुवपद, धमार, सरगम, लक्षणगीत, तराना एवं टप्पे भी रचे परंतु इन सबकी अपेक्षा विलंबित एवं मध्यलय के ख्यालों की संख्या ही सबसे अधिक है। उनके समय में प्रचलित ख्याल की अधिकांश बन्दिशों में कविता एवं उसके भाव पक्ष की नितांत उपेक्षा हो रही थी। गायक कलाकारों, विचारकों एवं कलामर्मज्ञों का एक वर्ग था, (और शायद इस विचार-धारा के कुछ व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं) जो यह मानता है कि शास्त्रीय बंदिशों में राग, स्वर, एवं ताल पक्ष को ही प्राधान्य है।) कविता, उसके शब्द एवं भाव का महत्त्व इन बन्दिशों में रहता है। इस कारण अनेक ऐसी बन्दिशों का प्रचलन हो गया था (और जो बहुत कुछ आज तक है) कि जिनमें एकदम लचर भाषा का व्यवहार हुआ था। कभी कभी तो इन बन्दिशों के शब्दों का अर्थ भी निकाल पाना कठिन हो जाता था। (जैसे राग सुहा का झपताल : 'अककक कककक कककक करते। थेइया थेइया सुरसा घौं ते। गइये गुणन ते, थेइ थेइ करते थेइ आवे, थेइ आवे, तिरनाद तिरते'।) अथवा राग देशी में झपताल (उड़ौड़न बाजे, उल्ला मुरारे, मदमाते कांधे कांवरिया। दीप जो ज्योत प्रकाश करत है, घन नन्द, घन नन्द, कृष्ण औतारे, मधमाते,) इस प्रकार की अधिकांश बन्दिशों की भाषा में विकृति आने का एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि ये बन्दिशें ऐसे व्यक्तियों के पास जाती रहीं कि जिन्हें न तो भाषा एवं कविता का समुचित ज्ञान था और न ही उसके अर्थ या भाव से विशेष लगाव। उनके लिये तराने के शुष्काक्षर, टप्पे की पंजाबी भाषा या ख्यालों की ब्रजभाषा सभी एक जैसी थी। अत: अधिकांश गीतों की भाषा नष्ट होती चली गई और उसके विषय, सैंया, बलमा, सास, ननंदिया, दौरानी, जिठनियां एवं पायलिया की दास्तान बन कर रह गए। दरबारी ऐसे गंभीर भावपूर्ण राग में 'पायल की झनन झनन' अथवा रात्रि के तीसरे पहर में गाए जानेवाले राग परज में 'मैं क्यों गई जमुना पानी' अथवा प्रात:कालीन गंभीर, शांत राग भैरव में 'प्याला मुझे भर दे रे मतवारे मोरे, बीत गईली सगरी रैन, भईली भोर' ये कुछ ऐसी गीत-पंक्तियां हैं, जिनमें रचनाकार राग के स्वभाव, प्रकृति एवं गायन-समय की एकदम उपेक्षा करता प्रतीत होता है। ऐसी बन्दिशें न केवल जनसाधारण, बल्कि समझदार रसिकों के मन पर भी अनुकूल प्रभाव उत्पन्न नहीं होने देतीं और शास्त्रीय संगीत की प्रतिष्ठा को मलिन करती रही हैं।

रातंजनकरजी ने ख्याल-बन्दिशों में इस प्रकार की त्रुटियों का अनुभव किया और नई बन्दिशों की रचना कर इन त्रुटियों को दूर करने का यथासंभव प्रयास किया। विलंबित ख्याल की लय धीमी होने के कारण, दो या एक पंक्ति की स्थायी एवं इसी प्रकार अन्तरे का औचित्य समझा जा सकता है; परंतु मध्य अथवा द्रुत लय के गीतो में कविता को एकदम संक्षिप्त करनेका

औचित्य समझ में नहीं आता। ईश्वर ने मनुष्य को भाषा की जो शक्ति प्रदान की है उसका गायन में उचित प्रमाण में उपयोग होना ही चाहिए। इसी कारण रातंजनकरजी ने अधिकांश मध्य, द्रुत लय की रचनाओं में अच्छी खासी कविता की। उनकी बन्दिशों में प्राय: ४ पंक्तियां या ताल की आवृत्तियों की स्थायी और ४ आवृत्तियों के अन्तरे सुनने को मिलते हैं। कुछ कुछ बन्दिशें तो इससे भी लंबी हो गई हैं। परंतु इन बन्दिशों की विशेषता यह है कि इनकी कविता के कारण राग, स्वर, लय एवं ताल का पक्ष गौण नहीं होने पाया। इन बन्दिशों को गाते समय मुक्त कविता का आनंद तो मिलता ही है साथ ही साथ राग में प्रयुक्त हो सकनेयोग्य नए नए समूहों तथा शब्द एवं स्वरों को ताल के वजन एवं प्रवाह में कलात्मक चातुर्य से बैठाने का परिचय भी प्राप्त होता है (उदाहरणस्वरूप राग मालकौंस में रूपक ताल में "फूली सुगंधित रातरानी" यह रचना देखें :

फूली सुगंधित रात रानी
मंद, शीत, समीर, लहलहरात, रस की बात
करत लुभात मन को भात प्यारी।
गगन चढ़ि आयो चंदा,
कहत रानी कौन चेटक किया
तुम जो महकत, मोहि बस कर लियो आज।
रैन रानी, रैन रानी, चैन रानी॥

शास्त्रीय बन्दिशों के लिये यह आवश्यक होता है कि उनके द्वारा राग स्पष्ट हो और साथ ही साथ गायकी, अर्थात् आलाप तान के विस्तृत विविध प्रयोगों के लिये भी अनुकूलता रहे। ग्रन्थों में यही बात स्थाय-भंजनी एवं रूपक-भंजनी के रूप में रक्खी गई है। अभी जो बन्दिश प्रस्तुत की गई है उनमें 'भंजनी' क्रिया भी सहज में की जा सकती है। स्थाई एवं अंतरेमें सर्वत्र, मध्यरात्रि की चांदनी में रातरानी पुष्प की शीतल सुगन्ध व्याप्त है और बोल आलाप छोटी छोटी तानों, बोलतानों एवं बोल बांट के द्वारा उसे सहज ही फैलाया जा सकता है।

भगवान कृष्ण की मुरलीधर छवि का वर्णन राग खमाज के अत्यंत लोकप्रिय मध्यलय त्रिताल में–

'सखि सांवरो गिरिधर गोपाल, जाके मोर मुकुट कुंडल कान।
मुरली अधर मन लुभात मुसकान।
बिसर गई तन की सुध-बुध मन की सारी,
लीन भई ब्रज की नारी,
निरख निरख मोहनि मूरत, घरि पल छिन दिन, रैन लगत ध्यान॥

इस रूपमें देखने को मिलता है।

इसी प्रकार राग नारायणी के मध्यलय त्रिताल में कृष्ण के जन्म पर बधाई :–

'सहेलरिया गाओ री आज, मोरे मंदिर मंगल गाओ,
बजाओ, सुखसों आनंद बधाई॥
शुभ घरी शुभ महूरत मनाओ, नंद घर जायो कुंवर कन्हाई।

वस्तुत: राग नारायणी को रचकर हिन्दुस्तानी संगीत में उसे प्रचलित एवं लोकप्रिय बनाने का महत्त्व-पूर्ण कार्य पंडितजी ने किया है। राग 'खट' जैसे क्लिष्ट राग में तानसेन का गुणगान कितना प्रभावपूर्ण बन पड़ा है, यह इस बन्दिश को सुनने से समझ में आ सकेगा :–

बंधा समा, सुर लय राग ताल सों आसमान छायो।
गुणि गंधर्व ठाड़े, सुनत हूं आछी नीकी तान॥
शाहे अकबर रसिक गुनज्ञानी, रिझायो ऐसो महा गुनखानि
कहां लौं बखान कीजे, करतब, तुम्हरे तानसेन गुनी चतुर 'सुजान'॥

वाग्गेयकार 'सुजान' एक दार्शनिक की भाति राग भटिहार की इस मध्यलय की रचना में संसार की निस्सारता का वर्णन करते हुए उपदेश देते हैं कि सुख एवं दुख की अनुभूति मन में वासनाएं रहने के कारण ही होती है। वासनाएं समाप्त हो जाने पर सुख एवं दुख की स्थिति काल्पनिक हो जाती है। अत: मन पर नियंत्रण करना आवश्यक है। उदा० 'तनिक सुन री, सत वचन अब' यह सुप्रसिद्ध बंदिश।

इस प्रकार, ऐसी अनेक बन्दिशें हैं जिनमें राग का विचार रखते हुए गीत-रचना के लिए अधिकाधिक नवीन विषयों का उपयोग किया गया है। यही बात उनके विलंबित लय के ख्यालों में भी देखने को मिलती है। कुछ कुछ विलंबित ख्यालों की रचना ताल की दृष्टि से इतनी शिथिल होती है कि उन्हें अन्य तालों में भी बैठाकर गा सकना संभव होता है। परंतु रातंजनकरजी के विलंबित ख्याल ताल के सांचे में इस प्रकार गढ़े गए हैं कि उन्हें किसी अन्य ताल में गाने पर उनका सौन्दर्य नष्ट हो जावेगा। स्वयं रातंजनकरजी इस बात के कायल थे कि बन्दिश जिस ताल में की गई हो उसीमें जैसे की तैसी सदैव गाई जाए। और कम से कम उनके द्वारा रचित विलंबित ख्याल इतने सुगठित होते हैं कि उनका ताल-परिवर्तन या लय-परिवर्तन भी संभव नहीं होता।

श्री 'सुजान'ने गीत-रचना कर संगीत-वाङ्मय को तो समृद्ध किया ही उन्होंने कई नए रागों एवं तालों को भी प्रचलित किया। जिन श्रोताओं ने उनके द्वारा रचित राग वियोगवराली, सालगवराली, पोलू की मांझ, मार्ग बिहाग, सूरंजनी, गौरी शंकर, जोगेश्वरी, रजनी कल्याण आदि राग सुने हैं वे उनकी कलात्मक पैंठ का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं। इसी प्रकार उन्होंने अनेक अप्रचलित हिन्दुस्तानी तालों एवं दाक्षिणात्य तालों के ठेके भी प्रसिद्ध किए। रूपक ताल का विलंबित ठेका, विक्रमताल १२ मात्राएं, ध्रुवताल १७ मात्राएं, (खंडजाति) गजमुख ताल १६ मात्राएं, हंसविलास ताल १६ मात्राएं, सार्ध रूपक, १०॥ मात्राएं तथा २१ मात्राएं, दाक्षिणात्य रूपक ६ मात्राएं, पंचानन ताल १६ मात्राएं, मणिताल ११ मात्राएं इन विभिन्न तालों हेतु उन्होंने ताल-लक्षण-गीतों की भी रचना की।

इस प्रकार, पं. रातंजनकरजी ने आधुनिक युग की प्रवृत्तियों को लक्ष्य में रखते हुए जो संगीत-सर्जना की वह अपने आप में अनुपम है। मैं यही कह सकता हूं कि श्री 'सुजान'ने 'सदारंग', 'अदारंग', 'हर रंग', 'मन रंग', 'ललन पिया', 'कुंवर श्याम', 'प्रेमपिया', 'नजर पिया' आदि हिन्दुस्तानी संगीत के वाग्गेयकारों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है।

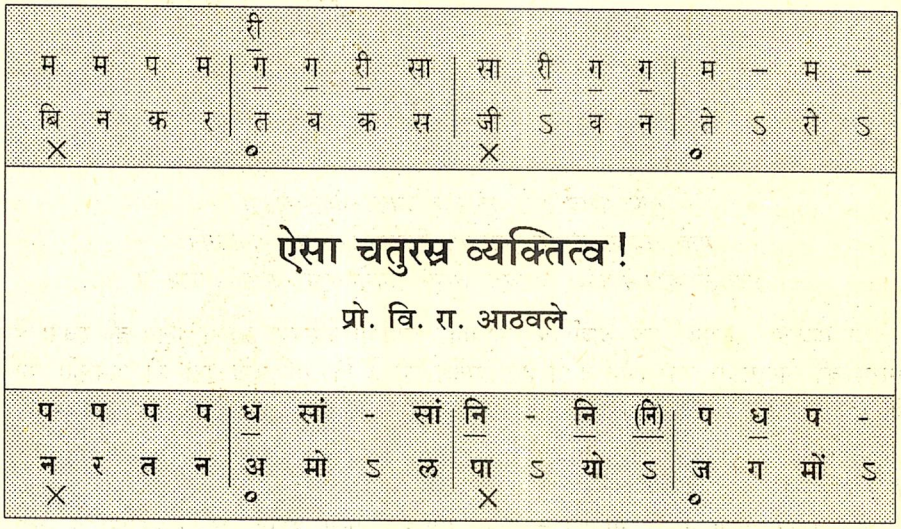

ऐसा चतुरस्र व्यक्तित्व !

प्रो. वि. रा. आठवले

(पं. विनायकराव पटवर्धन तथा उ. विलायत हुसेनखां के शिष्य। लब्धप्रतिष्ठ गायक एवं संगीत-शास्त्रवेत्ता। एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय तथा 'गोवा कला अकादमी' संगीत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष । 'संगीत कला विहार' के भूतपूर्व संपादक। अनेक शिष्यों तथा पीएच.डी. छात्रों के मार्गदर्शक। संगीत के मान्यवर व्याख्याकार तथा लेखक। अण्णासाहब से निकट परिचय रखनेवाले।)

स्व. पं. श्रीकृष्ण नारायण ऊर्फ अण्णासाहब रातंजनकर का देहांत हुए कई साल गुजर गए । उनके सान्निध्य में उनके स्वभाव, कृतित्व एवं व्यक्तित्व के विषय में जो धारणा थी, जो महानता प्रतीत होती थी वह अब कई गुना अधिक मात्रा में अनुभूत हो रही है । जैसे जैसे समय बीतता है, वैसे वैसे उनके व्यक्तित्व के बारे में सोचते हुए उनके विषय में जो गलत फहमियां थीं वे दूर होकर उनका कृतित्व कितना महान् था अब स्पष्ट होने लगा है । किसी व्यक्ति के प्रत्यक्ष सान्निध्य में रहते हुए, जिन घटनाओं के आधार पर उसके व्यक्तित्व के विषय में अनुमान लगाते हैं, उसमें अपनी रुचि-अभिरुचि, राग-लोभ, लाभ-हानि का विचार होता है । परंतु बाद में यदि हम उन घटनाओं के बारे में निष्पक्ष रूप में एवं निर्लेप वृत्ति से सोच लेंगे तो उनका निराला ही अर्थ प्रतीत हो सकता है । स्व. अण्णासाहब के व्यक्तित्व के विषय में मेरा अनुभव भी कुछ ऐसा ही है । १९५३ में जब मैं 'आकाशवाणी' में नौकरी करता था, मेरी उनसे प्रथम बार भेंट हुई । उसके बाद, उनके निधन तक कई बार अलग अलग कारणों से साक्षात् हुआ । जैसे जैसे मुझे उनका अधिकाधिक सान्निध्य मिलता गया, वैसे ही वैसे उनके विषय में मेरी धारणाएँ उनके स्वभाव के बारे में लगाए गए अनुमान आदि में परिवर्तन होता गया और अब इतने वर्षों के बाद इन सब बातों की ओर तटस्थ भाव से देखने पर उनके महान् व्यक्तित्व की प्रकर्ष के साथ प्रतीति होने लगी है ।

जब मैं प्रथम बार उनके संपर्क में आया, तब स्व. अण्णासाहब कुछ विक्षिप्त, अहंमन्य

और पक्षपाती लगे थे । किन्तु बाद में जैसे जैसे उनसे अधिक मुलाकातें हुईं, उनके संबंध के पूर्वाग्रहों में भी बहुत अंतर पड़ता गया, और अब इतने वर्षों के बाद तटस्थता के साथ देखनेपर उनके उस समय के विचित्र लगनेवाले बर्ताव की संगति भी लग सकती है । अब उनके व्यक्तित्व के विविध पहलुओं की महत्ता अधिकाधिक मात्रा में समझ में आने लगी है ।

स्व. पं. अण्णासाहब रातंजनकर के व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं । शिक्षक के रूप में, कलाकार के नाते, पंडित, संगीतज्ञ की दृष्टि से, गुरु के प्रति आत्यंतिक निष्ठा से परिपूर्ण शिष्य की हैसियत से तथा कार्यकर्ता के रूप में और अंततोगत्वा मित्र के नाते उनके व्यक्तित्व की ओर देखना, उसका मूल्यांकन करना रोचक होगा, क्योंकि उनके व्यक्तित्व का समग्र रूप में विचार करते समय अनेक बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं । स्वभावत: सबसे पहले, उनके विचित्र बर्ताव का अन्वयार्थ उनके संपर्क में आनेपर अलग प्रतीत हुआ है । उदाहरण के लिए, एकाध व्यक्ति अगर अच्छा कलाकार हो, महफिलों में गण्यमान्य हो, किन्तु जिसने संगीत का सुसूत्र अध्ययन एवं अभ्यास न किया हो, तथापि उनसे यों ही शास्त्रार्थ करनेका बहाना बनाता हो, तो उस मान्यताप्राप्त व्यक्ति के साथ के उनके बर्ताव में विक्षिप्तता महसूस होती थी । इसके दो कारण संभवनीय हैं : एक है उनकी परिस्थिति और दूसरा है वितंडावाद करनेवाले व्यक्ति का उस क्षेत्र में अधिकार । परिस्थिति इसलिए कि आत्यंतिक गुरुनिष्ठा के फलस्वरूप, उनके आदेशानुसार, उन्होंने अपने घर से दूर, लखनौ में वास्तव्य किया और संगीत को ही अपना कार्यक्षेत्र चुना । फलत:, स्वाभाविक रूप में उनका स्थिर पारिवारिक जीवन कुछ अस्त-व्यस्त-सा हो गया था । ऐसी परिस्थिति में उनकी स्वार्थत्यागी वृत्ति की, आदर्शवाद की कद्र न करते हुए यदि कोई अनधिकारी व्यक्ति उनसे ख्वाहमख्वाह ही चर्चा करने के लिए आ जाए तो उनके बर्ताव में विक्षिप्तता दिखाई देती थी । किंतु यदि वह व्यक्ति सचमुच ही जिज्ञासु हो, तो अण्णासाहब उससे आत्मीयता एवं आस्थापूर्वक पेश आते थे। उसकी शंकाओं का निरसन करने का प्रयत्न करते थे ।

'आकाशवाणी' में, कलाकारों का स्तर निर्धारित करने के लिए शासन ने स्व. अण्णासाहब को श्रवण-कसौटी के लिए नियुक्त किया था । श्रवण-कसौटी के विषय में अण्णासाहब की राय यह थी कि कलाकार का स्तर निश्चित करते समय केवल लोकप्रिय एवं रंजन को ही कसौटी न मानकर कलाकार की तालीम, व्यासंग आदि बातें ध्यान में रखनी चाहिए । इस राय से सहमत न होनेवाले अनेक कलाकारों एवं उनके चाहनेवालों और हितैषियों ने अण्णासाहब के खिलाफ खूब हो-हल्ला मचाया था, उनपर विशिष्ट हेत्वारोप किया था । फलत: इस सब की प्रतिक्रिया के रूप में उनमें प्रथम दर्शन में विक्षिप्तता का आभास होता था । क्वचित् उनके कुछ निर्णयों के कारण उनपर पक्षपात का आरोप भी लगाया जाता था । किंतु उनके विचार में संगीत एक कला है, उसका एक स्तर है, उसके लिए व्यासंग, अभ्यास, सौंदर्य-दृष्टि सब आवश्यक है । संगीत के शिक्षक, प्रयत्नशील अध्येता एवं कलाकार की हैसियत से उनका यह दृष्टिकोण स्वाभाविक था । स्वभावत: इसी दृष्टिकोण से वे कलाकारों का मूल्यांकन किया करते थे । स्वाभाविक है कि यदि संबंधित व्यक्तियों को उससे लाभ हुआ तो वे अण्णासाहब की सराहना करते; किंतु इसके विपरीत होनेपर उनपर पक्षपात का आरोप लगाया जाता था । इसी प्रकार, अण्णासाहब के कुछ विचार दृढ़ होने से वे बिना किसी समझौते के उन्हें प्रस्तुत करते थे । तब स्वभावत: उनके बारेमें प्रथम दर्शन में यह धारणा होती थी कि वे अहंमन्य हैं । किन्तु उनके संबंध में ये सब गलत धारणाएं एवं पूर्वाग्रह उनके निकट संपर्क में आनेपर दूर हो जाते

और अण्णासाहब का संगीत-क्षेत्र का अधिकार, निष्ठापूर्वक कार्य करने की उनकी प्रवृत्ति एवं लगन आदि के दर्शन हो जाते तथा उनके व्यक्तित्व की महानता प्रतीत होने लगती ।

स्व. अण्णासाहब के विविधरंगी व्यक्तित्व में शिक्षक, गुरु तथा गुरु के प्रति आत्यंतिक निष्ठा एवं भक्ति रखनेवाले शिष्य के रूप में उनकी महत्ता प्रकर्ष के साथ महसूस होती थी । ऐन जवानी में, अपनी आयु के २७/२८ वें वर्ष में, गुरुजी पं. भातखंडेजी के आदेशानुसार, उनके प्रति निष्ठा के फलस्वरूप, उनका कार्य आगे चलाने की दृष्टि से अण्णासाहब ने अपने पारिवारिक सुख को दुर्लक्षित कर, बंबई से दूर, लखनौ को अपना कार्यक्षेत्र निश्चित किया । वस्तुत: आप विश्वविद्यालय के उपाधिधारी थे और उस जमाने में जीवन में सफल होने के लिए अन्य मार्ग उपलब्ध थे । तथापि संगीत-कला की सेवा को जीवन-निष्ठा के रूप में स्वीकारने पर, उसके लिए जो स्वार्थत्याग आवश्यक था, जो आदर्शवाद अपेक्षित था उसे स्वीकारकर उन्होंने गुरु के कार्य एवं नाम को आगे बढ़ाया । इससे उनकी प्रखर गुरुभक्ति एवं ध्येयनिष्ठा दिखाई देती है और उनके महान् व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं ।

एक उत्तम आदर्श शिक्षक की हैसियत से स्व. अण्णासाहब का वैशिष्ट्य निश्चित ही लक्षणीय है। अपने रिश्तेदारों की अपेक्षा शिष्यों के बारे में उनका प्रेम और आस्था, गुरु के नाते उनका निराला ही दर्शन कराते हैं । कई शिष्यों को अपने पास रखकर उन्होंने विद्यादान किया । उनके व्यावसायिक जीवन को गढ़ा और विद्या की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए अपने गुरु का ऋण चुकाया । इस विषय में प्राचीन गुरुकुल पद्धति का आदर्श उनके सामने था । एक संगीत-संस्था के संचालक होते हुए भी उन्होंने व्यावहारिक सफलता के लिए आदर्श के साथ कभी समझौता नहीं किया । उल्टे संस्था-प्रणाली और प्राचीन गुरुकुल पद्धति में समन्वय साधने का दृष्टिकोण अपनाया । उनके इस वैशिष्ट्य के कारण उनके शिष्योंने उनकी आदरपूर्वक सराहना की तो आश्चर्य की बात नहीं है, किंतु शिष्यों को तालीम देते समय तथा उन्हें तैयार करते समय जिन त्रयस्थ व्यक्तियों ने उन्हें देखा है और शिष्यों के प्रति उनकी आस्था और प्रेम का परिचय पाया है, वे भी उनके इन गुणविशेषों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते । यद्यपि उन्होंने स्वयं गुरु-शिष्य परंपरा की तरह तालीम पाई हो, तो भी अपने शिष्यों के बारे में उनका दृष्टिकोण उदार था । उनका आग्रह था कि शिष्यों को परंपरा का निर्वाह करना चाहिए, संगीत के कलात्मक स्तर को अक्षुण रखना चाहिए तथा संगीत-मूल्यों की रक्षा करनी चाहिए । प्रयोगशीलता के प्रति उनका विरोध नहीं था । इसलिए जिस प्रकार उन्होंने स्वयं नव-सर्जन किया वैसे ही शिष्यों को भी उसके लिए प्रोत्साहित किया । नव-रागों का निर्माण, नई-नई बंदिशों की रचना उन्होंने स्वयं ही नहीं की, बल्कि शिष्यों को भी उस बारे में मार्गदर्शन करते हुए प्रेरित किया ।

यह सही है कि स्व. भातखंडेजी के प्रति उन्हें आत्यंतिक निष्ठा थी, किन्तु उसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि, चूँकि पं. भातखंडेजी के विचारों को उन्होंने आत्मसात् किया था, उनके विचारों में कर्मठता नहीं थी । वे स्वयं स्वतंत्र रूप में सोचते और शिष्यों से भी वैसी ही वृत्ति रखने की अपेक्षा रखते थे । किंतु नवनिर्माण का उपयोग रसिकों को ऊपरी तौर पर मोहित करने के लिए नहीं होना चाहिए, बल्कि आंतरिक प्रतिभा के स्पर्श से वह नि:सृत होना चाहिए यही उनका दृष्टिकोण था । उनकी राय में, संगीतविषयक चिंतन संगीत के छात्रों को, कलाकारों को स्वतंत्र रूप में करना चाहिए और इस संबंध में उनके संपर्क में आनेवाले छात्र का वे उसी रूप में मार्गदर्शन किया करते थे ।

एक प्रसंग का स्मरण हो रहा है । सन १९५६ के आसपास, वे जयपुर में मेरे यहां ७-८

दिन के लिए ठहरे हुए थे । उस समय मेरा रेडियो पर कार्यक्रम था । उस कार्यक्रम में उनका रचा एवं प्रचलित किया हुआ सालगवराली राग मैं गानेवाला था । यह राग मैंने उनके एक शिष्य से प्राप्त किया था और उसपर चिंतन करके अपनी पद्धति से उसे पेश करनेवाला था । मैंने अपना यह कार्यक्रम सुनने के लिए अण्णासाहब से प्रार्थना की । उसके बाद इस संबंध में उनसे चर्चा करके कुछ सुझाव देने के लिए कहा । इस प्रसंग में मुझसे बात करते हुए उन्होंने राग-संकल्पना के विषय में जो विचार प्रस्तुत किए वे महत्त्वपूर्ण हैं । उन्होंने कहा - "नव-राग का निर्माण होने पर, जब वह अनेक कलाकारों द्वारा गाया जाता है तभी उसका स्वरूप निर्धारित होता है । कई बार राग के कुछ पहलू जो निर्माता की कल्पना में न आए हों, वे अलग अलग कलाकारों के द्वारा दर्शित किए जाने की संभावना होती है ।" इसका मतलब यह है कि सालगवराली मैं मेरी प्रयुक्त की हुई स्वर-संगतियां उन्हें अभिप्रेत नहीं थीं; फिर भी उन्होंने अपनी राय देते हुए कहा कि इनका रागों में स्थान अवश्य है । इस प्रकार की नवीन कल्पनाओं से राग का स्वरूप विस्तृत होता जाता है और उससे तथा नवीन प्रयोगशीलता से राग समृद्ध होता जाता है तथा कला संपन्न होती जाती है । इस प्रसंग का उल्लेख यहाँ यह स्पष्ट करने के लिए किया है कि अण्णासाहब मुक्त विचारों के समर्थक थे तथा उनके विषय में यह धारणा गलत है कि वे कर्मठ थे । इस प्रसंग से यह ज्ञात हो जाता है कि किस प्रकार उन्नत एवं गुरु के लक्षण स्व. अण्णासाहब के व्यक्तित्व में निहित थे ।

यह कहने में किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि रागदारी संगीत के बारे में स्व. अण्णासाहब एक चलता-बोलता कोश थे । किन्तु लगता है कि उन्होंने अपना क्षेत्र रागदारी संगीत तक ही सीमित किया होगा, क्योंकि आज संगीत-शास्त्र में जो विविध शाखाएँ दीख पड़ती हैं, लगता है उनकी तरफ अण्णासाहब ने विशेष ध्यान नहीं दिया । उदाहरण के लिए संगीत का मानस-शास्त्र, लोक-संगीत-शास्त्र, संगीत का सौंदर्य-शास्त्र, संगीत का विज्ञान, संगीत-शिक्षण-पद्धति जैसी संगीत की विविध शाखाओं के संबंध में उनके विचार उपलब्ध नहीं होते । यह भी संभव है कि शिक्षक, प्रचारक एवं संस्था-संचालक की हैसियत से कार्यरत होने के कारण, केवल पांडित्यपरक अध्ययन करने के लिए उन्हें फुरसत प्राप्त नहीं हुई होगी । किन्तु रागदारी संगीत के प्रत्येक क्रियात्मक पहलू के संबंध में जो बातें आवश्यक थीं उनपर उन्होंने पर्याप्त चिंतन किया था और तद्विषयक मार्गदर्शन संगीत के अध्येताओं को किसी भी समय उपलब्ध हुआ करता था ।

स्व. अण्णासाहब के व्यक्तित्व का ऐसा ही एक दूसरा वैशिष्ट्य सामने आता है । अनेक घरानों में कुछ खास रागों को उन घरानों के वैशिष्ट्य के रूप में माना जाता है । इन रागों का स्वरूप समझने अथवा उनकी रचना करने के लिए उनकी बंदिशें सीखना आवश्यक होता है । इसके साथ ही कुछ ऐसे भी राग हैं कि जिनके रूप तो ज्ञात हैं, किन्तु उनकी बंदिशें प्राप्त नहीं होतीं । इस संबंध में अण्णासाहब का कार्य बहुत महान् है । छात्रों के मार्गदर्शन के लिए उन्होंने प्रचलित और अप्रचलित रागों में इतनी अप्रतिम बंदिशें बनाई हैं कि वे गायकी के लिए उपयुक्त तो हैं ही, साथ ही उनके कारण घरानों की ठेकेदारी पर भी प्रश्नचिह्न अंकित हो गया है । अप्रचलित रागों का स्वरूप स्पष्ट होने की दृष्टि से ये बंदिशें अत्यंत उपयुक्त हैं । उदाहरण के लिए, पूर्वी अंग के बिभास राग का स्वरूप समझने के लिए अण्णासाहब की बंदिश की ओर ध्यान देना पड़ता है । खट राग की एक घराने की ठेकेदारी अण्णासाहब ने अपनी बंदिश द्वारा दूर कर दी है । इस प्रकार अनेक रागों के उदाहरण दिए जा सकते हैं । बंदिशें

बनाने का अनमोल कार्य अण्णासाहब ने किया है । वाग्गेयकार के रूप में स्व. पं. रातंजनकर का कार्य बहुत ही महान एवं अमर है ।

यह बात सही है कि स्व. अण्णासाहब अपने जीवन में महफिल के कलाकार के रूप में सफल नहीं हुए; परंतु उसका यह मतलब नहीं कि अण्णासाहब का गायन बिलकुल सामान्य था, बल्कि वह अत्यंत ऊंचे स्तर का था । आयु के ५५-५६ वर्ष तक उनकी आवाज यद्यपि बहुत उत्तम नहीं मानी जा सकती, किन्तु गायन के लिए वह योग्य अवश्य थी । उस कालावधि में वे अनेक जाने-माने लोगों की महफिलों में गाया करते थे । उनकी रंगतभरी महफिलों की स्मृतियों का जिक्र उनके गायन के अनेक रसिक एवं जानकार श्रोता करते हुए पाए जाते हैं । जहाँतक मुझे स्मरण है, बड़ौदा में १९४७ के आसपास और जयपुर में १९४६ के आसपास संपन्न उनकी महफिलों ने बहुत ही रंग जमाया था । किन्तु अण्णासाहब खानगी महफिलों में जितने प्रभावपूर्ण ढंग से रंग भर देते थे, उतना प्रभाव उनकी सार्वजनिक महफिलों में दृष्टिगोचर नहीं होता था । तात्पर्य, यद्यपि उनके गायन का स्वरूप सामान्य श्रोताओं को आकर्षित करनेवाला नहीं था, किंतु जानकार रसिकों के लिए वह अवश्य आनंद-प्रदायक था, क्योंकि गायकी और रागों पर उनका जो प्रभुत्व था वह मर्मज्ञ रसिकों को एक अनोखा ही आनंद प्रदान करता था और इस बात की प्रतीति करा देता था कि यह गायकी कितनी और कैसी कसदार है ।

अण्णासाहब की सेहत साधारणत: विशेष अच्छी न होनेसे उनकी आवाज गायन के अनुकूल नहीं थी । साथ ही संगीत-शिक्षा के उत्तरदायित्व का भार सिर पर होने कारण उसका भी बुरा असर उसपर पड़ा था । उन्हें भी इस बात का एहसास अवश्य था । इस बारे में बोलते समय एक बार उन्होंने कहा था – "किसी विशिष्ट लक्ष्य को दृष्टिसम्मुख रखकर जब कार्य करना होता है तो उससे होनेवाली हानि को लेकर शिकायत करना व्यर्थ है । हम तो ठहरे संगीत के दीवाने! शिष्य तैयार करने का कार्य हमने स्वीकार लिया है तो अन्य लाभ-हानि का विचार हम क्यों करें?" उनके ये सहजोद्गार 'आकाशवाणी' पर उनके गायन के ध्वनि-मुद्रण के प्रसंग में मैंने सुने हैं ।

मित्र के रूप में अण्णासाहब अपने हमउम्र व्यक्तियों के साथ खुले दिल से बर्ताव करते थे या नहीं, इसका न तो मुझे अनुभव ही है, न उस संबंध में मैंने कोई निरीक्षण ही किया है । मित्रमंडली इकट्ठा करना एक प्रवृत्ति है । कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो अपने खुले दिल के बर्ताव से अपने इर्दगिर्द मित्र परिवार को इकट्ठा करते हैं । यद्यपि अण्णासाहब की खानगी बातचीत में उनके खुले दिल से किए जानेवाले व्यवहार का ईषत् अनुभव हुआ भी हो, किन्तु आम तौर पर लगता था कि अण्णासाहब अबोल मनोवृत्ति के ही व्यक्ति थे । प्राय: यही दिखाई देता है कि मित्रमंडली को इकट्ठा करनेकी उनकी वृत्ति नहीं थी और दूसरों को प्रभावित करने-योग्य संभाषण-कला भी उनके पास नहीं थी । अत: बहुत से व्यक्ति तो मन में कुछ संकोच रखकर ही उनसे बातचीत करते थे । इस वृत्ति के मूल में कुछ विशिष्ट कारण भी निहित हो सकते हैं ।

संगीतज्ञ और संगीत के क्षेत्र में ठोस कार्य करनेवाले कार्यकर्ता के रूप में स्व. पं. अण्णासाहब का स्थान उच्च कोटि का है । संगीत के सभी पहलुओं का समग्रता के साथ अध्ययन करनेवाले संगीतकार के रूप में उनका बड़ा आदर था और वैसा उनका अधिकार भी था । अनेक संगीत-संगोष्ठियों में उन्हें निमंत्रित किया जाता था और उनके कई लेख संगीत के अध्येताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ करते थे । ज्ञान के क्षेत्र में उनकी दृष्टि निष्पक्ष थी । उनके जमाने

में भातखंडे संप्रदाय तथा पलुस्कर संप्रदाय के नामों से दो पक्ष उक्त पंडितद्वय के शिष्य वर्ग तथा चाहनेवालों ने बना लिए थे । कुछ निरर्थक वादों को भी इन पक्षोंने जन्म दिया था । स्व. अण्णासाहब यद्यपि भातखंडेजी के शिष्य थे, तो भी उन्हें पं. पलुस्कर की महानता उतनी ही स्वीकृत थी । इसीलिए उन्होंने 'भातखंडे प्रशस्ति' एवं 'पलुस्कर प्रशस्ति' शीर्षक दो कविताएँ रची हैं । अपनी ओर से वे इन दो मतभेदों में सामंजस्य स्थापित कराने के लिए प्रयत्नशील थे । ठाट-पद्धति एवं रागांग-पद्धति के रूप में जो दृष्टिकोण उनके अनुयायियों ने सैद्धांतिक रूप में स्वीकार कर दो संप्रदायों का निर्माण किया था, उसका विश्लेषण करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते थे । स्व. पं. विनायकबुवा पटवर्धन के विद्यालय में एक समारोह का निमंत्रण स्वीकार कर अतिथि के नाते उन्होंने इन दो मतभेदो के विषय में अत्यंत सुंदर विवेचन किया था । एक बार सहज ही में उन्होंने मुझसे कहा – "संयोग नहीं जुड़ा भई! अन्यथा शायद मैं विष्णु दिगंबर का शिष्य भी हुआ होता!" अतः इन दो संप्रदायों को लेकर यदि किसीकी यह धारणा हो कि वे भातखंडे संप्रदाय के कट्टर समर्थक थे, पलुस्कर संप्रदाय के प्रति उनके मन में वैमनस्य था, तो वह गलत है । किंतु इतना सही है कि पं. भातखंडेजी के शिष्य होने तथा उनके मतों से सहमत होने के कारण वे जो विचार प्रस्तुत करते थे और आग्रहपूर्वक उनका समर्थन करते थे, उसके परिणामस्वरूप उनके बारेमें व्यर्थ ही एक गलत धारणा बन गई थी कि वे भातखंडे संप्रदाय के पक्षधर अध्वर्यु थे और अन्य संप्रदाय के प्रति असहिष्णु थे । किन्तु उनके संपर्क में आनेपर प्रतीत होता था कि यह धारणा गलत थी ।

तात्पर्य, स्व. अण्णासाहब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की समग्र रूप में विवेचना करने पर एक बात का निश्चित रूप में एहसास होता है कि अण्णासाहब का व्यक्तित्व अत्यंत महान् एवं संपन्न था । ज्यों ज्यों काल व्यतीत होता है, उनके कृतित्व की महानता अधिकाधिक जंचने लगती है । संगीत के क्षेत्र में उन्होंने निश्चय ही अपने कृतित्व का सिक्का जमाया है । संगीत का क्रियात्मक दृष्टिकोण से विचार करनेवाला कलाकार-वर्ग उनकी पिछली पीढ़ी में विशेष तौर पर पाया जाता था । स्व. अण्णासाहब के कृतित्व के साथ, संगीत का क्रियात्मक एवं सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करनेवाले संगीतकार का निर्माण करनेके कार्य का शुभारंभ हुआ और आज यह एहसास उत्पन्न हुआ है कि संगीत-शिक्षा के क्षेत्र में क्रियात्मक एवं सैद्धांतिक अंगों का समन्वय होना चाहिए और इस दृष्टि से उनके शिष्य-वृंद को संगीत के क्षेत्र में पर्याप्त प्राधान्य प्राप्त हुआ है । इस कथन में बिलकुल अत्युक्ति नहीं होगी कि इस उपलब्धि में सर्वाधिक श्रेय स्व. अण्णासाहब के कृतित्व एवं व्यक्तित्व को दिया जाना चाहिए । गांधर्व महाविद्यालय संप्रदाय और भातखंडे संप्रदाय के रूप में यद्यपि दो भिन्न मतप्रवाह दिखाई दिए, तो भी उनके कार्य की दिशा एक ही है । संगीत की सर्वांगीण उन्नति करना यही दोनों संप्रदायों का एक मात्र लक्ष्य है । इसीलिए भिन्न प्रतीत होनेवाले इन दोनों संप्रदायों का कार्य परस्पर पूरक ही है । ऐकांतिक भूमिका लेकर, अभिनिवेश के साथ एक दूसरे के बारे में गलत धारणा पैदा करना सरासर अज्ञान है । इस प्रकार की धारणाएं स्व. अण्णासाहब के संपर्क में आने पर, उनके व्यक्तित्व का आकलन होनेपर अनायास दूर हो गई हैं । उनके शिष्य-वृन्द ने उनकी स्मृति में प्रतिष्ठान का निर्माण करके उनके कार्य को आगे बढ़ाने का संकल्प किया है । प्रत्येक संगीत-प्रेमी की यही इच्छा है कि इस कार्य के लिए स्व. अण्णासाहब का चतुरस्र व्यक्तित्व प्रेरणादायी सिद्ध हो ।

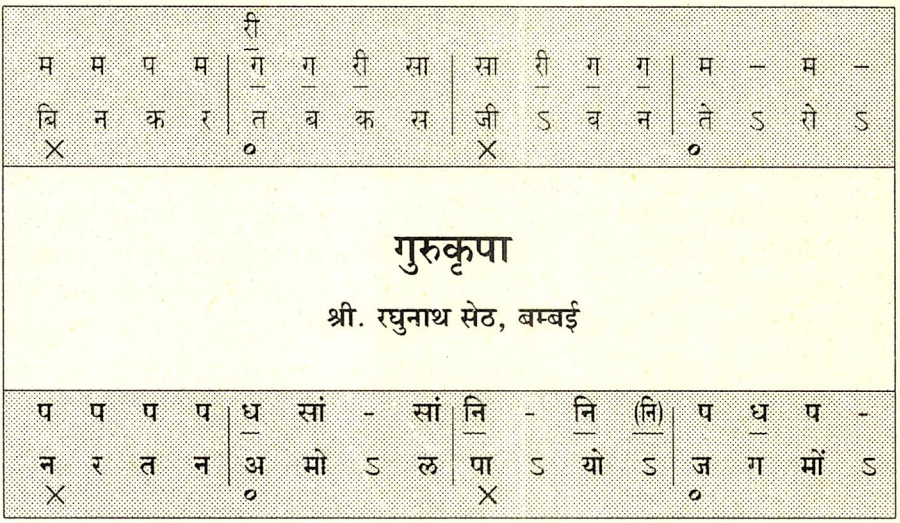

(विख्यात वंशीवादक। लखनऊ आकाशवाणी के भूतपूर्व कलाकार। बम्बई के चित्रपट-जगत् में तथा फिल्म डिविजन में संगीत-निर्देशक। आचार्य रातंजनकर के शिष्य।)

उन दिनों सन् १९५० में (आज से चालीस वर्ष पूर्व) एच.एम.वी. की एक शाखा लखनऊ में शाहनजफ रोड में हुआ करती थी, जहां नियमित रूप से रिकार्ड अर्थात् डिस्क तैयार किए जाया करते थे।

हाईस्कूल की परीक्षा देनेके बाद मेरी संगीत की गतिविधियाँ काफ़ी बढ़ गई थीं और चौबीसों घण्टे संगीत, में संगीतज्ञों के साथ साथ ही व्यतीत होते। प्रारम्भिक दिनों की इस अवस्था में मेरा ज्ञान वंशी-वादन में, हलकी फुल्की धुनों तक ही सीमित था; परन्तु एच.एम.वी. की रिकार्डिंग मैं अक्सर ही देखता रहता जहां प्रत्येक दिन नए कलाकारों के संगीत को ध्वनिमुद्रित किया जाता। यूं मेरे मोहल्ले में (नादान महल रोड) याने चौक के पास काफी संगीतज्ञ रहते थे। परंतु ये अधिकांशत: ठुमरियों के उस्ताद थे जो ललन पिया की ठुमरियों के ज्ञाता थे। इन सबके पास जाने पर भी आत्मा की पूर्ण तुष्टि न होती और वंशी-वादन को कोई दिशा मिले इस कारण मैं सब कहीं ऊंची नीची , अच्छी बुरी सभी जगह कुछ नया ढूंढता रहता।

एक दिन एच. एम. वी. के स्टूडियो में पहुंचा। ३ मिनट का एक शास्त्रीय गायन उसी समय रिकार्ड किया गया था जिसे सुनाया जा रहा था। आवाज बहुत प्रभावशाली लगी और पूर्ण ३ मिनट का कार्यक्रम मुझे बहुत ही अच्छा लगा। पूछने पर लोगों ने बतलाया - इस राग का नाम खम्भावती है। मुझे राग के बारे में तो बतला दिया गया। गायक कलाकार का परिचय पूछने पर मेरी अवहेलना कर दी गई। "जाओ जाओ, सरल संगीत बजाओ। शास्त्रीय संगीत से तुम्हें क्या मतलब?" मैं दुखी हो गया और गायक कलाकार को दूरसे ही देख पाया, जिसमें अचकन अधिक चेहरा कम, छोटा कद। मैं केवल मंच में यही सोचकर रह गया कि क्या जीवन में कभी इनसे बात करने का अवसर भी मिल पाएगा?

तीन वर्ष बम्बई में फिल्मों में वंशी बजाने के पश्चात् जब १९५४ में मैं आकाशवाणी लखनऊ में, वंशी-वादक की हैसियत से नियुक्त हुआ उन दिनों श्री. वी. जी. जोग आकाशवाणी लखनऊ में संगीत-संयोजक थे। और श्री डी.टी. जोशी भी वहाँ थे। कुछ दिनों में आकाशवाणी में ऑडिशन होनेवाले थे जिनके मुखिया अर्थात् सर्वेसर्वा थे डॉ. एस. एन. रातंजनकर। इस प्रकार इस नाम से मेरा परिचय पहली बार हुआ। पूछने पर लोगों ने बतलाया कि ये प्रसारण-मंत्री श्री बी. वी. केसकर के सबसे विश्वासपात्र कलाकार थे। खैर, पर्दे की ओट में अन्य कलाकारों के साथ मेरा भी ऑडिशन हुआ। (मैं बाद में पास हो गया) ऑडिशन में लखनऊ आकाशवाणी के प्रसिद्ध तबला-वादक उस्ताद मुन्ने खां भी थे जिनसे ऑडिशन के दौरान काफी बहस हुई, जिससे उनके आत्मसम्मान को धक्का लगा था। मेरा कौतूहल और बढ़ा। पता लगा, डा. रातंजनकर लखनऊ में ही भातखण्डे संगीत विद्यापीठ के प्रिंसिपल थे। ऑडिशन की समाप्ति के बाद जब अन्य अधिकारियों के साथ वे बाहर निकले तो उस लालबहादुर शास्त्री जैसे कटवाले व्यक्ति को देखते ही मैं पहचान गया, कि अरे ये तो वही व्यक्ति हैं, जिन्होंने तीन-चार वर्ष पूर्व एच.एम.वी. में राग खम्भावती रिकार्ड किया था।

मैं रविवार को भातखण्डे संगीत-विद्यापीठ के शिक्षक-विद्यार्थियों की संस्था 'श्रुतिमण्डल' में जाया करता और इनमें संगीत के कार्यक्रम एवं उनके वार्तालाप से लाभ उठाता रहता। पता लगा कि भातखण्डे जी से सम्बधित एक वार्षिक कार्यक्रम होनेवाला है जो, अखण्ड चौबीस घण्टों तक चलेगा और जिसके अंत में याने समापन कार्यक्रम में डाक्टर साहब का गायन होगा। अब मेरे जीवन का सबसे बड़ा ध्येय हो गया कि "इनका गायन सुनना ही है"। और उस दिन उनका गायन 'भवानी दयानी' सचमुच ही अलौकिक गायन था; मैं स्वरों के सागर में डूबता गया; एक अजीब-सी विह्वलता का आभास करता हुआ, आत्मविस्मृत होता हुआ! नए नए स्वर-समूहों का एक ऐसा क्रम था जिसने शुद्ध भैरवी को ऐसा मूर्तिरूप कर दिया था कि इस अनुभूति को मैं कभी नहीं भूल पाऊंगा।

सारे दिन आकाशवाणी में कार्य करने के पश्चात् मैं संध्या को, नौकरी खत्म करके भातखण्डे विद्यापीठ पहुंच जाता। 'श्रुतिमण्डल' के मेरे एक मित्र थे। जिनका नाम था वेणीमाधव त्रिपाठी। विद्यापीठ में बांसुरी के अध्यापक थे। संगीत की क्लास समाप्त हो जाने के पश्चात् इसी स्थान पर, कमरे में रोज ही रियाज किया करता। त्रिपाठी जी अक्सर मेरे साथ डग्गा लेकर ठेका देने बैठ जाया करते थे। कुछ ही दिनों बाद एक रात, अभ्यास करने के बाद वंशी नीचे रखी, सिर ऊपर उठाया; देखा, प्रिंसिपल साहब चुपचाप खड़े दरवाजे की आड़ से बांसरी सुन रहे थे। मैं अचकचाकर खड़ा होने लगा। त्रिपाठीजी, जिनकी दरवाजे की ओर पीठ थी, उन्हें देख न पाए थे। मुझे खड़ा होने की कोशिश करते देख स्वयं भी पीछे घूमे। इतनेमें ही प्रिंसिपलसाहब बोले, "उठो नहीं। बजाते रहो" फिर भी मैंने नहीं बजाया क्योंकि मैं काफी घबरा गया था। मुझे नहीं बजाते देखकर बोले कि "अच्छा मैं जाता हूँ, तुम अभ्यास जारी रखो। और कभी हमसे मिलना।" सम्भवत: वे जानते भी नहीं थे कि मैं भातखण्डे विद्यापीठ का विद्यार्थी भी नहीं था और मैंने यूं ही अभ्यास के लिए उपयुक्त एक स्थान ढूंढ लिया था। अंधे को क्या चाहिए 'दो आँखें!' उनके शब्द 'कभी हमसे मिलना' ये ही बस मेरे मस्तिष्क में घूमते रहे और उसके बादवाले पहले रविवार को ही सुबह मैं उनके निवास-स्थान पर, जो कार्यालय में ही था, पहुँच गया।

प्रारम्भ में तो मुझे काफी डर लगा, फिर धीरे धीरे डर निकल गया। और शीघ्र ही नियमित रूप से मैं प्रत्येक रविवार को उनसे व्यक्तिगत रूप से सीखने अलग से जाने लगा। वे भी बिना किसी स्वार्थ के अपने अत्यंत व्यस्त कार्यों में से मेरे लिए कुछ न कुछ समय निकाल ही लेते जो अन्ततः मेरे लिए वरदान प्रमाणित हुआ।

सम्भवतः वंशी के विषय में उनकी धारणाएं श्री वेणीमाधव त्रिपाठी ने काफी गलत करके रखी थीं। एक दिन पहुंचने पर पहले ही वाक्य में बोले कि, "त्रिपाठी तो कहते हैं कि कोई भी वंशी (शत प्रतिशत) सौ फी सदी स्वर में नहीं होती, पर तुम कैसे परफेक्ट स्वर में बजाते हो?" उनकी इस बात से मुझे लगा कि मुझे सारे संसार का खजाना मिल गया। तत्पश्चात् मेरा पूर्ण परिचय और श्री पन्नालाल घोषजी का सान्निध्य जानने के पश्चात् वे प्रत्येक रविवार, रागों की प्रस्तुति तथा अवतारणा की बारीकी के विषय में समझाते रहते। साथ ही वे यह भी कहते कि वे वंशी बजाने की तकनीक के विषय में नहीं जानते, परंतु तुरन्त मैं बोल पड़ता कि रागों के साहित्य के विषय में आपके जैसा मार्गदर्शक मुझे और कहां मिलेगा? आप के जैसी सूक्ष्म पकड़ एवं आधिपत्य किसी अन्य में नहीं। तो वे एक से एक बातें बतलाते। इसी कारण मैंने अपनी वादन-शैली में आलाप के बाद नोम-तोम के आलाप का अनुकरण किया।

एक दिन उन्होंने एक पतली-सी पुस्तिका मेरे हाथ में पकड़ाई, जिसे बृहस्पतिजी ने लिखा था। उसमें वंशी पर स्वर-स्थापना का विवरण था जो सम्भवतः शारंगदेवजी द्वारा लिखित उद्धरण था, अंगुष्ठ प्रमाण के हिसाब से। उन्होंने कहा, "तुम वंशी बनाते हो। इसमें दिए गए हिसाब से वंशी बना कर हमें बतलाओ। मैंने बृहस्पतिजी की लिखी विस्तृत टिप्पणी को बार बार समझकर जैसा कि उनका वर्णन था, उस हिसाब से कई बार वंशी बनाने का प्रयत्न किया। परन्तु हर बार ही मैं असफल रहा। अपनी उंगलियों के हिसाब नापने के पश्चात् जिस स्थान पर छिद्र करता उनमें से एक बेसुरी ही बांसुरी बनती। और स्वर-स्थान बेतुके प्रतीत होते।

जब मैं पूर्णतया हार गया तो प्रिंसिपल साहब के ही पास फिर पहुंचा और उन्हें वे बासुंरियां दिखलाईं और उन्हें अपनी असफलता के बारे में बतलाया। तो वे तुरन्त ही मुस्कराकर बोले, "'अंगुष्ठ प्रमाण' का अर्थ तुम्हारी उंगलियां नहीं होता। उसका एक निश्चित प्रमाण होता है।" इतना भेद जानने के पश्चात् मैं फिर कार्य में लग गया। और मोहल्ले के एक विद्वान द्वारा अंगुष्ठ प्रमाण का सही अर्थ और स्केल जानकर फिर वंशी बनाई। फिर मुझे कुछ सफलता मिली और अब जो वंशी बनी उसकी स्वर-स्थापना आज के 'काफी ठाठ' के काफी समीप थी।

अंततः कहना यह है कि आज के युग में जहाँ दिखावा एवं स्वार्थ ने कला के क्षेत्र में अपना आधिपत्य जमा रखा है, संगीत के प्रति इतना समर्पित प्रकाण्ड पाण्डित्यपूर्ण परन्तु अत्यंत सरल व्यक्तित्ववाले कलावन्त की कल्पना मात्र एक कल्पना ही रहेगी। परन्तु उनकी स्मृति एक अमूल्य निधि है, स्रोत है, जो सदैव ही अक्षुण्ण है!

म	म	प	म	रीग	ग	री	सा	सा	री	ग	ग	म	–	म	–
बि	न	क	र	त	ब	क	स	जी	ऽ	ब	न	ते	ऽ	रे	ऽ
×				०				×				०			

'इं. क. संगीत विश्वविद्यालय' के प्रथम उपकुलपति

श्री मनोहरकुमार गंगाजलीवाले, खैरागढ़

प	प	प	प	ध	सां	-	सां	नि	-	नि	(नि)	प	ध	प	-
न	र	त	न	अ	मो	ऽ	ल	पा	ऽ	यो	ऽ	ज	ग	मों	ऽ
×				०				×				०			

(ग्वालियर के माधव म्युजिक कॉलेज के ग्रेज्युएट। इं.क.सं. विश्वविद्यालय के साथ आरंभ से संलग्न। संप्रति वहाँ रजिस्ट्रार।)

डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर जी से मेरा संबंध ३१ दिसंबर १९५७ में 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के प्रथम उपकुलपति के रूप में हुआ। इसी दिन उन्होंने मुझे इस विश्वविद्यालय के प्रथम कार्यालय/अधीक्षक के रूप में नियुक्त किया था। मेरा सेवा-काल इसी दिन से प्रारंभ हुआ। उनका यह विचार था कि संगीत विश्वविद्यालय में अधिकारियों या अन्य लोगों, जो संगीत या ललित कलाओं से संबंधित हों, को ही नियुक्त किया जाए ताकि वे भली प्रकार से संगीत की सेवा कर सकें।

विश्वविद्यालय का गठन

अपने पद पर नियुक्त होने के पश्चात् उन्होंने मुझसे विस्तृत रूप से संगीत विश्वविद्यालय की परिकल्पना से संबंधित चर्चा की तथा यह मार्गदर्शन दिया कि किस प्रकार से इस विश्वविद्यालय का विकास किया जाए। इस संबंध में सर्वप्रथम विश्वविद्यालय के सभी निकायों का गठन किया जाना आवश्यक था। इसके पूर्व जिस राजप्रासाद में विश्वविद्यालय का वर्तमान भवन स्थित है उसमें विश्वविद्यालय के अनुरूप परिवर्तन इत्यादि किए जाने की जटिल समस्या सामने थी। संगीत विश्वविद्यालय कि परिकल्पना के अनुसार राजप्रासाद का रीमॉड़लिंग किए जाने का कार्य हाथ में लिया गया। डॉ. एस.एन. रातंजनकर जी के विचार के अनुसार राजप्रासाद का उपयोग इस प्रकार से किया जाना था जिसमें संगीत एवं ललित कलाओं की कक्षाएं सुचारु रूप से संपन्न हो सकें। इस लक्ष्य की प्राप्ति की दृष्टि से उनके मार्गदर्शन के अनुसार हम लोगों ने यह कार्य संपन्न किया।

डॉ. रातंजनकर जी द्वारा दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होंने भारतवर्ष के महान संगीतकारों

तथा विधिवेत्ताओं से संपर्क स्थापित कर विश्वविद्यालय के लिये नियम, परिनियम, विनियम इत्यादि बनाए। इस कार्य में जिनसे सहयोग लिया गया उन महानुभावों में मुख्य रूप से श्री जी.जे. अंबर्डेकर (नागपुर), श्री. मोतीलाल गुजर (बंबई), श्री. पद्मनाभन् शास्त्री (इंदौर) तथा तत्कालीन शिक्षा सचिव श्री एल.ओ. जोशी के नाम प्रमुख हैं। इन सभी विद्वानों की सहायता से विश्वविद्यालय की कार्यप्रणाली को सुचारु रूप से संचालित किए जाने हेतु नियम बनाए गए।

शैक्षणिक कार्य का प्रारम्भ

अप्रैल १९५८ से 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' में शिक्षण विभाग प्रारंभ हुआ, जब प्रथम बार विश्वविद्यालय में प्रोफेसर डी.टी. जोशी, सेवानिवृत्त डिप्टी चीफ प्रोड्युसर आकाशवाणी दिल्ली की नियुक्ति हुई। उन्हींके अधीनस्थ शिक्षण विभाग का कार्य प्रारंभ हुआ।

डॉ. रातंजनकरजी के द्वारा इसी समय विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं के छोटे समूह को लेकर गीत-नाटिका 'गोवर्धन उद्धार' का मंचन किया गया। सन १९५८ में ही कालिदास समारोह (उज्जैन) में विश्वविद्यालय द्वारा महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'कुमार संभवम्' संस्कृत नाटक की संगीतमय प्रस्तुति की गई। इसमें विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएं तथा अन्य लोगों ने सहयोग दिया था। तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी। डॉ. रातंजनकरजी के खैरागढ़ निवास के दौरान इस क्षेत्र में कई संगीत कार्यक्रम हुए जिसमें विश्वविद्यालय का प्रचार-प्रसार जोरों से प्रारंभ हुआ। इसके अंतर्गत तानसेन संगीत समारोह (ग्वालियर) में 'तानसेन प्रशस्ति' का प्रस्तुतीकरण तथा आकाशवाणी भोपाल के उद्घाटन के अवसर पर विश्वविद्यालय द्वारा ध्रुवपद आदि का गायन विशेष उल्लेखनीय है।

दीक्षान्त समारोह

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय का प्रथम दीक्षान्त समारोह सन १९५९ में संपन्न हुआ, जिसमें तत्कालीन सूचना एवं प्रसारण मंत्री डॉ. बी.व्ही. केसकर द्वारा दीक्षान्त भाषण दिया गया था। इस दीक्षान्त समारोह में उस समय के प्रसिद्ध संगीतज्ञ सर्वश्री श्री उस्ताद विलायत हुसैन खां तथा उनके पुत्र युनुस हुसेन खां, डागर बंधु, प्रो. व्ही.जी. जोग, प्रो.के.जी. गिण्डे, प्रो.ए.कानन तथा श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी, श्रीमती रसूलनबाई, श्रीमती सुमति मुटाटकर, श्रीमती मालविका कानन, श्रीमती मीरा बैनर्जी, श्रीमती लक्ष्मी शंकर इत्यादि द्वारा अपने अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए तथा दो दिन तक संपूर्ण कार्यक्रमों का सीधा प्रसारण आकाशवाणी द्वारा किया गया।

संगीत महाविद्यालयों का सम्बद्धीकरण

डॉ. रातंजनकर जी के अथक परिश्रम से ही मध्य प्रदेश में स्थित संगीत-संस्थाओं का तथा देश में स्थित अन्य संगीत-संस्थाओं का संबद्धीकरण विश्वविद्यालय द्वारा हुआ। आज ऐसे महाविद्यालयों की संख्या लगभग ३० है।

प्रकाशन

'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' द्वारा डॉ. रातंजनकर जी के मार्गदर्शन में 'भरत भाष्य' के प्रथम भाग का प्रकाशन संभव हुआ। इसी प्रकार 'कुमार सम्भवम्' संस्कृत गीत नाटिका का भी प्रकाशन हुआ।

पूजनीय अण्णासाहब (रातंजनकर) कार्यालयीन कार्य के अतिरिक्त एम.म्यूज. की कक्षाएं स्वयं लेते थे जिनमें लेखक को भी शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य मिला है। एम.म्यूज. के पाठ्यक्रम के कई रागों में बंदिशें उपलब्ध न होने के कारण अण्णासाहब ने स्वयं रचनाएं बनाकर छात्रों को सिखाईं।

विश्वविद्यालय के उप-कुलपति के नाते उनपर अन्यान्य जिम्मेदारियाँ थीं। उन सभीके बावजूद उन्होंने संगीत-शिक्षा का कार्य चालू रखा तथा समय समय पर हम छात्रों का मार्गदर्शन किया। ऐसे महान संगीतोद्धारक, चिंतक तथा सुयोग्य उपकुलपति के अधीनस्थ कार्य करने का मुझे अवसर मिला जिससे मैं अपने को कृत-कृत्य मानता हूँ। उनकी इच्छा थी कि विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार भी संगीतज्ञ हो। उनकी यह इच्छा ईश्वर की कृपा से तब पूर्ण हुई जब मैंने सन १९८५ में इस विश्वविद्यालय में रजिस्ट्रार का कार्यभार संभाला।

डॉ. रातंजनकर जी को पैसे का बिल्कुल मोह नहीं था। उन्हें जो वेतन प्राप्त होता था उसमें से वे रु. ५००/- प्रति माह विश्वविद्यालय को दानस्वरूप देते रहे। वे जब कभी विश्वविद्यालय के कार्य से बाहर जाते थे, उस कार्य हेतु उन्होंने कभी विश्वविद्यालय से यात्रा - भत्ता या दैनिक भत्ता नहीं लिया। उनकी यह मान्यता थी कि विश्वविद्यालय कुछ देने के लिए होते हैं, लेने के लिए नहीं। हम लोगों से भी वे यही अपेक्षा करते थे। उनके द्वारा प्रदत्त राशि से ही बाद में 'भातखंडे स्मृति ग्रंथ' का प्रकाशन हुआ।

डॉ. रातंजनकर ५ अगस्त १९६० को इस विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए। उसके पश्चात् आज तक विश्वविद्यालय में उनके स्तर का संगीतज्ञ उप-कुलपति विश्वविद्यालय में नियुक्त नहीं हुआ।

उनके द्वारा लगाया गया यह पौधा एक विशाल वृक्ष बनकर फल-फूल रहा है। इस विश्वविद्यालय में संगीत तथा ललित कलाओं की सभी विधाओं में शैक्षणिक कार्य संपन्न हो रहा है। यह सब उन्हीं के आशीर्वाद का फल है।

उनकी पुण्य स्मृति में मैं अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि समर्पित करता हूं।

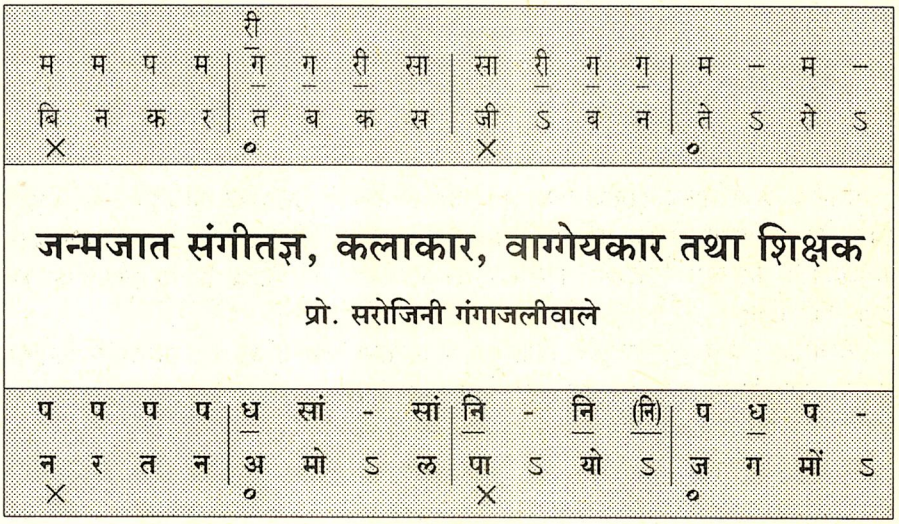

प्रवाचक, इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़

डॉ. एस.एन. रातंजनकर संगीत की परीक्षाएं लेने प्रतिवर्ष ग्वालियर आया करते थे। ये परीक्षाएं दिसंबर-जनवरी माह में हुआ करती थीं। ग्वालियर में संगीत का वातावरण था इस कारण डॉ. रातंजनकरजी के संगीत के कार्यक्रम रात में हुआ करते थे। माधव म्यूजिक कॉलेज के प्रिन्सिपल तथा ग्वालियर घराने के श्रेष्ठ गायक पं. राजाभैय्या पूंछवाले और डॉ. रातंजनकरजी की बहुत अच्छी मित्रता थी। इस कारण आप प्रतिवर्ष परीक्षाएं लेने ग्वालियर आते थे। ये परीक्षाएं लगभग महीनाभर चलती थीं। दिन में परीक्षा और रात में संगीत का कार्यक्रम होता था। डॉ. रातंजनकरजी इन महफिलों में प्रमुख कलाकार गायक के रूप में रहते थे। नए-नए राग, नई-नई बंदिशें गाकर आपने उन्हें लोकप्रिय बनाया। ये बंदिशें आपने रागों में बंदिशों की कमी को दूर करने के लिये ही बनाई हैं। ग्वालियर में ठेठ राग अर्थात् 'क्रमिक पुस्तक मालिका' (भाग १ से ४) तक में सम्मिलित राग गाने की प्रथा थी। डॉ. रातंजनकरजी ने नए, अप्रचलित राग गाकर, उनकी बन्दिशें बनाकर उन्हें लोगों तक पहुंचाया। संगीत-जगत् को उनकी यह बहुत बड़ी देन है।

जो व्यक्ति डॉ. रातंजनकर जी के सान्निध्य में आया है वह भली प्रकार उनके इस रूप से परिचित है। डॉ. रातंजनकर जी अपने प्रिय शिष्य तथा संगीत-समुदाय में अण्णासाहब के नाम से जाने जाते थे। आप सदैव अपने में निमग्न रहा करते। मनन, चिंतन, लेखन करते रहते थे। नई बंदिश बनानेके पश्चात् उसे अपने प्रिय शिष्य श्री. के.जी. गिण्डे के पास भेज देते थे ताकि वह सुरक्षित रहे। आपके मनन और चिंतन का ही फल है कि आपकी 'अभिनव गीत मंजरी' तीन भागों में हमें प्राप्त हो सकी।

वैविध्यपूर्ण रचनाएं

'अभिनव गीत मंजरी' में दिए गए गीत डॉ. रातंजनकर जी को श्रेष्ठ वाग्गेयकार स्थापित करनेके लिए काफी हैं। आपने प्रशस्ति-गीत, सरस्वती-वंदना, राष्ट्रगीत, भजन, टप-ख्याल, विलंबित ख्याल, मध्यलय के ख्याल, तराने, सादरे, ध्रुवपद आदि अनेक प्रकार की बंदिशें बनाई हैं। इन बंदिशों के विषयों में विविधता है तथा उनमें भिन्न भिन्न तालों का प्रयोग किया गया है। आपने ताल-गीत, लक्षण-गीत की तरह बनाए हैं। संगीत ऑपेरा - 'गोवर्धन उद्धार' तथा संगीत नाटक संस्कृत में 'कुमार सम्भवम्' (कालिदास रचित) का सफल मंचन किया है। आपकी बनाई हुई बंदिशें सभी कलाकारोंद्वारा गाई जा रही हैं। आप अच्छे शिक्षक थे। उदारतापूर्वक शिक्षा देने के कारण आपका शिष्य वर्ग बहुत बड़ा है।

मैं जब माधव म्यूजिक कॉलेज, ग्वालियर में संगीत की विद्यार्थिनी थी तब डॉ. एस.एन. रातंजनकर को प्रथम बार परीक्षक के रूप में देखा था। यही मेरा उनसे प्रथम परिचय हुआ। लगातार चार वर्ष १९४८ से १९५१ तक आपने मेरी परीक्षा ली। मुझे गौरव अनुभव होता है कि आपने मुझे हर परीक्षा में अच्छे नंबर दिए और मैं सदैव प्रथम श्रेणी, प्रथम स्थान पाती रही। इसके लिए मुझे छात्रवृत्ति भी मिली। १८ अक्तूबर १९५८ को मेरी नियुक्ति 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय', खैरागढ़ में व्याख्याता के रूप में हुई। मेरी इस नियुक्ति में आपका विशेष योगदान रहा।

खैरागढ़ आनेपर मैंने डॉ. रातंजनकरजी को पास से देखा। उनके प्रति मेरा आदर द्विगुणित हो गया। उनका व्यक्तित्व चौमुखी था। उसके अनेक पहलू थे। जो व्यक्ति उनके सान्निध्य में आया, उनसे प्रभावित हुआ। 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के प्रथम उप-कुलपति के रूप में आपने इस विश्वविद्यालय को स्थायी रूप प्रदान किया, सभी नियम, परिनियम बनाए। इतनी व्यस्तता के बाद भी आप रात में कोविद की एम. म्यूज. की कक्षाएं लेते थे। वे अक्सर कक्षाओं में चुपचाप आकर देखते थे। यदि संगीत से संबंधित कुछ शंका है तो हम लोग बिना रोक-टोक के उनके पास जाया करते थे।

आपका व्यक्तित्व आपके कृतित्व का द्योतक था। छोटा कद, बड़ा सिर, भव्य ललाट, सांवला रंग, चूडीदार पाजामा, शेरवानी तथा सतत मनन, चिंतन में निमग्न तेजस्वी आँखें, चश्मा कुल मिलाकर प्रभावकारी व्यक्तित्व था। आपके दर्शन से मन में आदर निर्माण होता था। आपकी मूर्ति छोटी थी लेकिन कीर्ति बड़ी थी।

सबके आदर का केंद्र

विश्वविद्यालय में संगीत के कार्यक्रम में आप शुरू से अंत तक बैठते थे। विद्यार्थी भी गा रहा हो तो ध्यान से सुनते थे। एक रजिस्टर में प्रोग्राम संबंधी अपने विचार लिखते थे, जिसे पढ़कर हमें अपने में सुधार करने का अवसर मिलता था।

संगीत-संसार में आपका ऊंचा स्थान था। ऐसे महामानव केवल संगीत के उद्धार के लिये इस धरती पर अवतरित होते हैं। पं. भातखंडे जी के कार्य को, संगीत-प्रचार के व्रत को आपने पूरा किया।

हम विश्वविद्यालय के शिक्षक, छात्र सभी उनको अपना बुजुर्ग मानते थे। पूरे विश्वविद्यालय में एक परिवार जैसा वातावरण था। आपसी प्रेमभाव के कारण एक सौहार्द बना रहता था।

आपके पास बाहर से भी अनेक संगीतज्ञ, जिज्ञासु आया करते थे। कुछ समय उनके पास रहकर चले जाते थे।

खैरागढ़ तथा खैरागढ़ के आसपास हम लोगों के कार्यक्रम हुआ करते थे। भिलाई स्टील प्लान्ट के उद्घाटन के अवसर पर हम लोगों ने अपना कार्यक्रम भिलाई में दिया था। उस समय के महामहिम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद, मध्यप्रदेश के गव्हर्नर श्री. व्ही. व्ही. पाटस्कर, सभी बड़ी बड़ी हस्तियाँ इस उद्घाटन के अवसर पर उपस्थित थीं। विश्वविद्यालय का प्रसार ही इन कार्यक्रमों का उद्देश्य रहता था। आपके समय संपन्न हुए दीक्षान्त समारोहों में भी देश के ख्यातनाम कलाकारों ने भाग लिया था। महान संगीतकार, वाग्गेयकार, गुरु डा. रातंजनकरजी को मेरा शत शत नमन...।

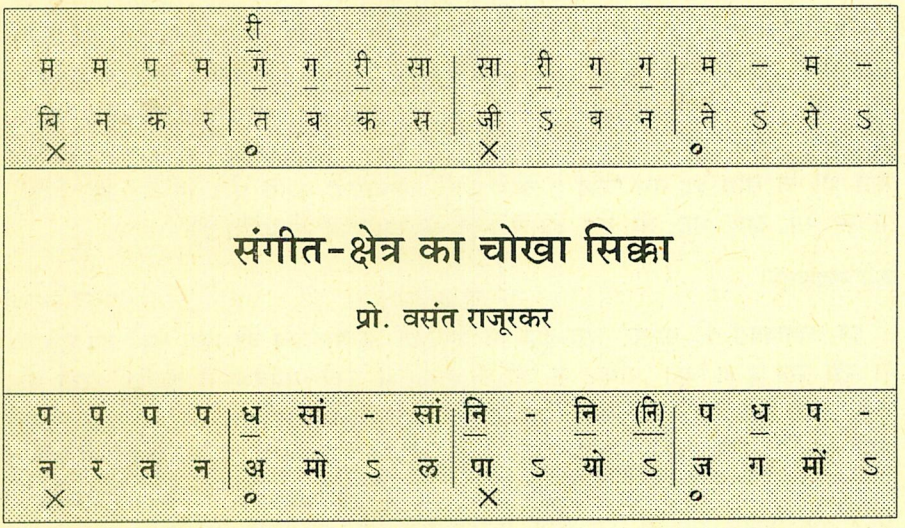

संगीत-क्षेत्र का चोखा सिक्का

प्रो. वसंत राजूरकर

(पं. राजाभैय्या तथा डॉ. रातंजनकरजी से घनिष्ठ संबंध। अण्णासाहब के शिष्य पं. प्रभाकर चिंचोरे से तालीम । हैदराबाद म्यूजिक कॉलेज में व्याख्याता, उपरांत संप्रति विजयवाड़ा शासकीय संगीत महाविद्यालय के प्राचार्य पद से अवकाश ।)

वैसे देखा जाए तो हमारा घराना संगीत का घराना तो नहीं है, फिर भी, चूंकि हमारे दादा कीर्तनकार थे, संगीत से थोड़ा-बहुत संबंध जुड़ ही गया; इसके सिवा, ग्वालियर घराने के गायक स्व. राजाभैया पूंछवाले हमारे पड़ोस में रहते थे, जिससे स्वभावत: संगीत से हमारा नाता स्थापित हो गया। साथ ही स्व. पं. विष्णु नारायण भातखंडेजी के अथक परिश्रम के फलस्वरूप ग्वालियर में सन् १९१८ में 'माधव संगीत महाविद्यालय' की स्थापना हुई। इस महाविद्यालय का समस्त कारोबार ही स्व. राजाभैया के हाथ में होनेसे, पास-पड़ोस के अनेक बच्चों को विद्यालय में दाखिल किया गया। साथ ही हमारे दादा कीर्तनकार थे, जिन्हें परंपरानुसार कीर्तन में संगीत का उपयोग हो सके इस उद्देश्य से विद्यालय में दाखिल किया गया। संयोग की बात यह कि मेरे पिताजी स्व. उमेश नारायण राजूरकर, अन्य ८ छात्रों की ही तरह सर्वप्रथम बैच में 'संगीत विशारद' उत्तीर्ण हुए। आगे चलकर मेरे चाचा स्व. गोविंदराव राजूरकर ने भी इसी विद्यालय से उपाधि प्राप्त करके संगीत को अपनी आजीविका के व्यवसाय के रूप में चुना और बाद में सन् १९४२ में मुझे भी गायन की पाठशाला में दाखिल कराया गया; वजह यह थी कि शाम को आवारागर्दी करनेकी अपेक्षा छोकरा कहीं तो फंसा रहेगा। इस प्रकार मैं संगीत का एक छात्र बन गया।

मेरी संगीत-सेवा का श्रेय मेरे मामा श्री. अनंत माधव कोठारी को देना पड़ेगा, क्योंकि मैं उन्हींके यहाँ रहा करता था। उनके यहाँ लोगों का आना-जाना, आतिथ्य पाना आदि आम बात थी, खासकर कलाकारों का आतिथ्य करने में मामा अतीव आनंद का अनुभव करते थे। मामा के यहाँ किसी कलाकार का आगमन होते ही मैं उनकी सेवा के लिए उपस्थित हुआ

ही करता था। उनके यहाँ बराबर आनेवाले कलाकारोंमें स्व.पं. एस्. एन्. रातंजनकर, डॉ. कुमार गंधर्व और पं. व्ही. जी. जोग विशेष उल्लेखनीय हैं। पं. रातंजनकर का निवास तो महीनाभर रहा करता था, जो मेरे लिए मानो एक पर्व ही था। उस समय मेरी आयु १०-१२ वर्ष की थी। आगे चलकर तो पं. रातंजनकर (जिन्हें हम सब 'अण्णासाहब' के नाम से संबोधित करते थे) के साथ हर वक्त कोई न कोई शिष्य भी आया करता था। श्री के. जी. गिंडे , श्री एस्. सी. आर्. भट, जी. एन्. दंताळे आदि के नाम इनमें उल्लेखनीय हैं।

कर्तव्यदक्षता

इन कलाकारों की मुझपर कृपा-दृष्टि थी और श्री अण्णासाहब की सेवा करने का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हुआ था। अधिक से अधिक समय मैं उनके सान्निध्य में व्यतीत करता था। अण्णासाहब तृतीय वर्ष एवं 'संगीत विशारद' की परीक्षाओं के परीक्षक की हैसियत से प्रतिवर्ष आया करते थे। इस बहाने वे कम-से-कम एक महीना हमारे यहाँ ही ठहरते थे। इसी सिलसिले में सन् १९४४ में मैं भी तृतीय वर्ष की परीक्षा का परीक्षार्थी था, किन्तु इसी वर्ष मामाने मुझे अपने यहां आनेसे इसलिए मना किया कि मैं परीक्षार्थी था। किन्तु जब दो दिनतक मैं वहाँ नहीं दिखाई दिया तो स्वयं अण्णासाहब ने ही मेरे बारेमें पूछताछ करके मुझे बुला लिया। मुझे अचरज तो इस बात का था कि आखिर प्रात्यक्षिक परीक्षा के अवसर पर तो मैं अण्णासाहब के सामने आनेवाला ही था। किन्तु यह सही है कि अण्णासाहब को ये बातें पसंद नहीं आती थीं, जिसकी प्रतीति मुझे सन् १९५६ में हुई। उस वक्त मैं जयपुर में रहता था। अप्रैल महीने में ऑडिशन्स होनेवाले थे। श्री व्ही.आर्. आठवले (प्रोड्यूसर आकाशवाणी, जयपुर) के आग्रह पर मैं भी ऑडिशन के लिए एक उम्मीदवार था। किन्तु जब आठवलेसाहब को पता चला कि अण्णासाहब ही ऑडिशन के लिए आ रहे हैं तो उन्होंने मुझे संदेसा भेजा कि मैं अण्णासाहब से नहीं मिल सकूंगा। किन्तु जब स्वयं अण्णासाहब का पत्र ही श्री आठवलेजी को मिला कि उनका छात्र वसंतराव वहां है, उन्हें मेरे आनेका संदेसा दीजिए, तब वे विवश हुए और हम दोनों अण्णासाहब को लिवा लाने के लिए स्टेशन गए। उल्लेखनीय बात यह थी कि मैं रोज शामको घंटे दो घंटे के लिए अण्णासाहब के पास जाता, उनसे गपशप होती और कुछ बंदिशें सीख भी लेता। किन्तु मैंने कभी अण्णासाहब को यह मालूम नहीं होने दिया कि मैं ऑडिशन के लिए एक उम्मीदवार हूं। किन्तु जिस दिन मेरा ऑडिशन था, उस दिन रोज की तरह शामको मैं अण्णासाहब के पास गया तो देरतक वे मुझसे कुछ भी बोले नहीं और फिर झुंझलाकर उन्होंने कहा -"मुझे मालूम नहीं था कि तुम ऑडिशन दे रहे हो, वरना मैं तुम्हें मिलनेसे मना ही करता।" इतना कहकर वे फिर चुप रहे। कुछ देर बाद मैंने ही उनसे कहा कि मैंने भी कभी यह बात आपसे नहीं कही। तब उन्होंने कहा – "वह सब ठीक है, मगर लोग इसका गलत अर्थ लेते हैं।" इसके बाद यों ही घंटाभर वहां बैठकर मैं वहांसे चल दिया और फिर जयपुर में अण्णासाहब से नहीं मिला। अर्थात् कहने की आवश्यकता नहीं, कि अण्णासाहब का रोष उसी समयतक के लिए था।

परीक्षा लेने की अण्णासाहब की पद्धति का स्मरण होते ही आज भी मेरा रोम रोम कांप उठता है। अण्णासाहब परीक्षा के सिलसिले में ग्वालियर आनेवाले हैं यह सूचना पाते ही सब के मन में एक प्रकार की घबराहट पैदा होनेके साथ ही उन्हें खुशी भी होती थी। खूब जांच-परख

कर परीक्षा होती थी, न केवल छात्रों की, बल्कि उसके साथ ही शिक्षकों की भी। और इसीलिए उनकी परीक्षा-पद्धति देखने और परीक्षा के प्रश्नोत्तर सुनने के लिए स्वयं शिक्षक भी उपस्थित रहा करते थे। विविध प्रकार से परीक्षा ली जाती थी। दो छात्र एक साथ परीक्षा के लिए बैठते थे। हर छात्र से रागविस्तार करने के लिए कहा जाता था, वह भी सीधे-सादे रागोंका नहीं। एक को हमीर का विस्तार तो दूसरे को केदार का। देस-तिलक कामोद, बसंत-परज अथवा पूरियाधनाश्री जैसे समकक्ष रागों का विस्तार करना छात्रावस्था में कितना मुश्किल होता था, कहना कठिन है। यथा "गम रेसा (गंधार कोमल) इन स्वरों में बहार, मिया मलार, दरबारी, अड़ाणा राग कैसे पेश करेंगे?" "केवल गंधार इस तरह गाकर दिखलाओ कि तोड़ी और मुलतानी साफ साफ दीखने चाहिए।" इ.। इस प्रकार अनेक बातें ध्यानमें आईं। तत्पश्चात् उस जमानें में शिक्षक-वर्ग उसी प्रकार से शिक्षा दिया करते थे। ठीक सरगम, लक्षण गीत, ख्याल (विलंबित, द्रुत), ध्रुपद, धमार, तराना हर एक राग में सिखाने की पद्धति प्रचलित हो गई थी। (तराना सिर्फ कुछ ही रागों में और ध्रुपद, धमार प्रत्येक राग में।) और अण्णासाहब यह सब परीक्षा में पूछ लिया करते थे। किसी भी गाई जानेवाली बंदिश में वे गलती को अचूक पकड़ लेते थे। पाठ्य पुस्तक की बंदिशें उन्हें बिलकुल कणस्वरों के साथ मुखोद्गत थीं। परीक्षा में उनके द्वारा गाकर दिखाए गए स्वरों के आधार पर राग को पहचानना छात्रों के लिए तो कठिन परीक्षा थी ही, किन्तु शिक्षकों के लिए भी वह विचार-प्रवण करनेवाली बात थी। अण्णासाहब परीक्षा के दौरान अप्रत्यक्षत: कई बातें सिखाते जाते और अभ्यास के लिए बाध्य करते। इसीलिए उस जमाने में कहा जाता था कि अण्णासाहब की कसौटी पर खरा उतरनेवाला 'विशारद' का छात्र एक घंटे की महफिल को सहज ही में सफल संपन्न कर सकता है।

निरंतर कार्यरत

मैंने सदैव अनुभव किया है कि हमारे अण्णासाहब निष्क्रिय बैठना जानते ही न थे। संगीत के उनके छात्र या उनके किसी चाहनेवाले के दृष्टिसम्मुख आते ही वे उसे तुरंत आदेश दे देते – "कागज पेन्सिल ले लो और लिखो।" वे एक साथ ही स्वयं कहते जाते, गाते जाते और तुरंत नोटेशन भी बताते जाते और आधे घंटे के भीतर ही एक बंदिश तैयार हो जाती। इस वक्त अगर श्री. गिंडे साहब यहाँ उपस्थित हों तो ठीक है, अन्यथा उन्हें उसकी एक प्रति भिजवानेका आदेश दिया जाता। इसी तरह किसी समय तैयार की गई बंदिश, यदि उस वक्त कोई छात्र अनुपस्थित रहा हो, तो जहां भी और जब कभी उससे उनकी भेंट होती वहां सिखाते थे।

सन १९५६ में जब मैं उनसे रोज़ मिलता था, तब उन्होंने स्मरणपूर्वक मुझे चंद्रकौंस राग की 'चमके चंदा विकसे कुमुदिनी' बंदिश मुझें सिखाई थी। ऐसे ही एक बार अण्णासाहब सन १९५३ में जब ग्वालियर आए थे, हमारे गुरुजी के यहाँ ठहरे थे। सवेरे घूमने जाने का उनका अभ्यास था। दो दिन मैं भी उनके साथ घूमने गया था। एक दिन घूमकर वापस आते ही उन्होंने मुझसे कागज-पेन लेनेको कहा और एक बंदिश तैयार की। बंदिश का चक्र शायद उनके मस्तिष्क में घूमने के दौरान ही चल रहा होगा। 'जस रहे नाम रहे' कुकुभ की यह बहुत ही खूबसूरत बंदिश थी। एक बार 'तानसेन उर्स' के सिलसिले में जब हम ग्वालियर आए थे तब हमें इतनी खुशी हुई कि मानो बंदिशों की खान ही हाथ लगी हो। अर्थात् उस वक्त श्री गिंडेसाहब, श्री भटसाहब, श्री चिंचोरेसाहब, श्री बाळासाहब आदि हम सब वहाँ उपस्थित

रहा करते थे और लगता था कि मानो कक्षा ही चल रही हो। राग खट 'पार नहीं गुण को', ध्रुपद 'ये हो कैसी होरी रची', धमार, राग गौरी 'दूर करो मुश्किलात', राग यमन, 'करीम करतार' जैसी अनेक बंदिशें हमें सीखने को मिलीं।

ऐसी ही, १९५५ की बात है। अण्णासाहब का नेशनल प्रोग्राम था, श्री बाळासाहब उनकी साथ-संगत करनेवाले थे; उनके साथ मैं भी गया था। हम श्रीमती मुटाटकर के यहीं ठहरे हुए थे; श्री चिदानंद नगरकर भी बंबई से आ पहुँचे थे। रोज सुबह संगीत की कक्षा और नेशनल प्रोग्राम की तालीम साथ साथ चलती थी। संगत के लिए स्व. चतुरलाल आया करते थे। राग नट बिहाग और रागेश्री चालू रहते थे और इसी समय हमें इन रागों की नई बंदिशें भी प्राप्त हुईं; किन्तु बिलकुल नई और विशेष पद्धति की जो बंदिश हमारे स्मरण में है वह है बहार की - 'करत केलि कुंजन में कन्हैया।' उस दिन उस बंदिश को पाकर हमें यह प्रतीत हुआ कि हम सबने कोई अनमोल वस्तु पाई हो।

ऐसा कोई भी राग नहीं है कि जिसमें अण्णासाहब ने बंदिश न बनाई हो। बड़े बड़े कलाकारोंने भी उनसे बंदिशें बँधवाई हैं। ये बंदिशें बिलकुल परंपरागत जैसी प्रतीत होती हैं, क्योंकि मेरी उपस्थिति में ही यमन की बंदिश 'करीम करतार' उन्होंने सुनाई और ग्वालियर के ही एक कलाकार से पूछा - ''क्यों, है कि नहीं 'ग्वालियर?''' उनकी कई बंदिशें स्व. भातखंडेजी ने अपने क्रमिक ग्रंथों में समाविष्ट की हैं। 'बँधा समां' बंदिश तो एक ही तरह की शब्दावली के साथ खट और मारवा ठाट के विभास राग में बँधी हुई है। स्व. गजाननराव जोशी की प्यारी बंदिश - खमाजकी 'सखी सांवरो' - गाये बिना राजाभैय्या महफिल को समाप्त करने ही नहीं देते थे। 'आवो, गावो, गावो रिझावो' यह पंचम की बंदिश पं. कुमार गंधर्व ने कुंदगोळ में इस प्रकार जमाई कि क्या बात है? कौंसी कानड़ा 'काहे करत मोसे', नारायणी 'बमनारे विचार', 'सहलेरिया' आदि अनेक बंदिशों की देन संगीत-जगत् को उनसे प्राप्त हुई है।

महफिल के शेर

जब मैं जोधपुर में था, संगीत-क्षेत्र के मेरे एक मित्र ने, जिसका अण्णासाहब से परिचय नहीं था, ऐसे ही गपशप में प्रकट किए गए उद्‌गार आज भी मेरे स्मरण में हैं - ''अरे यार, वो तो महफिल के शेर हैं।'' कहते हैं कि ग्वालियर में अण्णासाहब की जितनी बैठकें हुईं उतनी अन्यत्र कहीं नहीं हुईं। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि एक तो अण्णासाहब का डेरा ग्वालियर में ही अधिक मात्रा में हुआ करता था, लोग उनका गाना सुनने के लिए उत्सुक रहा करते थे और अण्णासाहब संगीत के इतने दीवाने थे कि वे या तो तालीम देते, बंदिशें बनाते या गायन-प्रस्तुति करते थे। दूसरी ओर ग्वालियर के लोगों की अण्णासाहब के प्रति अपार भक्ति थी। ४-५ महफिलें तो निश्चित ही संपन्न हुई थीं। एक स्व. मुले साहब के यहां, एक राजाभैय्या के यहां, एक श्री. ओदक साहब के यहां और एक हमारे यहाँ। हमारे यहां महफिल संपन्न होने का मुख्य कारण यह था कि हमारे यहाँ दिसंबर में तीन दिन तक मच्छिन्द्रनाथ का उत्सव मनाया जाता था। इनमें से तीसरे दिन गायन का कार्यक्रम हुआ करता है जिसमें हर साल राजा भैय्या गाया करते थे। आज भी बाळासाहब ने वही परंपरा चालू रखी है। अण्णासाहब परीक्षा के सिलसिले में दिसंबर में ही आया करते थे और इसी कारण हमारे यहां भी उनकी महफिल हुआ करती थी। मैंने उनकी अनेक महफिलें सुनी हैं। उनकी महफिलों के माध्यम

से बंदिशों का विन्यास, राग का विविध रूपों में विस्तार सीखने को मिलता था। कोई भी राग, चाहे वह पांच स्वरों का हो या सात स्वरों का संपूर्ण हो, अण्णासाहब उसकी रचना इतनी सहजता एवं कुशलता से करते थे कि श्रोता अचंभे में पड़कर कहते कि "अरे इस राग में इस तरह से भी रचना हो सकती है! - " विद्वत्तापूर्ण गायन और सो भी कितना सहज! मैंने उनका मालश्री राग भी सुना है। सभी विस्तार षड्ज, गंधार एवं पंचम और ईषत् मध्यम निषाद का प्रयोग होते हुए भी 'मखदूमसाहब' यह बंदिश अत्यंत सहजता से पल्लवित करते थे। इस संदर्भ में एक विख्यात हार्मोनियम वादक के ये उद्‌गार लक्षणीय हैं - "कोई भी राग शास्त्रीय ढंग से सुनना या सीखना हो तो रातंजनकरजी के शिष्यों से ही सीखा जाए।"

अण्णासाहब एक प्रकार से संगीत के क्षेत्र का चोखा सिक्का था। हमने अण्णासाहब को एक शिक्षक, परीक्षक, कलाकार, लेखक, वाग्गेयकार आदि विविध रूपों में देखा है। जिन जिनको उनके ये सब रूप देखने को मिले वे तो सचमुच भाग्यवान हैं और इसलिए मैं स्वयं को भी अतीव बड़भागी समझता हूँ कि उनके सान्निध्य में रहने का, उनकी सेवा करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ। उनके अंतिम दिनों में भी, जब मैं उनकी सेहत का समाचार पूछने उनके यहाँ गया था, उन्होंने अत्यंत आत्मीयता से पूछा - "क्या 'गीत मंजरी' का अध्ययन जारी है न?" उसी क्षण मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। उसके पश्चात् अण्णासाहब से कभी भेंट नहीं हो सकी, किंतु आज भी उनकी वे स्मृतियाँ मन में जागृत हैं। 'अभिनव गीत मंजरी' का अध्ययन भी जारी है, सीखी हुई बंदिशों का पारायण भी चालू है, इतना ही नहीं तो छात्रों को भी बंदिशें सिखाना चालू है। उन दिनों का स्मरण होते ही सोचने लगता हूँ, क्या वे दिन पुनः लौट आएंगे? क्या ऐसा व्यासंगी व्यक्ति फिरसे पैदा होगा? अंत में इन प्रश्नों का एक ही उत्तर मिलता है-

"हुए हैं बहुत, होंगे भी बहुत, मगर आप-सा कोई नहीं!"

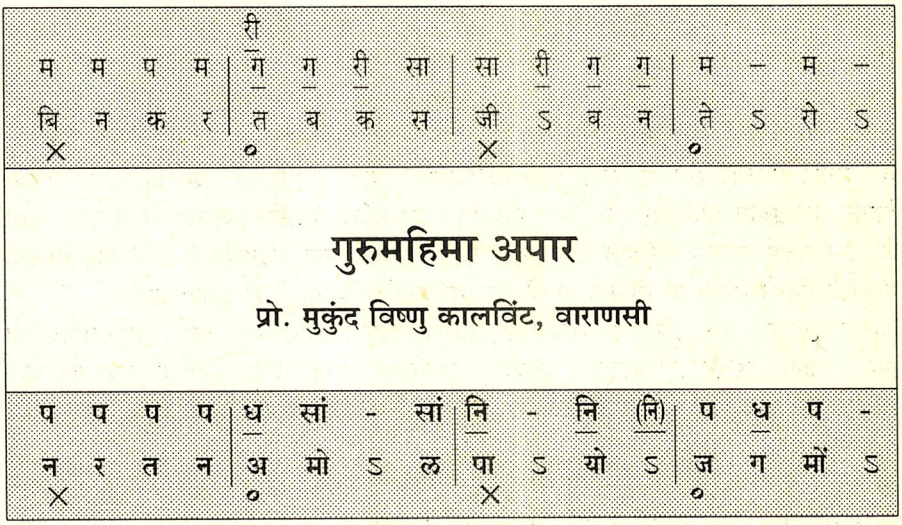

(अण्णासाहब के स्नातकोत्तर छात्र । वहींपर भातखंडे कॉलेज में गायन के अध्यापक रहे। तत्पश्चात् वाराणसी के बेजंट कॉलेज के प्रोफेसर के रूप में अवकाशग्रहण।)

किसी भी महान व्यक्ति से यदि ममत्व का, अपनत्व का सम्बन्ध जुड़ जाता है तो एक अद्‌भुत आनंद होता रहता है जीवन में। अण्णाजी के विषय में भी ऐसा ही और प्रथम दर्शन में ही घटित हुआ। प्रथमा से लेकर पंचम वर्ष (संगीत रत्न) कक्षा तक परीक्षक के रूप में वे ग्वालियर आते रहे और जब भी परीक्षा भरी तो प्रेम से मुझसे कहते- "तुम विष्णुबुवा के पुत्र हो न? हम उनको खूब जानते हैं!!" इस कथन से मेरा हृदय भर जाता था और यह विधान बीज के रूप में प्रगट हुआ और उनके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता ही गया।

जब जब पूज्य अण्णाजी परीक्षा कार्य के लिए ग्वालियर पधारते थे तब तब उनका वास्तव्य वहाँ लगभग महीनाभर रहता था। हम ग्वालियर के संगीत-विद्यार्थियों के लिये उनका यह वास्तव्य एक पर्व के रूप में फलीभूत होता था, क्योंकि गुरुवर्य राजाभैयाजी इस वास्तव्य का पूर्णरूप से लाभ उठाते हुए प्रत्येक बार एक यज्ञ के रूप में प्रतिदिन कहीं न कहीं पूज्य अण्णाजी के गायन की बैठक का आयोजन करते ही थे, जिससे हम विद्यार्थियों को पर्याप्त लाभ हो सके और हम सब विद्यार्थीगण इस आयोजन का लाभ उठाने से कभी भी वंचित नहीं रहते थे। फलत: इन कार्यक्रमों को सुनकर हम सब विद्यार्थियों के सांगीतिक दृष्टिकोण में काफी प्रगति होती गई।

इतना ही नहीं, पूज्य अण्णाजी के इन कार्यक्रमों को नियमित रूप से सुनकर हमारे जैसे कई एक विद्यार्थियों की इस गायकी को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ती गई तथा चन्द विद्यार्थियों में इस गायकी को आत्मसात् करने की उत्सुकता एवम् जिज्ञासा भी बढ़ती गई, जिनमें से मैं भी एक था। हमारे घर की अनुकूल परिस्थिति न होते हुए भी पिताजी के पास हठ करते हुए इन कठिनाइयों के बावजूद सन १९३६ के अगस्त महीने में पूज्य अण्णाजी के पास उच्च

शिक्षण लेने के लिये लखनऊ जाने में सफल हो ही गया। ग्वालियर में परीक्षक के रूप में वे जब भी पधारते तो शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा, टोपी पहने तथा गले में मफलर लटकाए पोशाक से सुसज्जित यह वामन मूर्ति आज भी मेरे मानस पटल पर से हट नहीं सकती।

—१—

मेरे लखनऊ के वास्तव में विशेषत: दो बार गुरुवर्य राजाभैयाजी के साथ तथा कई बार पूज्य अण्णाजी के साथ साधक-बाधक प्रश्नोत्तरी हुई, जिसका संक्षेप में विवरण इस प्रकार है :

जब हमारे पास पर्याप्त धन न हो, पिताजी से केवल रुपये २० प्राप्त किए हों और भाग्य ने साथ देकर एक आध ट्यूशन दिलाकर लखनऊ में स्थिर कर दिया हो, ऐसे समय दिसम्बर मास में परीक्षक के रूप में जब गुरुवर्य राजाभैय्या लखनऊ पधारते हैं और कहते हैं - "अरे बेटा! दो ट्यूशन कम करना किन्तु अपनी संगीत-साधना में निरंतर रत रहना।"

मैं मन ही मन घबराता हूँ और उस कथन को दोहराता हूँ। आज भी वह कथन दोहराता रहता हूँ, क्योंकि वह कथन उस समय जितना कटु सत्य था उतना ही पूर्णरूप से मार्गदर्शक भी था।

अब मेरी व्यक्तिगत तालीम गुरुवर्य अण्णाजी के चरणों में रहकर शुरू होती है और वे मुझसे कहते हैं:

"देखो! तुम 'संगीत रत्न' प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए हो जिसके लिये मैं तुम्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। फिर भी, मैं 'षड्ज' साधन से ही तुम्हारे शिक्षण का प्रारम्भ करूंगा, ध्यान देकर सीखना।"

इस कथन को सुनकर मेरी आंखें खुल गईं और लगातार ३-४ वर्षोंतक इस प्रकार क्रमेण शिक्षण पाकर जो प्रगति एवं सांगीतिक विचारों की वृद्धि मुझमें हुई, और जिसकी मुझे तिलमात्र कल्पना भी नहीं थी वह प्रत्यक्ष आचार में परिणत हुई। मेरे पिताजी ने तब मुझसे कहा कि "देख बेटा, सही सही मार्गदर्शन के साथ शिक्षण पाने का क्या प्रताप होता है।"

इसी कालावधि में एक बार गुरुजी ने मुझसे कहा, "तुम्हें सीखने के साथ साथ इस विद्यालय में शिक्षक के रूप में भी काम करना होगा।" यह सुनकर मैं सुन्न हुआ और मैंने गुरुजी से कहा, "मुझे संगीत में कुछ भी नहीं आता और ऐसी परिस्थिति में मैं क्या सिखा सकूंगा!!" इसपर गुरुजी ने तुरन्त कहा कि, "उसकी तुम चिंता बिलकुल नहीं करना; जो भी तुमने सीखा है उसपर मनन करते हुए ध्यान देकर सिखाते रहना; बाकी बातें मुझपर छोड़ देना"। उनका यह प्रोत्साहन मेरे लिये एक वरदान सिद्ध हुआ। तालीम के साथ साथ 'टीचर्स ट्रेनिंग' का भी प्रशिक्षण प्राप्त करने का महान् लाभ गुरुजीद्वारा ही मुझे मिला। गुरुजी यथासमय मेरी कक्षा में आते और मेरी त्रुटियाँ दूर करते हुए मुझे योग्य मार्गदर्शन करते रहते, जिसके फलस्वरूप मैं कुछ ही समय में एक योग्य शिक्षक सिद्ध हो सका। अपने शिष्यों को आगे लाने में वे कितने तत्पर रहते थे, यह इस प्रसंग से भली भाँति सिद्ध हो जाता है। इन छ: वर्षों में 'विशारद' की कक्षा तक पढ़ाने योग्य मेरी प्रगति भी हुई।

—२—

इस प्रगति-पथ पर चलते हुए भी थोड़ा-सा अहंभाव भी मुझमें आ जाना स्वाभाविक था। उसका क्षालन होना था, जिसके कारण एक दिन मैं गुरुजी से प्रश्न कर बैठा, "गुरुजी, विद्यालय-द्वारा आयोजित संगीत-कार्यक्रमों में मेरा नाम क्यों नहीं कभी रखा जाता?" इसपर गुरुजी तुरन्त बोले, "क्या तुम अपने आपको महफिल में रंग जमा सकने के योग्य समझते हो?" इसपर मैंने अपना धीरज इकट्ठा करते हुए उनसे कहा, "यह तो आप स्वयम् भी कह नहीं सकते!" मेरा यह कथन सुनते ही गुरुजी शान्त हो कर चुप हो गए। स्पष्ट वक्तव्य सुन लेने की तथा उनके विशाल हृदय की कल्पना मुझे उस समय पूर्ण रूप से हुई। कुछ ही दिनों बाद विद्यालय में एक संगीत कार्यक्रम किया गया था। उसी संदर्भ में उनकी ओर से मुझे लिखित सूचना मिली, जिसमें लिखा था कि उस कार्यक्रम में मेरा नाम भी रखा गया है। इस प्रकार मैंने अपना गायन उक्त कार्यक्रम में प्रस्तुत किया भी। गायन सुनकर मुझे तुरन्त कहा, "वाह, तुमने खूब अच्छा गाया और रंग भी जमाया।" इसपर मैंने कहा, "यह सब आप ही की तो कृपा है, मेरे पास आपके इस प्रसाद के अतिरिक्त और कुछ भी तो नहीं है।" इतना सुनकर गुरुजी शान्त होकर मुस्कुराए। यही आशीर्वाद मेरे जीवन का एक अमूल्य क्षण मैं समझता हूँ। कुछ समय के पश्चात् एक अन्य कार्यक्रम का विद्यालय में आयोजन किया गया था। उस कार्यक्रम के अवसर पर गुरुवर्य राजाभैयाजी भी उपस्थित थे। इस कार्यक्रम के बाद मेरे गुरुबन्धु की तारीफ हुई, मेरी नहीं। मैं खिन्न हो गया। गुरुवर्य अण्णाजी के कमरे में कई लोग बैठे हुए थे। उस समय गुरुवर्य राजाभैयाजी ने कान पर हाथ रखते हुए मुझसे कहा, "अरे बेटा, थोड़ा ही गाओ मगर सुर में गाते रहो"। उनके इस उद्गार को सुनते ही मैं स्तब्ध हो गया और मुझमें का अहंभाव अपने आप गुरुजनों द्वारा मिटाया गया। मेरे भविष्य के लिए, यह घटना भी एक वरदान के रूप में सिद्ध हुई। उसी समय गुरुवर्य अण्णाजीने राजा भैयाजी की ओर मुड़कर कहा, "भैया, आप इसे ग्वालियर वापिस बुलवा लीजिए।" उनके इस कथन में मुझे गुरुजी की नाराजगी स्पष्ट रूपसे दिखाई दी। राजाभैयाजी गुरुजी से तुरन्त कह बैठे, "नहीं नहीं, गोबर गिरा ही है तो मिट्टी लेकर ही उठेगा।" इस घटना का आज भी मैं जब स्मरण करता हूँ तो मुझे अपने आप बहुत कुछ मार्गदर्शन मिलता रहता है।

—३—

मेरे लखनऊ के वास्तव्य की कालावधि में एक और स्मरणीय घटना हुई, जो कि इस प्रकार है :-

मेरी शादी निश्चित हुई थी और मुझे छुट्टी की आवश्यकता थी। एक शिक्षक के नाते मैंने गुरुजी से प्रधानाचार्य के रूप में एक दिन कहा, "मेरी शादी निश्चित हुई है, मुझे दस दिन की छुट्टी चाहिए।" प्रधानाचार्य के रूप में गुरुजी तुरंत बोले, "छुट्टी नहीं मिल सकती।" इतना कह कर चुप हो गए और अधिक कुछ भी नहीं कहा। उसपर मैंने उनसे कह ही दिया कि "मैं तो जाऊँगा ही" और गया भी। गुरुजी चुप ही रहे और कुछ भी नहीं बोले। मैं शादी कर जब वापस आया और उनसे मिला तब मैंने डरते हुए और कुछ घबराकर पूछा, "मेरी छुट्टी का आखिर क्या हुआ?।" गुरुजी जोर से हंस पड़े और कहने लगे, "जाओ,

तुम्हारी छुट्टी मंजूर हो गई है, मौज करो'' कहकर मुझे प्रसन्नतापर्वक बधाई दी। विद्यार्थियों के प्रति ऐसा स्नेह और आत्मीयता गुरुजी द्वारा पूज्य अण्णाजी जैसे गुरुजनों से ही मिल सकती है, और ऐसे गुरु मिलना भी भाग्य की बात है।

शादी के पश्चात् मैं स्वतंत्र रूप से अपनी धर्मपत्नी के साथ रहने लगा, जिसके कारण नियमित रूप से गुरुजी से शिक्षा नहीं ले पा रहा था। गुरुजी का जहां भी गायन होता और आकाशवाणी पर से जो भी कार्यक्रम होते, उन्हें अत्यंत ध्यानपूर्वक सुनता और उसी प्रकार अभ्यास करता रहता। उन रागों का हूबहू स्वरूप जब तक आत्मसात् नहीं होता, तब तक अन्य रागों का विचार तक नहीं करता, ऐसा एक क्रम ही मैंने बना लिया। इसके अतिरिक्त, जब भी मेरी क्लास नहीं रहती तब उनके द्वारा सिखाई जानेवाली क्लास की शिक्षा मैं उनकी कक्षा के बाहर खड़े होकर सुनता रहता और इसे भी आत्मसात् करता रहता। यही मेरा कार्यक्रम बन गया। उनके गाए हुए रागों की मैं जब भी याद करता हूँ तो उनकी गायकी की बारीकियाँ ताजा होकर सामने आती हैं और मेरी संगीत-साधना में प्रेरणादायक सिद्ध होती हैं।

पूज्य अण्णाजी ने एक दिन मेरे एक गुरुबन्धु से कहा,- ''बुवा (गुरुजी मुझे सदैव इसी नाम से सम्बोधित करते थे) तो अब खाने-कमाने में लग गए, अब तो सब ठीक ही ठीक है!!'' यह बात जब मेरे कानों पर आई तब मैंने तुरंत गुरुजी के पास जाकर उनके चरण छूकर उनसे स्पष्ट रूप से कह दिया कि, ''यद्यपि मैं गृहस्थी जीवन में व्यस्त हूं तो भी प्रथम अपनी संगीत-साधना पर अत्यावश्यक ध्यान देता हूँ और उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आने देता; इसको सम्हालते हुए फिर जीवन की अन्य आवश्यक बातों पर ध्यान देता हूँ।'' यह सुनकर गुरुजी बोले, ''ठीक।'' यह सुनकर मैं संतुष्ट तथा निश्चिंत हुआ।

—४—

पूज्य अण्णाजी अपने शिष्यों को सदैव कहा करते थे ''अपनी तालीम के अतिरिक्त अच्छे अच्छे विद्वान् एवम् गुणी कलाकारों का गायन-वादन भी सुनते रहना चाहिए।'' हमारे सौभाग्य से गुरुजी के निजी व्यक्तित्त्व के कारण विद्यालय में समय समय पर ऐसे विद्वान कलाकार अवश्य आते रहते और अपने कार्यक्रम देते रहते थे, जिससे हमारे जैसे कई विद्यार्थियोंको लाभ हुआ है। इसी संदर्भ में, एक बार उस्ताद बुंदू खां सारंगीनवाज का विद्यालय में कार्यक्रम हुआ। उस कार्यक्रम को मैंने बहुत ही तन्मयता से सुना और उनकी तान की प्रक्रिया से मैं अति प्रभावित हुआ। उसे अभ्यास द्वारा मैंने अपने कण्ठपर चढ़ाकर अपनी गायकी में उसका समावेश करने में कुछ हद तक सफलता प्राप्त की। मेरे एक कार्यक्रम में, जिसे सुनने गुरुवर्य अण्णाजी भी उपस्थित थे, मैंने उस तान-प्रक्रिया का भी प्रदर्शन करने का प्रयत्न किया था। दूसरे दिन गुरुजी ने मुझे बुलाकर कहा, ''कल तुम्हारे गायन में बुंदू खाँ साहब की सारंगी की तानें बोल रही थीं। यह सुनकर मैं स्तब्ध और घबराया-सा रहा। इसपर गुरुजी का मंतव्य किस प्रकार का सुनने मिलता है, जानने की उत्सुकता बढ़ गई। मुझे डरा हुआ-सा देखकर वे तुरंत बोले, ''घबराओ नहीं, तुमने अच्छा प्रयत्न किया है। अपने गायन में विविधता लाना अत्यावश्यक है; परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि जो बातें अपने अंगस्वभाव तथा गले के अनुकूल हों, उन्हींको अपनाना चाहिए। इसीसे अपनी कला समृद्ध होती रहती है।'' यह सुनकर मेरा आत्मविश्वास और भी बढ़ा। गुरुजी की विशालता की कल्पना इस प्रसंग से स्पष्ट होगी। समय समय पर

इस प्रकार की सूचनाएँ मिलते रहनेके कारण हम सब विद्यार्थियों के लिये पूज्य अण्णाजी एक प्रेरणा-स्रोत थे; जिससे पर्याप्त रूप में हम सब विद्यार्थी लाभान्वित हुए।

-५-

एक बार गुरुवर्य राजाभैयाजी के गायन का कार्यक्रम बनारस की 'थिओसोफिकल सोसायटी' की ओर से निश्चित हुआ था। उस कार्यक्रम में गायन में उनकी संगत करने के लिये वे पूज्य अण्णाजी की सहमति लेकर मुझे अपने साथ बनारस ले गए। उस समय उनके सुपुत्र बाळासाहेब पूंछवाले बनारस में ही बसंत महिला कॉलेज में संगीत-शिक्षक के पद पर नियुक्त थे। अत: गुरुजी को गायन में संगत करने हेतु मैं और बाळासाहेब तानपूरे लिए उनके पीछे बैठे थे। गायन तो प्रभावी हुआ ही, किन्तु श्रोताओं ने हम दो शिष्यों की भी प्रशंसा की। उसपर गुरुवर्य राजाभैयाने लोगों से कहा कि यह तो मेरे माधव संगीत विद्यालय के ही हैं। गुरुवर्य मेरी प्रगति देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने खूब आशीर्वाद भी दिए।

इसी दरमियान, किसी कारणवश श्री. बाळासाहब अपने संगीत-शिक्षक के पद से निवृत्त होकर ग्वालियर वापिस चले गए जिससे वहाँ एक योग्य शिक्षक की आवश्यकता थी। यह जानकारी मुझे प्राप्त हुई। अतएव मैंने बनारस के हमारे एक सुहृद, श्री महादेवराव सामंतजी, को एक पत्र लिखकर मेरी नियुक्ति उस पद पर करवाने के लिये प्रयत्न करने की बिनती की; क्योंकि लखनऊ विद्यालय में मिलता हुआ वेतन मेरे पारिवारिक जीवन-निर्वाह के लिये बहुत ही कम था। मेरी विनंती पर श्री सामंतजी ने उस कॉलेज के प्रधानाचार्य को मेरी जानकारी दी। जिसके परिणाम के रूप में उक्त प्रधानाचार्य ने पूज्य अण्णाजी के नाम लखनऊ एक पत्र लिखकर उस पद के लिये मेरी माँग की, जिसकी जानकारी मुझे बिलकुल न थी।

एक दिन गुरुवर्य अण्णाजी के दफ्तर में रजिस्टर में अपनी हाजिरी हेतु हस्ताक्षर करने गया, तो गुरुजी ने मुझे देखकर बैठने को कहा और मुझसे पूछा, "क्या तुमने कहीं पर आवेदन पत्र दिया है?" मैंने तुरंत उत्तर दिया, "जी नहीं"। किंचित् क्रोध में आकर बोले, "तुम झूठ बोल रहे हो।" उसपर मैंने उनसे कहा, "क्या मैं आपसे कभी झूठ बोल सकता हूँ?" इसपर थोड़े शान्त होकर बोले, "क्या तुम कहीं अन्यत्र जाना चाहते हो?" मैंने उत्तर दिया, "जी हाँ"। तुरंत उन्होंने पूछा, "क्यों?" मैंने तुरंत कहा, "आप तो मेरी परिस्थिति भली भाँति जानते ही हैं।" इतना सुनते ही गुरुजीने कहा, "तुम उक्त प्रधानाचार्य को पत्र लिखकर मालूम करो कि वहाँ तुम्हें किस प्रकार का कार्य करना होगा और उसके लिये कितना वेतन मिलेगा।" इतना कहकर गुरुजी एक महीने के दौरे पर चले गए। वापिस आते ही मुझे बुलवाकर पूछा, "तुम बनारस जाना ही चाहते हो? क्या तुम्हारा गाना उन्होंने सुना है?" उसपर मैंने इतना ही कहा कि कुछ समय पूर्व गुरुवर्य राजाभैयाजी के साथ मैं गया था, तब उनकी गायन-संगत करते हुए मुझे उन्होंने सुना है। गुरुजी बोले, "ठीक है, फिर भी यदि मैं तुम्हें न भेजूँ तो?" इतना सुनते ही मैंने तुरंत कहा, "आप केवल एक बार अपने मुख से कहें कि बुवा, तुम्हारी मुझे आवश्यकता है, तुम नहीं जाओगे।" इतना सुनते ही कुछ क्षण गुरुजी स्तब्ध रहे, दो आंसू की बूंदें उनके नेत्रों से अनायास निकल पड़ीं और कहने लगे, "यह तो टेढ़ी खीर है" इतना कहकर उन्होंने उक्त प्रधानाचार्य के नाम अपनी ओर से अनुमति की सूचना तार द्वारा दी। ऐसा था अपने शिष्यों के प्रति उनका प्रेम!

मेरा लखनऊ के वास्तव्य का अंतिम गाने का कार्यक्रम विद्यालय में ही विद्यार्थियों की ओर से ३१ अगस्त १९४८ के दिन निश्चित किया गया था। वह कार्यक्रम गुरुजी सुनकर वापिस अपने कमरे में आ गए थे। मैं भी उनके पीछे पीछे जाकर उनके सामने उपस्थित हुआ। मुझे देखकर एकाएक उनके मुख से आशीर्वचन निकल पड़े, "वाह बुवा, आज तो मियांमलार के स्वर जर्रे जर्रे में बोल रहे थे।" मैंने कहा, "यह सब आपके चरणों की कृपा है और यही मेरा बल है।" इतना कहते हुए मैंने उनसे बिदा ली और १-९-१९४८ को बनारस के लिये रवाना हुआ।

—६—

वाराणसी में सन १९४८ से १९५९ की कालावधि में भी एक ऐसा ही प्रसंग हुआ जिसमें प्रत्यक्ष रूप में गुरुजी के अंतिम आशीर्वाद पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ जो आजतक मेरे जीवन के लिये प्रेरणादायक रहा है।

दिल्ली के आकाशवाणी केन्द्र ने मुझे कार्यक्रम देने के लिये आमंत्रण भेजा था और मुझे वहां से कार्यक्रम प्रसारित करने दिल्ली जाना था। उसी समय मेरे मन में आया कि दिल्ली पहुंचने से पूर्व लखनऊ जाकर गुरुजी के चरणस्पर्श कर उनसे आशीर्वाद लूं। परंतु किसी कारणवश यह सम्भव न हो पाया। फिर भी, मैंने गुरुजी को एक पत्र भेजकर उनसे इस कार्यक्रम की सफलता के लिये उनके आशीर्वाद की याचना की और मनोमन उनके चरणस्पर्श किए तथा मानसिक संतुष्टता के साथ दिल्ली के लिये रवाना हुआ। दिल्ली पहुंचते ही सीधे मेरी गुरुभगिनी, डॉ. सुमति मुटाटकरजी के निवास-स्थान पर पहुँचा और उनके नाम आवाज़ दी। उत्तर में जानी-पहिचानी आवाज आई, "अरे, आओ बुवा।" देखता हूँ तो गुरुजी वहां बैठे हैं। उन्हें वहां देखकर मेरी जो मनस्थिति हुई, उसका शाब्दिक वर्णन करना कठिन है। तुरन्त उनके चरणस्पर्श करते हुए मैंने कहा, "मैंने आपके नाम लखनऊ एक पत्र भेज कर इस कार्यक्रम के विषय में आपको सूचना देते हुए आपके आशीर्वाद की याचना की थी, किन्तु मेरा अहोभाग्य कि आपके प्रत्यक्ष दर्शन करने का सौभाग्य मुझे मिला।" यह सुनते हुए वे मुस्कुराए। हम दोनों एक ही कमरे में ठहरे थे। दूसरे दिन सुबह कार्यक्रम देने आकाशवाणी केन्द्र पर जाने के लिए मैं बहुत जल्द उठकर तैयार होकर बैठा था। गुरुजी भी कुछ समय बाद जग गए थे। मुझे तैयार होकर बैठे देखा, इतने में मेरे लिए आकाशवाणी से वाहन आ गया था। मैंने गुरुजी का चरणस्पर्श किया और तत्काल ही उनके मुख से "जाओ, फतह करो" ऐसे आशीर्वचन निकले। मैंने अपने सुबह के कार्यक्रम में राग शुक्ल बिलावल की दो बंदिशें गाईं और स्टुडिओ से बाहर आया तब देखा कि उस्ताद मुश्ताक हुसैन खाँ साहब वहाँ खड़े हैं और उनकी नजर मेरी ओर है। मैंने तुरन्त जाकर उनके चरणस्पर्श किए। उन्होंने मुझे पकड़कर अपने गले से लगाया और मेरे बारे में पूछा। जब मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तो बहुत खुश हुए। उन्होंने 'ड्यूटी रूम' में बैठकर मेरा गाना सुना था। उनको लग रहा था कि स्टुड़िओ में मेरे गुरुजी गा रहे हैं। और थोड़ी देर में आकाशवाणी की किसी मीटिंग के लिये आ पहुँचे और बोले, "वाह पंडितजी, इस बेटे ने आज मेरी तबियत खुश कर दी; आपकी हूबहू छवि दिख रही थी।" गुरुजी ने मुस्कुराते हुए कहा, "यह उसकी श्रद्धा एवं मेहनत का फल है।" ये आशीर्वचन मेरे लिए आजीवनकाल एक अविस्मरणीय प्रसाद के रूप में मेरे साथ सदैव रहेंगे। ▶

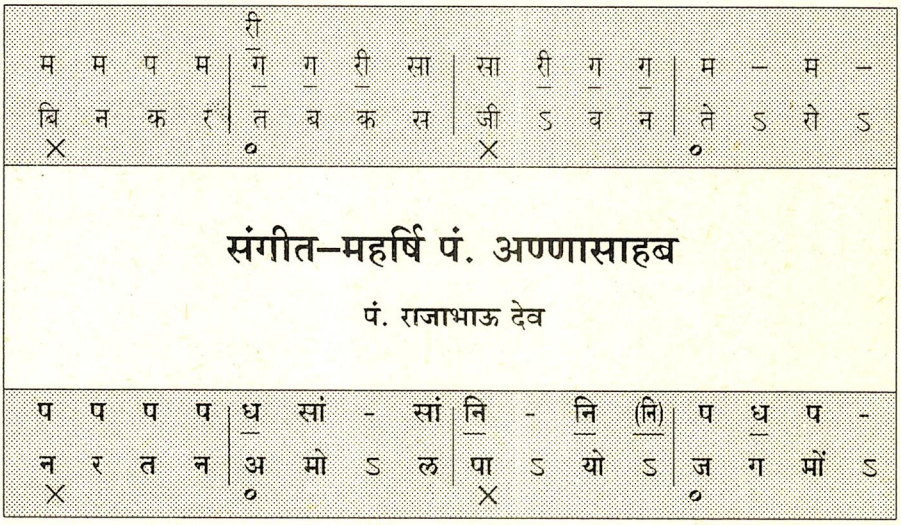

(बुजुर्ग गायक और मान्यताप्राप्त गुरु । पं. राजाभैय्याजी, पं. जगन्नथबुवा पंढरपुरकर, उस्ताद रजबअलीखां, प्रो. बी.आर. देवधर आदि से तालीम पाई। कानपुर आकाशवाणी में अधिकारी तथा निर्माता। वनस्थली विद्यापीठ में प्राध्यापक। संप्रति पुणे में अनेक महिलाओं तथा युवा शिष्यों का मार्गदर्शन कर रहे हैं।)

सन १९३४ में मैं गाने की तालीम पाने के लिये ग्वालियर पहुँचा। इसके पूर्व पूना के 'भारत गायन समाज' में कुछ समय के लिए स्व.पं. बापूराव केतकरजी से कंठ-संगीत की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् मैं पंढरपुरनिवासी गुरुवर्य स्वर्गीय जगन्नाथबुवा पंढरपुरकरजी से भी विशेष प्रशिक्षण ग्रहण कर चुका था। इसी पूंजी के आधार पर मैं साहस जुटाकर ग्वालियर पहुँचा था और अधिक से अधिक तालीम पाने की मेरी अदम्य इच्छा और उद्देश्य मैंने जाते ही स्व. कृष्णराव पंडितजी तथा गुरुवर्य स्व. राजाभैय्या पूँछवालेजी से अभिव्यक्त किया था। पंडितजी की संगीत कक्षा में बिना शुल्क के प्रवेश होना असंभव था और मेरी आर्थिक परिस्थिति मामूली होने के कारण ग्वालियर संस्थान की ओर से संचालित सरकारी संगीत विद्यालय में निःशुल्क प्रवेश लेने की सलाह मुझे स्वयं राजाभैयाजी ने दी थी। अतः वहाँ मुझे आसानी से प्रवेश मिल गया। विद्यालय में प्रतिवर्ष लखनऊ के मैरिस म्युझिक कॉलेज के प्राचार्य पं. स्व. रातंजनकरजी का आगमन परीक्षक के नाते होता था, सो मेरे ग्वालियर पहुंचने के पश्चात् उस वर्ष भी पं. रातंजनकरजी का आगमन विद्यालय में हुआ। परीक्षा लेने जब वे आते तो उनके गायन के अनेक कार्यक्रम जगह जगह होते।

अण्णासाहब की गायकी

उस वर्ष भी पंडितजी का गायन ग्वालियर के रसिक श्री. उदकसाहब के घर पर निश्चित हुआ था। उन दिनों स्व. बापूराव पेंढारकर की 'ललित कलादर्श' नामक नाटक कंपनी ग्वालियर

में आई हुई थी। अत: पंडितजी के कार्यक्रम में नाटक के कलाकार भी उपस्थित थे। किसी कारणवश उस दिन पंडित जी, जिन्हें प्यार और आदर से हम अण्णासाहब भी कहते थे, की महफिल अपेक्षाकृत जम नहीं पाई। अत: जल्द ही उन्होंने अपना कार्यक्रम समेट लिया। श्रोतागण भी निराश हो गए। अत: महफिल का रंग जमाने के लिये रसिकों ने स्व. बापूराव पेंढारकरजी तथा पं. भार्गवराम आचरेकरजी से युगल-गान प्रस्तुत करने की प्रार्थना की, जिनकी हारमोनियम पर संगत करने का संजोग मुझे उस दिन प्राप्त हुआ। दूसरे दिन प्रात: मेरे कमरे में ग्वालियर दरबार के विद्वान गायक स्व. पंडित बालाभाऊ उमड़ेकर (कुंडलगुरु) अकस्मात आए और उसी दिन सायंकाल को अण्णासाहब की एक महफिल में मुझे हारमोनियम पर संगत करने का निमंत्रण दिया तो मुझे सुखद आश्चर्य हुआ, क्योंकि मेरी जानकारी में अण्णासाहब अपने गायन में कभी हारमोनियम की संगत नहीं लेते थे। फिर भी पंडित कुंडलगुरुजी का आदेश सिर माथे पर लेक मैं अण्णासाहब के कार्यक्रम में उपस्थित हुआ। अण्णासाहब ने राग बरारी (बराटी) से अपने गायन का प्रारंभ किया और शुरू से ही ऐसा रंग जमाया कि महफिल अपनी चरम सीमा तक पहुंचते पहुंचते अण्णासाहब के उच्चतम गायन-स्तर का समूचा दर्शन श्रोताओं को अवश्य कर देगी ऐसे आसार पैदा हो गए। परंतु जिस कक्ष में महफिल चल रही थी वह छोटा था, श्रोता थे अनेक ! अत: श्रोताओं को गायन का पूरा आनंद न मिल पाने का परिणाम हुआ अशांति और धक्का-मुक्की में । इससे महफिल का रंग ही उखड़ गया और कार्यक्रम स्थगित करना पड़ा । फिर भी इससे एक सिलसिला शुरू हुआ अण्णासाहब की संगत करनेका, जो मेरे आगे के संगीत-जीवन में बड़ा ही लाभकारी सिद्ध हुआ । अण्णासाहब की गायकी को करीब से समझने, चिंतन करने का सुअवसर प्राप्त होना मेरे परम भाग्य की बात थी ।

अण्णासाहब की गायकी ने मुझे इतना प्रभावित किया था कि उनसे सीना-ब-सीना कुछ पा सकूं ऐसी इच्छा मन में जाग उठी और मैं जा पहुँचा लखनऊ । परंतु लखनऊ के मैरिस कॉलेज के प्राचार्य की व्यस्तता और जिम्मेदारियां अण्णासाहब पर इतनी अधिक थीं कि गुरु-शिष्य-परंपरा से मुझे तालीम देने वे असमर्थ थे और यह भाग्य भी मुझे प्राप्त न हो सका कि उनके महाविद्यालय में शुल्क भरकर उनमें प्रशिक्षण प्राप्त कर सकता। क्योंकि यहां भी मेरी आर्थिक विपन्नता आड़े आ रही थी । किसी तरह कुछ महीने मैं महाविद्यालय गया भी, परंतु फीस देने की मेरी अक्षमता से मुझे शर्मिंदगी महसूस हो रही थी ! एक बार स्वयं अण्णासाहब ने मेरी पिछली फीस भर दी थी । मैं उन्हें और कष्ट देना नहीं चाहता था अत: मुझे लखनऊ छोड़कर जाना पड़ा । अण्णासाहब जैसे उदार, करुणा से भरे व्यक्तित्व की अमिट छाप अपने मन में संजोए मैं जीवन के अगले मोड़ की प्रतीक्षा करता रहा ।

मेरे कनिष्ठ भ्राता स्व. वसंतराव देव को बेशक मुझसे अधिक सान्निध्य पंडित रातंजनकरजी का मिला । चूंकि वह एक ऊंचे कोटि के तबलावादक थे और अण्णासाहब की कृपासे मैरिस कॉलेज में तबला विषय के प्राध्यापक भी नियुक्त हुए थे, उन्हें अनेक बार अण्णासाहब की संगत करने का सौभाग्य मिला था । अण्णासाहब के साथ ही उनके संगीत-परिवार के अनेक सदस्य जैसे कि स्व. पंडित गोविंदरावजी गानू तथा पंडित व्ही. जी. जोग आदि मूर्द्धन्य कलाकारों की संगत करने के अवसर भी मिले मेरे बंधु स्व. वसंतराव को । यह भी अण्णासाहब की कृपा थी ।

दाद नहीं मिल रही थी !

सन १९३७ में लखनऊ छोड़ने के बाद फिर १९४७ में दुबारा लखनऊ में करीब सालभर रहने का मुझे मौका मिला। उसके पूर्व दिल्ली तथा लाहौर आकाशवाणी से मेरा गायन प्रसारित हुआ करता था। इस बार जब मैं लखनऊ रह रहा था तब एक ऐसी घटना घटित हुई जिसका उल्लेख करने का मोह नहीं टाल पा रहा हूँ। लखनऊ आकाशवाणी से अण्णासाहब का गायन प्रसारित होना निश्चित हुआ था परंतु अपरिहार्य कारण से अण्णासाहब को लखनऊ से बाहर जाना पड़ा, अत: उनके स्थान पर प्रसारण के लिये मेरा चुनाव हुआ। आकाशवाणी लखनऊ से मेरे गायन का प्रथम बार ही प्रसारण होने जा रहा था, इसीलिये वहां के श्रोता मेरा गायन सुनने के लिए अत्यंत उत्सुक थे, इस बात का पता मुझे अपने प्रसारण के बाद अनेकों प्रशंसकों के, फोन पर मुझे बधाई देने के सिलसिले से चला क्योंकि उनकी और मेरी भी दृष्टि में अण्णासाहब जैसे लब्धप्रतिष्ठ कलाकार के स्थान पर गायन प्रस्तुत करना एक कसौटी ही थी, जिसमें मैं अंशत: सफल रहा। अण्णासाहब के घर अनेक बार संगीत-चर्चा में मैं सम्मिलित होता, उनकी महफिल में अभ्यासक श्रोता बनकर ध्यान से उनका गायन सुनता; इस प्रकार से अनायास ही में उनकी गायकी को अपनी गायकी के अनुसार आत्मसात् करता और अपने कलाकार-व्यक्तित्व को विकसित करने में यह बात बड़ी ही सहायक सिद्ध हुई है ।

एक सहृदय, चिंतनशील कलाकार होने के साथ ही एक सहृदय श्रोता भी मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। अत: जब मैं महफिलों में श्रोता बनकर जाता हूँ तो ऐसी जगह बैठता हूँ कि मैं सूक्ष्म अवलोकन के साथ श्रवण भी कर सकूं और कलाकार को कोई व्यवधान न हो। एकबार अण्णासाहब की महफिल पंडित व्ही. जी. जोग के निवास-स्थान पर आयोजित की गई थी। वहां मैं एकचित्त हो एक कोने में बैठा गायन का आनंद ले रहा था कि अण्णासाहब और उनकी संगत कर रहे पंडित व्ही. जी. जोग में कोई संकेत-सा हुआ जिसका संबंध मुझसे था यह मैं समझ गया था। दूसरे दिन मैंने जोग साहब से जोर देकर पूछा तो उन्होंने बताया कि अण्णासाहब कह रहे थे - "उस कोने से कोई दाद नहीं मिल रही"। मैं यह सुनते ही बहुत दु:खी हुआ क्योंकि उन दिनों मैं अपनी संगीत-साधना में प्रगति पथ पर था और एक सफल कलाकार बनने के लिए प्रयत्नशील था, मेरा स्थान कलाकार-जगत् में महत्त्वपूर्ण हो चला था;फिर भी अण्णासाहब को गुरुस्थान पर मैं मानता था, उनकी गायकी का प्रशंसक एवं अभ्यासक था और उनसे कुछ प्राप्त करने की लालसा अपने विद्यार्थी-मन में संजोए मैं उनका गायन सूक्ष्मता से सुनता था। अत: तुरंत ही उनके पास जाकर मैंने निवेदन किया "आप मेरे गुरु समान, पिता समान हैं। आपकी गायकी प्राप्त कर सकूं ऐसी इच्छा तो है परंतु आपके सामने बैठकर आपको वाह वाह दूं, दाद दूं इतनी योग्यता, इतना साहस मुझमें नहीं, ऐसी उच्छृंखलता मुझे ठीक नहीं लगती। अत: मुखर होकर महफिल में वाहवाही देकर आपके सम्मान को ठेस पहुँचाना मैं नहीं चाहता"। मेरी उन बातों से उनके सारे संदेह दूर हो गए और मैं फिर से उनका प्रेमपात्र बन गया ।

चेंबूर म्यूझिक का गाना

अण्णासाहब का गायन विशाल जनसमूह की अपेक्षा मर्यादित श्रोताओं की उपस्थिति में अनेक बार सुनने का संयोग जब मुझे मिला तब तब ऐसा जान पड़ा कि उनका गायन चेंबर

म्यूझिक के लिये अनुकूल था। स्वरों की सूक्ष्मता, संवेदनाशीलता, रागों (विशेषत: क्लिष्ट रागों) के अंतरंग तक जाकर श्रोताओं के सामने राग-स्वरूप स्पष्ट करने का कौशल आदि में वे अत्यंत प्रवीण थे। उनका जीवन विद्यादान के लिए समर्पित था। अत: उनकी तालीम में तैयार हुए सर्वश्री नगरकर, भट, गिंडे, कायकिणी, श्रीमती मुटाटकर, कालविंटजी इत्यादि अनेक प्रगत कलाकार और संगीत चिंतक-अभ्यासक उनसे राग-रूप का सर्वांगीण विचार, प्रचलित और अप्रचलित रागों की सूक्ष्म साम्य-भेद दृष्टि विरासत में पा गए हैं और आक्रमक गायन की अपेक्षा संयमित पेशकश अण्णासाहब की गायकी की जो विशेषता थी उसे भी इन सभी कलाकारों ने आत्मसात् किया है। अण्णासाहब सचमुच में आधुनिक युग के संगीत-जगत् में श्रेष्ठ संगीतज्ञ तो थे ही परंतु श्रेष्ठ रचनाकार-वाग्गेयकार भी थे। लय को उनकी गायकी में कितना व्यापक और गहन स्थान था वह उनकी बंदिशों में अंतर्भूत सहज लयकारी से समझा जा सकता है और उनपर लय के प्रति उदासीन यह जो आक्षेप कुछ लोग उठाते हैं उन्हें इन बंदिशों को ध्यान से सुनने पर निरुत्तर हो जाना पड़ता है। अण्णासाहब के गायन में यद्यपि तबलावादक को संयमित संगत करनी पड़ती थी तथापि वे लयकार थे इसमें कोई संदेह नहीं ।

अण्णासाहब की अनेक यादें उमड़ पड़ती हैं मन में, फिर भी हर वस्तु का अंत होता है; इस लेख को भी गुरुवर्य स्व. राजाभैय्या पूंछवालेजी की इस उक्ति से समाप्त कर रहा हूँ "बाबूराव (अण्णासाहब) एक सुलझा हुआ गवैया है!"

म	म	प	म	रीं गं	ग	रीं	सा	सा	रीं	गं	गं	म	–	म	–
बि	ने	क	र	त	ब	क	स	जी	ऽ	ब	न	ते	ऽ	रो	ऽ
×				०				×				०			

संगीत–मनीषी आचार्य रातंजनकर

प्रो. एम. आर. गौतम, कलकत्ता

प	ध	प	प	धं	सां	–	सां	निं	–	निं	(लिं)	प	धं	प	–
न	र	त	न	अ	मो	ऽ	ल	पा	ऽ	यो	ऽ	ज	ग	मों	ऽ
×				०				×				०			

(पं. रामराव नाईक, बंगलोर, के शिष्य। आकाशवाणी पर संगीत-निर्माता। आगे बनारस हिंदू युनिव्हर्सिटी में प्रयोग-कला विभाग के प्राध्यापक। इसी प्रकार इं. क. सं. विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। संप्रति कलकत्ता में दूरदर्शन के सुप्रतिष्ठित प्राध्यापक ।)

पंडित श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर जी से मेरा परिचय सन १९४६ में बंबई में हुआ था। तब मैं तालमकवाडी में अपने मित्र श्री मनोहर अमेम्बल के साथ रहता था जो उन दिनों तबला-संगत अच्छी किया करता था। पंडितजी का कार्यक्रम लक्ष्मी बाग में था। मैं मनोहर के साथ उनको सुनने के लिए गया था ।

उनका रागों का विस्तार करने का ढंग और प्रत्येक बार कल्पना में एक अद्‌भुत नवीनता सुनकर उनके प्रति मेरा आकर्षण बढ़ता गया। लक्ष्मी बाग के उपर्युक्त कार्यक्रम में पंडितजी ने राग मालश्री, साजगिरी एवं दो एक अप्रचलित राग गाए थे। उन दिनों मुझे हिंदुस्थानी संगीत की अधिक समझ नहीं थी, यद्यपि स्वर, ताल एवं लय का पर्याप्त ज्ञान था। उसके पश्चात् मैं रेडियो से, आकाशवाणी के प्रत्येक केन्द्र से, आकाशवाणी की पत्रिका में छपे हुए कार्यक्रम को चिह्नित करके बड़ी श्रद्धा एवं निष्ठा से पंडित जी का कार्यक्रम सुना करता था। बिलासखानी तोड़ी, बरारी तोड़ी, पट बिहाग, हेमनट आदि राग मैंने उनसे लगभग चालीस वर्ष पहले सुने थे। इन रागों में उनके द्वारा किया हुआ विस्तार मेरे मस्तिष्क में आज भी अंकित है। ऐसा पांडित्यपूर्ण अद्वितीय अधिकार, ऐसी नवीन कल्पना-सृष्टि मैंने स्व. उ. फैयाज़ खां साहब के बाद उन्हींसे सुनी है। खां साहब उ.फैयाज खां का रंग पंडित जी के गाने में भरपूर था। वे उ. फैयाज़ खां साहब की असली सूक्ष्म बातों को ग्रहण करके अद्‌भुत ढंग से अपने ही आकर्षक रूप से प्रस्तुत करते थे। हालांकि उन दिनों और भी कई गायक थे जो उ. फैयाज़ खां साहब की आवाज और अदाओं तथा बाह्य रोब-रुआब की नकल करते थे लेकिन खां साहब के स्वरोच्चार की सूक्ष्मता, बोल उपज, अनेक प्रकार से गमक का चमत्कारिक प्रयोग, ताल के

साथ खेल इत्यादि पंडितजी के गाने में स्पष्ट रूप में सुनने को मिलते थे ।

सन १९५३ में जब आकाशवाणी में मेरा ऑडिशन हुआ था उस समय पंडित जी ऑडिशन देने आए थे तथा मुझे 'ए' ग्रेड दिया था। बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि उन्होंने मुझे मुस्लिम समझ कर उपरोक्त ग्रेड दिया था। यह बात मुझे स्व. पं. हक्सरजी ने बताई थी जो ऑडिशन के समय पं. रातंजनकरजी अण्णासाहब के साथ थे। उसके पश्चात् सन १९५५ में जब मैं आकाशवाणी में म्यूजिक प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त हुआ था, पंडित जी से सम्पर्क और अधिक बढ़ गया ।

मेरे आदरणीय गुरुजी स्व. ठाकुर जयदेवसिंह अण्णासाहब के घनिष्ठ मित्रोंमें से थे और मैं उनसे भी अण्णासाहब की गायक एवं रचनाकार की प्रतिभा के विषय में अक्सर सुना करता था ।

सन १९५६ में वार्षिक रेडियो संगीत सम्मेलन के उपलक्ष्य में स्व. आचार्य कैलाशचन्द्र देव बृहस्पतिजी के द्वारा पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी के संबंध में एक व्याख्यानमाला का आयोजन हुआ था। इसमें आचार्य बृहस्पतिजी ने पं. भातखण्डेजी के श्रुति-सन्निवेश एवं उनकी संगीत-सम्बन्धी अन्य अवधारणाओं की आलोचना एवं खण्डन किया था। लेकिन पं. रातंजनकरजी ने अपने गुरुजी पं. भातखण्डेजी की प्रतिरक्षा जोरदार ढंग से प्रमाणसहित की थी ।

सन् १९६२ में जब मैं आकाशवाणी दिल्ली में म्यूजिक प्रोड्यूसर था, मैंने पंडितजी अण्णासाहब से मेरे घर पर आकर गाने का अनुरोध किया था। पंडितजी ने अत्यन्त सरलता के साथ तुरन्त मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया था और मेरे घर आए थे। उस दिन शाम को उनके साथ उनके प्रमुख शिष्य श्री दिनकर कैकिणीजी भी आए थे ।

पंडितजी ने अपना गाना प्रारंभ करने से पूर्व पूछा था - "बोलो, क्या गाऊं? तुम्हारे घर पर आया हूं!" तो मैंने उनसे राग साजगिरी गाने का अनुरोध किया था। पंडितजी ने तुरंत साजगिरी गाया था और उसमें कितनी ही नवीन कल्पनाएँ तथा नए रास्ते उन्होंने विस्तार के लिए दिखाए थे। निस्सन्देह उन्हें रागविस्तार में अतुल्य अधिकार प्राप्त था। राग पूरिया एवं पूर्वी का मिश्रण, विशेषत: शुद्ध मध्यम का जिस प्रकार उन्होंने हर बार नवीन ढंग से प्रयोग किया था, वाकई अद्भुत था। और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि साजगिरी जैसे कठिन राग को यमन एवं तोड़ी जैसे सामान्य राग की तरह पूरी स्वतत्रंता से विस्तार प्रदान किया था। अन्य शब्दों में, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पंडितजी प्रचलित एवं अप्रचलित दोनों ही प्रकार के राग गाते थे। प्रत्येक राग उनकी मुट्ठी में था। जब उनकी आवाज उनकी कल्पना के अनुसार साथ देती थी तब ऐसी चमत्कारपूर्ण दो दो सप्तक की फिरत एवं मींड किया करते थे कि श्रोता उसे सुनकर स्तब्ध रह जाते थे ।

साजगिरी के पश्चात् जब पंडितजी ने अपनी असीम उदारता से मुझसे पूछा था 'क्या सुनाएं?' तब मैंने राग मालीगौरा सुनाने की बिनती की थी। तब उन्होंने उस दिन जो मालीगौरा की प्रस्तुति की थी वह मेरे लिए अविस्मरणीय है और सचमुच उस दिन ही वह राग मेरी समझ में अच्छी तरह से आया था। उस दिन मेरे बड़े भाई ने उस असाधारण संगीत की याद को सुरक्षित रखने हेतु पंडितजी की कुछ तस्वीरें ली थीं जो मेरे पास सुरक्षित हैं ।

तत्पश्चात् जब मैं हिन्दू विश्वविद्यालय में गायन विभाग के अध्यक्ष के स्थान पर कार्यरत था तब पंडित जी बनारस आए थे और राजघाट में श्री सामंतजी के घर ठहरे थे। तब एक दिन मैं उनके दर्शनार्थ वहाँ गया था। उस समय वे अकेले ही बैठे थे। तब मैंने उनसे, मुझे

झिंझोटी, हेमनट, रामदासी मलार, लाचारी तोड़ी राग सिखाने का, अनुरोध किया था। उस दिन उन्होंने मुझे झिंझोटी एवं हेमनट राग में विलम्बित एवं द्रुत ख्याल सिखाकर राग-विस्तार का नियम भी बताया था, विशेष रूप से हेमनट के विषय में ।

हालांकि आगरा घराने का हेमनट एवं पंडित जी के हेमनट में काफी अन्तर है, किन्तु मुझे उनका प्रकार अच्छा लगा था, क्योंकि मैंने उसे हैदराबाद में सन १९५५ में सुना था, जब मैं वहाँ आकाशवाणी में म्यूजिक प्रोड्यूसर था। जब मैंने उनसे हेमनट के 'विस्तार की कुंजी' पूछी थी तो उन्होंने कहा – 'तो तुम यमन गाओ केवल शुद्ध मध्यम से'।

मैं जब उनके पास दोबारा गया था तब उन्होंने मुझे राग रामदासी मलार और लक्ष्मी तोड़ी सिखाया था। राग लक्ष्मी तोड़ी सिखाते समय अद्‌भुत बात कही थी कि रागों में जहाँ जहाँ कोमल एवं तीव्र स्वर लगते हैं, वे राग अधिकांश लोक-धुनों से विकसित हुए हैं। इसके प्रमाण में उन्होंने लक्ष्मी तोड़ी के रिषभ गांधार और धैवत को इस ढंग से लिया था कि वे न तो कोमल थे, न तीव्र; वे बीच के स्वर थे और सुन्दर ढंग से आन्दोलित थे और एक लोक-धुन की झलक उसमें स्पष्टत: परिलक्षित हो रही थी। इसके साथ पंडिजजी ने एक और अद्‌भुत बात इस सम्बन्ध में बताई थी कि यह जानकारी उन्हें स्व. उ. फैयाज खां साहब से मिली थी। खां साहब ने उन्हें राग देसी, लाचारी तोड़ी एवं राग खट के धैवत को, जिसे सहकारी धैवत कहते हैं गाकर समझाया था। राग रामदासी मलार सिखाने के लिए उस दिन समय नहीं था। अत: पंडितजी ने मुझसे उसका मध्यमलय ख्याल 'माधौ मुकुंद' नोटेशन में लिखकर दिया था। मैंने लाचारी तोड़ी में विलम्बित झपताल 'सांवरे बादर' तथा द्रुत 'जा रे पथिकवा', झिंझोटी में विलंबित 'सांवरो मन भायो' तथा द्रुत तीन ताल 'मेरो मन सखि', राग हेमनट में विलम्बित 'पार न पायो कोउ गुण सागर को' तथा द्रुत 'निरतत कान्ह ब्रज गोपियन संग'' पंडितजी से सीखा ।

इस तरह पंडितजी के साथ छोटा-सा, संक्षिप्त सम्पर्क रहा। मुझे जीवन में पूज्य पंडितजी जैसे एक महान वाग्गेयकार और गायक का सान्निध्य प्राप्त करने का सुअवसर मिला जिससे मैं बहुत लाभान्वित हुआ। उनके सम्पर्क से मुझे संगीत की विभिन्न सूक्ष्मताओं को समझने की क्षमता प्राप्त हुई। मेरे लिए पंडितजी सदैव अत्यादरणीय एवं अविस्मरणीय रहेंगे ।

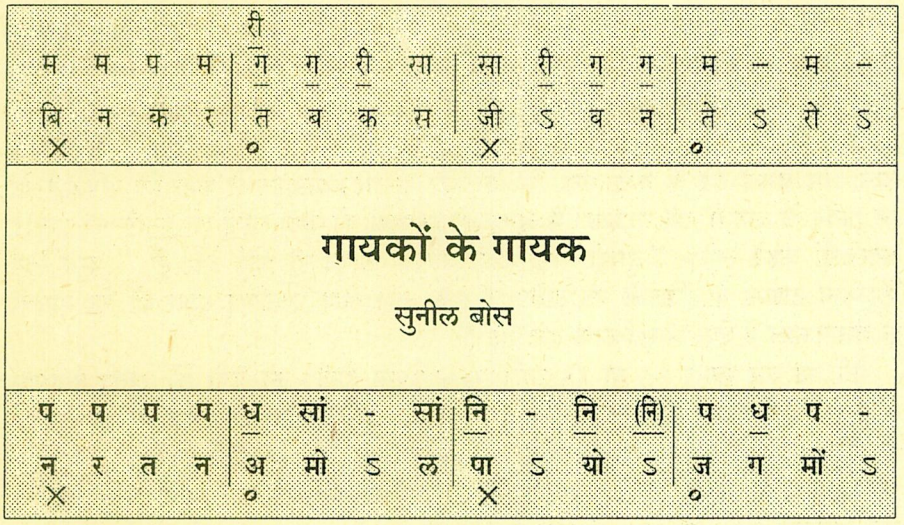

(श्री सुनील बोस भातखंडे संगीत कॉलेज लखनऊ के स्नातक हैं। कुछ काल आचार्य रातंजनकर जी से तथा बाद में श्री डी. टी. जोशी से प्रशिक्षिण पाया। उ. अताहुसेनखां से भी शिक्षा पाई। संप्रति 'संगीत रिसर्च अकादमी', कलकत्ता, में 'गुरु' के नाते कार्यरत।)

सन १९३६ की बात है, दिसंबर महीने के अंतिम सप्ताह में पहली बार मुझे रातंजनकरजी को देखने और उनके संगीत के कार्यक्रम को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम तिमारपुर के पुराने एसेम्बली हाउस में होनेवाला था ।

यह महफिल सुबह की थी, जिसमें केवल दो कलाकार थे - रातंजनकरजी और इन्दौर रियासत के विख्यात ध्रुपदिये उस्ताद नसीरुद्दिन खां साहब। पंडितजी को लगभग डेढ़ घण्टे का समय दिया गया था, जिसमें उनको अपना गायन पेश करना था ।

कार्यक्रम का प्रारंभ पंडितजी के गायन से हुआ। उनके साथ सारंगी पर विख्यात सारंगिये उस्ताद बुंदूखां तथा तबले पर उस्ताद कालेखांसाहब थे जो कि नत्थूखांसाहब के भानजे थे। पंडितजी ने अपना कार्यक्रम राग गोपीबसन्त से शुरू किया ।

श्रोतागण सामने बैठे थे - उस्ताद फैयाजखां, नसीरुद्दिनखां, हाफिज अली खां, देहली के मुजफ्फर खां, इनायत खां और तमाम लोग; उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू भी थीं। हॉल करीब-करीब पूरा भरा हुआ था ।

बेमिसाल पंडित गायक

गाना जब शुरू हुआ तो लोग-बाग तारीफ करने लगे। फिर जैसे-जैसे गाना बढ़ता गया, लोग तारीफ करना भूल गए। लगा जैसे पंडित जी के गाने ने सबको सम्मोहित कर लिया हो। सभी लोग मंत्रमुग्ध-से बैठे गाना सुनने में तल्लीन थे। समय कैसे चला गया कुछ पता नहीं चला। अचानक श्रीमती सरोजिनी नायडू की तंद्रा भंग हुई। उन्होंने देखा कि पंडितजी

अपना गायन समाप्त करके उठने की तैयारी में लगे हैं। तो उन्होंने सबसे पहले ताली बजाई। उनकी ताली की आवाज को सुनकर बाकी लोग भी चौंके और उन लोगों ने भी ताली बजाना शुरू किया तो काफी देर तक ताली बजाते रहे। उस समय घड़ी में एक बज चुका था ।

जैसे ही गाना खत्म हुआ फैयाजखां, नसरुद्दिनखां और भी बहुत-से लोग उनकी प्रशंसा करने और बधाई देने के लिए मंच पर आ गए। नसरुद्दिनखांसाहब ने कहा कि पंडितजी के इस गायन के बाद मैं नहीं गाऊँगा। मैं अपना गायन शाम को आप लोगों को सुनाऊँगा। उस्ताद फैयाजखां कहने लगे- "तुम्हारे जैसा पंडित गायक शायद ही कोई और हो," दूसरे दिन हिंदुस्थान टाइम्स में पंडितजी की तारीफ में एक लंबा लेख प्रकाशित हुआ जो कि अंग्रेजों के शासनकाल में एक आश्चर्यजनक बात थी ।

मेरी उम्र उस समय १८ या १९ साल के आसपास होगी। उन दिनों मैंने प्रशांत दासगुप्ता से गाना सीखना बस शुरू किया था। उस समय रागदारी संगीत की समझ नहीं के बराबर थी, मगर बहुत अच्छा लगता था। प्रशांत दा रातजंनकरजी के ही शिष्य थे ।

एक बार प्रशांत दा के घर पर रातंजनकरजी के गाने का कार्यक्रम रखना निश्चित हुआ। जब पंडितजी समय पर आए तो उन्हें देखकर मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई और मैं अपने मन में उनको अपना गुरु मानने की बात सोचने लगा। प्रशांत दा ने अपने सभी शिष्यों से पंडितजी से आशीर्वाद लेने को कहा। मैंने जब उनका चरणस्पर्श किया तो उन्होंने सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया, मैंने मन ही मन फैसला कर लिया कि अब इन्हींसे गाना सीखूँगा और आगे चलकर ऐसा ही हुआ। उस दिन दिल्ली के पंडित ब्रदर्स ने कहा कि पंडितजी, आज आप से कल्याण ठाठ का राग सुनेंगे। रात के आठ बजे पंडितजी का गायन आरंभ हुआ। सबसे पहले उन्होंने अपना कार्यक्रम राग यमन से शुरू किया। तदुपरांत भूपाली, शुद्ध कल्याण, हमीर, केदार, छायानट, कामोद, एक के बाद एक गाते चले गए । सबसे अंत में राग परज से अपने गायन का समापन किया। उस समय रात के तीन बजे थे। हकसर साहब कहने लगे, "पंडितजी, यह आप से ही संभव है ।"

'उसकी मैं इज्जत करता हूं'

उस्ताद फैयाज खांसाहब उनको प्यार से श्रीकृष्ण कहते थे। श्रीकृष्ण के प्रति खांसाहब के मन में असीम प्रेम और श्रद्धा थी। वे श्रीकृष्ण के सामने सिगरेट नहीं पीते थे। इन्हीं बातों से संबंधित मुझे एक घटना याद आती है। एक बार ऐसा हुआ कि खांसाहब को लखनऊ में गाड़ी बदल कर छोटी लाईन में लखिनपुर जाना था। मैं खांसाहब को गाड़ी पर चढ़ाने आया था। गाड़ी के आने में देर थी। मैं और खांसाहब स्टेशन के पास ही एक होटल में बैठे। खाने के पहले खांसाहब थोड़ा ड्रिंक ले रहे थे, इतने में मैंने कहा कि रातंजनकरसाहब आ रहे हैं। इतना सुनना था कि खांसाहब ने जल्दी से अपना ग्लास छिपा दिया और सिगरेट फेंक दिया। इतने में रातंजनकरजी करीब आ गए। उन्होंने खांसाहब को प्रणाम किया और पास ही बैठ गए। खांसाहब भी बड़े प्रेम से मिले, कुशल मंगल पूछा। कुछ देर बाद रातंजनकरजी प्रणाम करके चले गए। उनके जाने के बाद किसी ने खांसाहब से कहा कि वह तो आपके शिष्य हैं फिर उनके सामने छिपाने की क्या जरूरत है ? तो खांसाहब बोले, "देखो, श्रीकृष्ण कोई मामूली आदमी नहीं है। यह ठीक है कि वह मेरा शागिर्द है; मगर उसके जैसा गवैया हिंदुस्थान

में निकट भविष्य में नहीं मिलेगा। उसकी मैं बड़ी इज्जत करता हूँ।''

सन १९४९ की बात है। दिसंबर महीने के आखिरी दिनों में कालेज के एक फंक्शन में फैयाज खांसाहब को गाना था। खांसाहब किसी होटल में ठहरे हुए थे। होटल से चलते समय खांसाहब ने कहा कि आज बहुत सोच-समझकर गाना होगा क्योंकि श्रीकृष्ण के सामने गाना है। उसके जैसा पंडित गवैया शायद ही कोई दूसरा हो। उस दिन खांसाहब का गाना बहुत ही अच्छा रहा। वही उनका अंतिम गाना था क्योंकि फिर उसके बाद उनका लखनऊ आना नहीं हुआ।

पंडित रातंजनकरजी लखनऊ के मैरिस कालेज ऑफ हिंदुस्थानी म्यूजिक में संगीत सिखाते थे। वे उस कालेज के अध्यक्ष भी थे। कालेज की आर्थिक अवस्था बहुत ही खराब थी। सरकार की तरफ से आर्थिक सहायता बहुत कम मिलती थी। जिसके फलस्वरूप लोगों को पूरा वेतन भी नहीं मिलता था। जो कुछ भी आमदनी होती वह छात्रों से मिलनेवाली फीस के रूप में, जो कि कालेज-खर्च चलाने में बहुत कम पड़ती थी। उन दिनों मैंने भी उनसे गाना सीखना शुरू कर दिया था। कभी कभी तो ऐसा भी हुआ कि साल में २-३ महीने की तनख्वाह भी नहीं मिलती थी। इसके बावजूद किसी को बाहर नहीं सिखाते थे। जब आकाशवाणी केन्द्र शुरू हुआ तो गुरुजी वहां से गाने लगे। यही उनकी आर्थिक अवस्था थी।

गुरुजी जब सिखाने बैठते थे तो वे सभी छात्रों पर विशेष ध्यान देते थे। कक्षा में जब किसी राग को सिखाते थे तो उसके निकटवाले रागों को लेकर तुलनात्मक भाव से चर्चा भी करते थे। स्वरस्थान, मींड, कण, श्रुति आदि का प्रयोग कब, कहां और कितना होगा इन सब बातों का वह बहुत ध्यान रखते थे। हर राग की शुरुआत गुरुजी षड्ज से नहीं करते थे। इन सभी बातों पर तो भारी दखल रखते थे। हारमोनियम का ब्यौहार वे पसंद नहीं करते थे, क्योंकि किसी किसी राग में सभी स्वर शुद्ध या कोमल होते हुए भी तीव्र स्वरों का प्रयोग करना पड़ता है; ऐसे में बहुत दिक्कत पेश आती है।

'मेरी सेवा मत करो'

गुरुजी अपने शिष्यों से कोई चीज या सेवा लेना पसंद नहीं करते थे। उनका जीवन और चाल-चलन एकदम-से जोगियों जैसा था। सारा दिन अपने काम में व्यस्त रहते थे। संगीत की सेवा के लिये उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया था। उनका पूरा जीवन ही संगीतमय था। संस्कृत, हिंदी, मराठी, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार था। कभी अगर संगीत के बाद वक्त मिलता था तो वे इन भाषाओं में भिन्न-भिन्न रचनाएं पढ़ते थे। गुरुजी ने स्वयं संस्कृत में 'गोवर्धन उद्धार' म्यूजिक ड्रामा लिखा था और भिन्न-भिन्न रागों में उसकी रचना की थी। हम लोगों ने १९५५ में लखनऊ रेलवे इन्स्टिटच्यूट में पहली बार इसका प्रदर्शन किया। दिल्ली से डॉ. केसकर, आकाशवाणी के मंत्री और बहुत सारे लोग थे। सभी ने इस ड्रामे को बहुत पसंद किया। यह ड्रामा बहुत ही ऊंचे पैमाने का हुआ। मैंने इसमें प्राम्पटर का काम किया था।

संगीत की दुनिया को छोड़कर बाकी अन्य मामले में गुरुजी बहुत उदासीन थे। संगीत के लिये उन्होंने अपना सब कुछ त्याग दिया था। सन १९५८ में जब गुरुजी खैरागढ़ (मध्यप्रदेश) संगीत विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर होकर चले गए तो मैं भी कलकत्ता, पं. बंगाल सरकार

के एक म्यूजिक टिचर्स ट्रेनिंग कालेज में चला गया। गुरुजी के पास मुझे लगभग १३ साल तक रहने का समय मिला जिसमें मैंने बहुत कुछ सीखा, परंतु फिर भी लगा जैसे मैं बहुत कुछ नहीं जान पाया। गुरुजी ने जाते वक्त मुझे अताहुसैनखांसाहब के पास जाने के लिए कहा था। वह अपने शिष्यों पर विशेष ध्यान देते थे। उस समय तो मैं नहीं जा सका; परंतु बाद में मैं उनके पास गया और करीब दस साल तक तालीम हासिल की। एक बार बातों ही बातों में गुरुजी की बात चली तो खांसाहब बोले, भाईसाहब ने (फैयाज खां) सिर्फ रातंजनकरजी को ही तबीयत से सिखाया और सुनने में आया कि कभी कभी तो उनको लेकर दो-दो, चार-चार घण्टे तक अभ्यास भी कराया था। उनके बाकी शिष्यों को मैंने ही सिखाया। वह कभी-कभी सामने आकर बैठते थे। गुरुका गाना समझदार और गुणी जनों के लिए था। जनसाधारण के लिये उनके गाने को समझना थोड़ा मुश्किल काम था। किन्तु गुरुजी 'पब्लिसिटी' में न तो विश्वास रखते थे, न उसके लिए समय देते थे ।

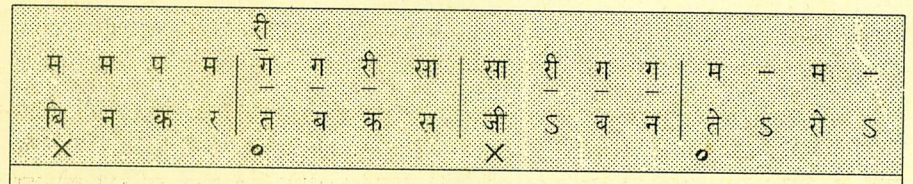

पूज्य अण्णासाहब की स्मृतियां : एक धरोहर

प्रो. गोविंद नारायण दंताळे, हैदराबाद

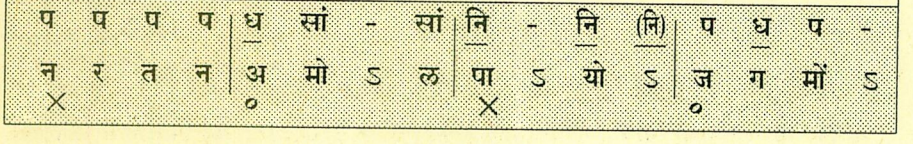

(आचार्य रातंजनकर के व्यक्तिगत शिष्य। भातखंडे संगीत महाविद्यालय के ' निपुण '। शासकीय संगीत महाविद्यालय, हैदराबाद के प्राचार्य रह चुके हैं। अवकाशग्रहण के बाद संगीत-शिक्षा में व्यस्त।]

ईश्वरीय संकेत के अनुसार संगीत के उद्धार, उसके सर्वांगीण विकास के लिए अवतरित पुरुष, युग-प्रवर्तक, नादयोगी, परम पूजनीय पं. विष्णु नारायण भातखंडे, तथा ' आधुनिक तानसेन ' के रूप में जिन्हें हमारे गुरुवर संबोधित करते थे, वे १९ वीं और २० वीं शती के महान् गायक मरहूम आफताबे मौसिकी उस्ताद फैयाजखां साहब हिंदुस्तानी संगीत की दुनिया में अमर हैं।

उन्हींकी सांगीतिक चेतना का अंश प्राप्त किए हुए, उनसे पूर्णांश में कृपाशीर्वाद प्राप्त किए हुए, उनके अत्यंत प्रिय एवं पट्टशिष्य, संगीत-तपस्वी गुरुवर अण्णासाहब ऊर्फ डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर के द्वारा संपन्न संगीत-सेवा संगीत-जगत् में अमर है।

इस संगीत के महापुरुष के विषय में ३० वर्ष के अत्यंत निकट सान्निध्य की कुछ स्मृतियों को लेखांकित करनेसे पूर्व उनके चैतन्य को कोटि कोटि प्रणाम!

मेरे पूर्वजन्म के पुण्यसंबंध के फलस्वरूप नियति ने, नागपुर से ८०० मील दूर खींचकर इस महापुरुष का एक विनम्र शिष्य होने तथा उनके सान्निध्य में ३० वर्षतक संगीत की निष्काम भाव से सेवा करने का परम भाग्य मुझे दिया, इसे मैं परमात्मा की असीम कृपा मानता हूँ।

पं. भातखंडेजी ने संगीत के सूर्यवत् तेजस्वी प्रकाश से परिपूर्ण तीन विशाल दीपस्तंभों को उनके निष्ठावान् शिष्यत्रय श्री अण्णासाहब, श्री वाड़ीलाल एवं राजाभैया पूंछवाले के रूप में संगीत की प्रदीर्घ सेवा के लिए खड़ा किया। इन्हीं दीपस्तंभों में से सांगीतिक गुणोंसे परिपूर्ण हमारे गुरुवर्य श्रीअण्णासाहब के प्रकाश से प्रकाशमान, ३० वर्ष से भी अधिक उनके सान्निध्य में रहे हुए, हम उनके चुने हुए निष्ठावान् विनम्र शिष्य एस्. सी. आर्. भट, ' छोटू ' ऊर्फ के. जी. गिंडे, दिनकर कायकिणी, प्रभाकर चिंचोरे और मैं, गोविंद दंताळे, उनके पूर्ण कृपाशीर्वाद

से गुरुवर की तरह संगीत की निष्काम एवं नि:स्वार्थ भाव से सेवा करते हैं। अण्णासाहब के साथ संपन्न यात्राओं में तथा संगीत की सेवा करनेवाली हमारी संस्थाओं में हम एक एक के निकट संपर्क में आ चुके हैं। अण्णासाहब के साथ लखनौ के वास्तव्य में और परवर्ती काल में उनके दौरों के सिलसिले में मैं उनके साथ रह चुका हूं, संगीत की महफिलों में उनके साथ गाया हूं और अन्य प्रसंगों में भी उनके सान्निध्य में रहता आया हूं। उन्हीं स्मृतियों को इन शब्दोंद्वारा मैं उजाला दे रहा हूँ।

अण्णासाहब के सान्निध्य में आने के पूर्व मेरी संगीत की कुछ कुछ साधना हुई थी। उस जमाने के बहुत सारे बुजुर्ग कलाकारों का गायन-वादन सुनकर मेरे कानों और मस्तिष्क पर गहरे संस्कार हुए थे। अपने कॉलेज में गायन और जलतरंग-वादन में मैंने बहुत-से पुरस्कार भी प्राप्त किए थे। मुझे अभिभावकों ने सलाह दी कि मैं लखनऊ जाकर वहां की 'संगीत विशारद' कर लूं।

गुरुवर के दर्शन और मार्गदर्शन

नागपुर के आप्पाजी भाके, नील सिटी हायस्कूल के सुपरिंटेंडेंट, मेरे पिताजीके मित्र थे। उनके पिताजी से कई वर्षों से उनका घरेलू संबंध था। उनके छोटे बंधु भाऊसाहब भाके लखनौ के ख्रिश्चन कॉलेज में प्रोफेसर के तौर पर स्थायी रूपमें १९२० को ही लखनौ में रहने लगे थे। भाऊसाहब अण्णासाहब के परम मित्र भातखंडे साहब के भी निकट सान्निध्य में रह चुके थे। यह सब सोचकर मैंने निश्चिंत मन से अगस्त १९४४ को लखनौ प्रयाण किया और श्री भाऊसाहब भाके के यहां ही ठहर गया।

भाऊसाहब भाके लखनौ में मेरा पितृतुल्य छत्र थे। बीच बीच में वे अण्णासाहब से मिलने आते और गायन के संबंध में मेरी प्रगति के विषय में पूछताछ कर चले जाते। भाऊसाहब का अण्णासाहब से अटूट स्नेह का रिश्ता था। फलत: मेरे विषय में शायद अण्णासाहब को अपनापा महसूस हुआ हो।

अण्णासाहब का गायन, उनका पढ़ानेका ढंग, उनकी विद्वत्ता इन सबके होते हुए भी उनका रहन-सहन सादा एवं स्वभाव विनम्र था। यह सब देखकर मुझे यह विश्वास हो गया कि बड़ा गायक होने का अपना स्वप्न अण्णासाहब से शिक्षा प्राप्त करके ही साकार होगा। अप्रसिद्ध राग सीखने में मुझे बहुत अभिरुचि थी। इसके पहले मैं श्री शंकरराव मास्तर साहब के पास २५-३० अप्रसिद्ध रागों की तालीम पा चुका था। 'निपुण' की कक्षाओं को जब अण्णासाहब तालीम दे रहे थे तब मेरी यह धारणा दृढ़ हो गई कि यदि कोई अप्रसिद्ध राग सीखना चाहे तो वह अण्णासाहबसे ही सीखे। इसके लिए मुझे पिताजी ने अनुमति दे दी। लखनौ में 'संगीत निपुण' की कक्षा में दाखिल होने के लिए मैंने कॉलेज में प्रवेश प्राप्त किया।

सन १९४५ की यह घटना है। मैं, चिंचोरे, छोटू, सुमतिबाई, नागपुर के आदलवार, कडू और दाऊजी गोस्वामी उक्त कक्षा में पढ़नेवाले शिष्य थे। 'निपुण' की कक्षा की तालीम ३-४ घंटे तक चलती थी। १९४५ में 'निपुण' प्रथम वर्ष एवं १९४६ में 'निपुण' की अंतिम परीक्षा हुई। चूंकि भाऊसाहब बड़ा मकान बदलकर छोटे मकान में रहने के लिए आए, मुझे अपने रहनेका अलग प्रबंध करना पड़ा। श्री सखाराम पखावजी के यहां एक बड़े कमरे में मैं रहने लगा। उसी कमरे में निकट ही की श्री जोगजी की खन्ना बिल्डिंग में रात-रात भर संपन्न गाने

की स्मृतियां आज भी ताजा हैं। उनका पर्याप्त गाना सुनने को मिला।

हैदराबाद में स्थापित नवीन शासकीय संगीत विद्यालय की ओर से गायन शिक्षक के पद के लिए विज्ञापन प्रकाशित हो गया था। मैंने वहां आवेदनपत्र भेज दिया। जुलाई में, इंटरव्ह्यू के पश्चात्, मैं चुन लिया गया। यहां के प्रसिद्ध गायक लहानू बापूरावजी के विरोध करने के फलस्वरूप शिक्षामंत्री, गृहमंत्री, गृहसचिव, डाइरेक्टर, डेप्युटी डाइरेक्टर प्रभृति कमिटी के सदस्योंके सामने मेरे और लहानू बापूराव के बीच गायन की प्रतियोगिता हो गई। सितार-शिक्षक का भी फिर से इंटरव्ह्यू लिया गया। उस वक्त मुल्की-गैर मुल्की आंदोलन चल रहा था। श्री अण्णासाहब के आशीर्वाद से मैं चुना गया और ३ अक्तूबर को Head of the Department of Hindustani Music के पद पर हिंदुस्तानी गायक/शिक्षक की ग्रेड पर मेरी नियुक्ति हो गई। १९५३ में PSC के प्रिन्सिपल के पद पर, प्रथम प्रिन्सिपल के रूप में मैं नियुक्त हुआ। १९५५ में नागपुर के कॉलेज में १९३८ से १९४४ तक पढ़ाई करके मैंने नागपुर युनिव्हर्सिटी की एम.ए. की उपाधि प्राप्त की। उत्तम नवोदित गायक, जलतरंग-वादक एवं चित्रकार के रूपमें नाम कमाया। उसी कॉलेज में म्यूझिक लेक्चरर के पद के लिए विज्ञापन प्रकाशित हुआ तब अण्णासाहब ने मुझे वहां आवेदन-पत्र भेजनेको कहा। किन्तु, चूँकि मेरे गुरुबंधु डॉ. शंकरराव प्रवर्तक के शिष्य श्री. प्रभाकर खर्डेनवीस ने आवेदनपत्र भेजा था, मैंने अपनी अर्जी वहां नहीं भेजी। १९५७ में श्री अण्णासाहब की खैरागढ़ के 'इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय' के व्हाईस चान्सलर के पद पर नियुक्ति होने के पश्चात् उन्होंने प्रोफेसर के पद के लिए मुझे अर्जी भेजने को कहा। उन्हें वहां मेरी ही नियुक्ति करनी थी। मैं इंटरव्ह्यू के लिए गया। अण्णासाहब के शिष्य चिंचोरे एवं शत्रुघ्न शुक्ला ने भी आवेदन-पत्र भेजे थे। अण्णासाहब ने हम तीनों को बुलाकर पूछा "तुम तीनों मेरे शिष्य हो, किसे चुनूँ, तुम लोग ही आपस में तय करके मुझे बताओ।" अण्णासाहब ने हमारे सामने धर्मसंकट उपस्थित किया। मैंने अण्णासाहब से कहा कि चिंचोरे मेरे गुरुबंधु हैं मैं उनके पक्ष में अपना नाम वापस लेता हूं। अण्णासाहब को यह बात पसंद नहीं आई, किसीको भी नहीं चुना गया।

परीक्षाओं के सिलसिले में संपन्न यात्राएं

बनारस विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के सिलसिले में मैंने अण्णासाहब के साथ अनेक यात्राएं कीं। अलाहाबाद, अलवार, भरतपुर, जयपुर, दिल्ली, नागपुर, रेवा, कानपुर आदि सभी परीक्षा-स्थानों पर उनकी गाने की महफिलें भी होती रहीं। तानपूरे पर साथ-संगत के लिए मैं उपस्थित रहा।

नागपुर के वास्तव्य में मध्यप्रदेश के तत्कालीन गव्हर्नर माननीय श्री मंगलदास पक्कासा के राजभवन में अण्णासाहब का अप्रतिम गायन संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्रीमती सुमतिबाई भी वहां मौजूद थीं। इसी प्रकार नागपुर युनिवर्सिटी में अण्णासाहब का विद्वत्ताप्रचुर एवं रंगतदार गायन संपन्न हुआ गाना सुननेके लिए युनिवर्सिटी के वाइस-चैन्सलर, रजिस्ट्रार तथा अन्य अधिकारी वर्ग आदि उपस्थित थे, विशेषकर नागपुर के प्रसिद्ध गायक-वादक भी वहां मौजूद थे। फलतः गाना और भी रंगतदार हुआ। अण्णासाहब ने उपस्थित रसिक श्रोतांओं को प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध रागों की और उनमें उनकी अपनी बनाई हुई बंदिशोंकी दावत ही दे दी।

बनारस की इस महफिल में अण्णासाहब एवं गु.पं. राजाभैया के शिष्य प्रा. परांजपे, प्रा.

बालाजी पाठक और अण्णासाहब के प्रति बहुत आदर एवं अभिमान रखनेवाले श्री सामंतजी और बनारस के बहुत-से गायक लोग उपस्थित थे। संगीत के मायके जैसे नागपुर शहर में संपन्न इस महफिल ने सभा में बहुत अच्छी तरह रंग भर दिया।

परीक्षा के सिलसिले में, कई वर्षों से अण्णासाहब ग्वालियर जाया करते थे। वहां महीने डेढ़ महीने तक तत्कालीन भूतपूर्व शिक्षा-मंत्री रावबहादुर मुळेसाहब के यहां ही उनका वास्तव्य रहता था। डेढ़ महीने की इस कालावधि में अण्णासाहब की कम से कम पंद्रह महफिलें संपन्न होती थीं। भोजन की पंक्ति में सुबह-शाम पं. राजाभैया शामिल होते थे और उन्हींकी इच्छानुसार महफिलें तय होती थीं। ग्वालियर के लोग अण्णासाहब का गाना बहुत पसंद करते थे। फलतः वहां के रसिक कलाकारों और श्रोताओं ने अण्णासाहब के गायन का पर्याप्त लाभ उठाया। पं. राजाभैया के साथ ही ग्वालियर के घरानेदार गायक, माधव म्युजिक कॉलेज के सभी शिक्षक, तथा अन्य संगीत विद्यालयों का शिक्षक-वर्ग आदि के सामने संपन्न महफिलों की रंगत एवं आनंद का वर्णन करना शब्दातीत है।

१९४७ और ४८ में दो वर्ष तक मुझे अण्णासाहब के साथ ग्वालियर जानेका अवसर प्राप्त हुआ। इन दो वर्षों में प्रथम बार ही मैं अण्णासाहब के साथ गया था और उनके साथ गाया था। मेरी वही साथ-संगत और मेरा गाना ग्वालियर के रसिक विद्वान् श्रोताओंको बहुत ही पसंद आया। मैंने सबसे खूब आशीर्वाद पाए। रावबहादुर मुळेजी के यहां हर शनिवार को भजन का कार्यक्रम संपन्न होता था। जिसमें मैं भी भावपूर्ण भजन गाया करता था। मेरी धार्मिकता, सादा रहन-सहन, विनम्र बर्ताव और अण्णासाहब के साथ गायन की उत्तम साथ-संगत के कारण मुळेसाहब मुझपर विशेष प्रसन्न रहते थे। इसी वास्तव्य में एक दिन सबेरे चायपान के पश्चात् अण्णासाहब की ब्रिंदावनी सारंग की 'नैना निरखि सखी' बंदिश तैयार हो गई।

ग्वालियर की ही तरह, परीक्षा के निमित्त किए हुए इंदौर के पंद्रह दिन के वास्तव्य में अण्णासाहब के अनेक जलसे कॉलेज एवं अन्य स्थानों में संपन्न हुआ करते थे। उस समय श्री मोरूभैया गोलवलकरजी कॉलेज के प्रिन्सिपल थे। अण्णासाहब के सब गानों की साथ-संगत के लिए वहां के प्रसिद्ध तबला-वादक उस्ताद जहांगीरसाहब रहा करते थे। प्रत्येक महफिल में श्री मोरूभैया गोलवलकर तथा नासिरुद्दीन खां साहब के शिष्य, शासकीय होळकर कॉलेज के प्रिन्सिपल श्री पद्मनाभ शास्त्रीजी निरपवाद रूप में उपस्थित रहते थे।

१९४८ के परीक्षा के दौरे में खमाज की 'सखी सांवरो' बंदिश की स्थायी तैयार हो गई, वहाँसे शिवपुरी जाने पर उसका अंतरा बन गया। इस समय अण्णासाहब के साथ श्री दिनकरजी उपस्थित थे। मैं उस वक्त अण्णासाहब की सिफारिश पर सरलाबेन साराभाई की 'श्रेयस्' संस्था में Director of Music के तौर पर नौकरी कर रहा था ।

कुछ अविस्मरणीय बैठकें

१९४८ में परीक्षा के सिलसिले में अण्णासाहब के साथ मैं इंदौर आया था। वहाँसे श्रीकृष्णराव मुजुमदार के साथ श्री कुमार गंधर्व जी से मिलने मैं देवास गया, जो तपेदिक से बीमार थे। श्री राजाभैया भी मेरे साथ थे। कुमार जी से मिलने के बाद रात को श्री कृष्णराव मुजुमदारजी ने अपने साले के यहां अण्णासाहब की बैठक आयोजित की। तबले की साथ-संगत के लिए इंदौर से उस्ताद जहांगीर खाँ और इंदौर के सारंगिये आए थे। अण्णासाहब का यह गाना भी

अविस्मरणीय रहा ।

१९४७ में अण्णासाहब के साथ बंडूभैया जोग, सुमतिबाई, चिंचोरे और मैं, सब जबलपुर आ गए। हम सब डॉ. सुभेदार के यहां ठहरे हुए थे। वहां के 'भातखंडे महाविद्यालय' के प्राचार्य श्री सदाशिवराव देशपांडे तो वहाँ थे ही। 'संगीत समाज' संस्था की ओर से अण्णासाहब का सम्मान एवं गाना संपन्न हुआ। व्हायोलिन की साथ-संगत के लिए बंडूभैया तो थे ही। गायन की साथ-संगत छोटू, चिंचोरे और मैंने की। मेरे पिताजी बाबासाहब ऊर्फ नारायणराव दंताळे उस समय जबलपुर में Rationing Office के Superintendent थे। मेरी बड़ी बहन सौ. विमल फलटणकर उस समय पिताजी से मिलने आई थी। हमारे यहां श्री अण्णासाहब एवं सब गुरुबंधु चाय-पान के लिए आए थे। मेरे पिताजी की अण्णासाहब से वह पहली ही भेंट थी। मेरे पिताजी से मिलकर अण्णासाहब को बड़ी खुशी हुई। मेरे पिताजी से अण्णासाहब ने विश्वासपूर्वक कहा– "मेरे ही निर्देशन में आपके सुपुत्र की संगीत शिक्षा ठीक तरह से चल रही है। उसकी ओर से आप निश्चिंत रहिए। इसके सिवा भाऊसाहब भाकेजी का पितृतुल्य छत्र उसपर है ही।" उनके इस कथन से मेरे पिताजी को भी बहुत तसल्ली हुई। जबलपुर से अण्णासाहब उनके साथ आए हुए हम शिष्यों के साथ नागपुर आए। नागपुर में 'चतुर संगीत विद्यालय' की ओर से अण्णासाहब का गायन हुआ। जबलपुर एवं नागपुर में प्राप्त मानधन को अण्णासाहब ने लखनौ के 'भातखंडे संगीत विद्यापीठ को' दान के तौर पर समर्पित कर दिया ।

'मद्रास म्यूजिक अकादमी' की ओर से अण्णासाहब का सम्मान, गायन और व्याख्यान

सन १९५० की बात है। 'मद्रास म्यूजिक अकादमी' ने अण्णासाहब को गायन एवं सप्रयोग व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया। उस समय मैं अहमदाबाद में नौकरी कर रहा था। मैं और श्री अण्णासाहब दोनों अण्णासाहब का साथ देने के लिए मद्रास चले आए। 'मद्रास म्यूजिक अकादमी' के तत्त्वावधान में मद्रास में संपन्न होनेवाला दस दिन का संगीतोत्सव दक्षिण हिंदुस्थान में, कर्नाटक संगीत की दुनिया में प्रतिष्ठित माना जाता है। वहां 'रसिकरंजनी सभा' के सभागृह में अण्णासाहब का सम्मान एवं ३ घंटे तक गायन संपन्न हुआ। हॉल श्रोताओं से ठसाठस भरा हुआ था। वे राग गाने के पहले प्रत्येक राग का परिचय कराकर फिर गाते थे, ताकि सभी विद्वान, संगीत कलाकार एवं रसिक श्रोता उनके गायन का आस्वाद ग्रहण कर सकें। अण्णासाहब ने नंद राग से श्रीगणेश किया। प्रत्येक राग में सुसूत्र आलाप, बोलतानें, विविध लयों में सरगम के प्रकार आदि अण्णासाहब की गायकी में निहित अलंकार-सौंदर्य के फलस्वरूप यह संपूर्ण गायन श्रोताओं ने बेहद पसंद किया। उस बैठक के लिए अण्णासाहब ने कर्नाटक संगीत के राग 'बसंत' की बंदिशों की इसी समय रचना की। मुझे और भटसाहब को गाने की साथ-संगत के लिए अण्णासाहब ने पर्याप्त मौका दिया, जिससे श्रोताओं को गाना बहुत पसंद आया ।

दूसरे दिन प्रात्यक्षिक एवं चर्चावाले सत्र में हिंदुस्थानी संगीत-पद्धति के गीत-प्रकारों पर उनका अत्यंत उद्‌बोधक व्याख्यान हुआ। प्रात्यक्षिक में गाकर सुनाने के लिए मैं और भटसाहब तो थे ही। अपने व्याख्यान में हिंदुस्थान संगीत के Voice production, Voice culture और सुरोंके महत्त्व को अण्णासाहब ने कर्नाटक संगीत के सब विद्वान श्रोताओं को स्पष्ट करके समझा दिया। चर्चा-सत्र के अध्यक्ष तत्कालीन न्यायमूर्ति श्री वेंकटरामन् ने अपने समारोप के भाषण

में इस बात का जोरदार समर्थन किया कि कर्नाटक संगीत में श्री रातंजनकर जी की बताई हुई इन दो महत्त्वपूर्ण बातों का विचार एवं उसका योग्य उपयोग होना चाहिए। उन्होंने प्रमुखत: यह विचार सामने रखा कि संगीत, चाहे हिंदुस्थानी हो चाहे कर्नाटकी, दोनो मे स्वरों का प्राधान्य तो विद्यमान है ही। कर्नाटक संगीत में लय एवं विलास जितना ही वह भी महत्त्वपूर्ण है ।

बंबई की हमारी वापसी यात्रा में श्री अण्णासाहब के मस्तिष्क में हिंदुस्थानी संगीत के Short hand की कल्पना उद्‌भूत हुई। वह उन्होंने हमें सिखाई। इसी प्रकार इस यात्रा में 'रजनी कल्याण' की उद्‌भावना अण्णासाहब ने की और उसकी बंदिशें भी तैयार हो गईं ।

कुछ मौलिक विचार एवं मत :

(१) ललित के धैवत के विषय में

नागपुर के वास्तव्य में, जब मैं अण्णासाहब के साथ ऐसे ही रिक्षा में जा रहा था, मैंने उनसे ललित के धैवत के बारे में पूछा-

मैं - अण्णासाहब, ग्वालियर परंपरा के अनुसार, जो प्राचीन परंपरा है और जिसे हम मानते हैं, ललित में धैवत शुद्ध लगता है तो प्रचलित ललित में वह कोमल कैसे हुआ?

अण्णासाहब - ललित में शुद्ध धैवत उतरा हुआ लगता है। धैवत का स्थान गौण है। तीव्र म के साथ वह लपेट लिया जाता है। ..... उसपर न्यास नहीं होता। सितारियों ने उसे कोमल बनाया। सितार पर धैवत को तीव्र मध्यम के पड़दे पर खींचकर मींड द्वारा लिया जाता है। इस तरह मींड से लेते लेते सितारियों ने उसे कोमल स्थान पर खींच लिया। उनका यह निरीक्षण एवं विश्लेषण मुझे तुरंत जँच गया, क्योंकि सितार का मेरा अभ्यास था ।

(२) केदार बहार के विषय में

मैं - अण्णासाहब, केदार में रेगमप संगति नहीं आती। तब केदारबहार की अपनी 'मदमाते आए' बंदिश में आपने यह संगति कैसे रखी ?

अण्णासाहब ने कहा - I could not resist.' प्राय: राग मे न आनेवाली संगतियाँ स्वयंभू रूप में मन में उद्‌भूत होती हैं। वे केवल बंदिश तक ही सीमित होती हैं। राग में विस्तार में उन्हें नहीं लिया जाता। मेरी राय में उस संगति ने केदार बहार में बहार की है। वह बंदिशी का सौंदर्य बढ़ा देगी ।

(३) हिंदुस्थानी संगीत के शुद्ध ठाठ के विषय में :

मैं - अण्णासाहब, बिलावल ठाठ हिंदुस्थानी संगीत का शुद्ध ठाठ कबसे हुआ ? मध्ययुगीन हिंदुस्थानी संगीत का शुद्ध ठाठ तो ग्रंथों में बताए गए अनुसार 'काफी' था ।

अण्णासाहब - इस विषय में कोई निश्चित प्रमाण ग्रंथ में उपलब्ध नहीं होता। प्राय: तानसेन के जमाने में वह हुआ होगा। पंडितजी का भी यही मत था ।

(४) राग-रस के विषय में :

काव्य की 'रस' कल्पना को अपने राग के रस से जोड़ना ठीक नहीं। किसी राग का गायन करते समय उस राग की मूर्ति को सब प्रकार के नादसौंदर्य से सजाना-सँवारना ही राग का रस है। उदाहरण के लिए, दरबारी कानड़ा का दरबारी रस, तोड़ी का रस तोड़ी। देस का रस देस इ.। ये विचार लक्षणीय हैं ।

संगीत की श्रुतियाँ, स्वर, राग का मतलब केवल Mathematics नहीं है। स्वरस्थान अपने नियम स्थानों पर ठीक ढंग से लगने पर श्रुतियां अलंकार के रूपों से अपने आप लग जाती हैं। गाने में रंजकता-रंगत होनी ही चाहिए। वही सच्चा गाना है ।

(५) कर्नाटक संगीत के अतिरंजित गमक के विषय में :

राग-गायन में स्वर-संगति की तरह, प्रत्येक स्वर का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व (Personality) होता है, यह विचार अण्णासाहब अपने प्रिय विषय 'स्वरोच्चार' एवं 'काकुभेद' पर बराबर प्रसृत किया करते थे। उन्हें लगता था कि कर्नाटक संगीत को रंजक एवं हिंदुस्थानी संगीत को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से स्वर के आविष्कार को महत्त्व देना आवश्यक है। इस संबंध में एक कर्नाटक संगीत के साथ की गई उद्‌बोधक चर्चा की यह स्मृति-

१९७० में हमने अपने पहले ही Government Music festival में Paper reading के लिए अण्णासाहब को आग्रहपूर्वक आमंत्रित किया । यहां के रवींद्र सभागृह में एक बड़े. कर्नाटक संगीतज्ञ के साथ बातचीत करते हुए उन्होंने अपने हाथ को लगातार हिलाते हुए पूछा- "मेरे हाथ की यह अँगूठी कैसी है?" मैं कुतूहल के साथ यह सब देख और सुन रहा था । उस गायक ने कहा- "आप तो लगातार हाथ हिला रहे हैं । उस अँगूठी के सौंदर्य के विषय में हाथ को स्थिर करके देखे बिना मैं कैसे कह पाऊंगा ?" अण्णासाहब ने तुरंत कहा- "वही बात अपने संगीत के स्वरोंके बारे में भी है । उसे स्थिर रूप में दिखाए बगैर उसका सौंदर्य कैसे मालूम होगा ? आपके कर्नाटक संगीत में भी स्वरविलास विद्यमान है ।"

(६) विलंबित ख्याल की लय :

अण्णासाहब हमेशा दृढ़ता के साथ कहा करते थे कि विलंबित ख्याल को अति विलंबित लय में नहीं गाना चाहिए । वे विलंबित ख्याल ग्वालियर लय में ही गाया करते थे, फिर वह चाहे एकताल हो, चाहे झुमरा, तिलवाड़ा या आड़ा चौताल । उनकी राय में अति विलंबित लय में गाने से बंदिश का रस निकल जाता है ।

मेरे कॉलेज में १९६२ में, सायंकाल को उनकी बैठक आयोजित की गई थी । हॉल रसिक श्रोताओं से ठसाठस भरा हुआ था । तानपूरे पर साथ-संगत के लिए मैं और भटसाहब थे । तबले की संगत के लिए शेख दाऊदसाहब और सारंगी पर रेड़ियो के हुसेनसाहब थे । तिलवाड़ा ताल में जैतश्री का विलंबित ख्याल शुरू करनेसे पहले उन्होंने दाउदसाहब से कहा- "दाऊदसाहब, बंबई-लय में तिलवाड़ा मत बजाइए । विलंबित ख्याल की बंदिश कोई सुनना चाहे तो अण्णासाहब और गुरुवर राजा भैयासे ही सुने । झपताल के साध्र भी वे मध्य लय में ही गाया करते थे । एक बार मैंने लखनौ आकाशवाणी से अण्णासाहब की मारूबिहाग की झपताल की 'सरस्वती माता' बंदिश बिलकुल धीमी लय में गायी । अण्णासाहब ने मेरा वह रेडियो कार्यक्रम सुना ।

रेडियो स्टेशन से लौट आने पर मैं अण्णासाहब से आशीर्वाद लेने के लिए उनके पास गया, तब अण्णासाहब ने संकेत दिया कि लय इतनी धीमी नहीं रखनी चाहिए ।

ग्वालियर-लय में विलंबित ख्याल गाकर अण्णासाहब ख्याल को सर्वांगीण सौंदर्य से सजा-संवार कर अत्यंत रंजक कर दिया करते थे ।

अण्णासाहब हमेशा कहा करते थे कि गुरु की गायन-शैली आत्मसात् करने के लिए शिष्यों को गुरु की संगति में खूब गाना चाहिए । अण्णासाहब गाने में अपनी साथ-संगत के लिए अपने शिष्यों को हमेशा साथ लेते थे और उन्हें गाने के लिए प्रोत्साहन दिया करते थे । अण्णासाहब के दौरे में जब मैं उनके साथ रहता था, मुझे ऐसे पर्याप्त मौके प्राप्त हुए और उनसे मुझे बहुत ही लाभ भी हुआ ।

अण्णासाहब की गायन-शैली :

गायन-शैली में आवाज लगाने से लेकर उस्तादी ढंग की बंदिशों के स्थायी-अंतरों की सच्चाई, राग की शुद्धता रागों के विविध पहलुओं का प्रदर्शन, ग्वालियर घराने की लय, आलाप, बेहेलावे, तानें बोलतानें, सपाट तानें, आग्रा घराने की गाने की आरंभिक नोमूतोम्, लयकारी, बोलालाप, विविध प्रकार की लयकारी, अतीत-अनागत की आकर्षक क्रीड़ा, सम पर आनेकी मनोहारी शैली, जयपुर घराने की लोच एवं पेंचदार तानें, चमत्कृतिपूर्ण तानें, अत्यंत जटिल किंतु उतनी ही रंजक तान, फिरत आदि सब प्रकारों में राग का सुसूत्र एवं ढ़ंगदार प्रस्तुतीकरण विस्तार एवं इन सब गायन-आविष्कारों पर रंजकता एवं रंगीलेपन का प्रावरण इत्यादि को अण्णासाहब की गायकी का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है ।

पं. बालकृष्णबुवा, उस्ताद फैयाजखां साहब, उस्ताद अब्दुल करीमखां साहब, उस्ताद अल्लादियाखां साहब, पं. विष्णु दिगंबर, उस्ताद मुश्ताक हुसेनखां साहब, अनंत बुवा जोशी, पं. राजाभैया पूछवाले आदि अण्णासाहब के प्रिय गायक थे; गु. पं. भातखंडे तो उनका सांगीतिक जीवन बनानेवाले, उनके सभी सांगीतिक गुणों को आकार देनेवाले सद्गुरु और सभी संगीत कलाकारों के आदर-स्थान थे । फलत: अण्णासाहब अपनेको किसी विशिष्ट घराने के गायक नहीं मानते थे । यह बात उन्होंने प्रत्यक्षत: मुझसे कही है । वे कहा करते थे- "ग्वालियर, आग्रा, जयपुर आदि घरानों के श्रेष्ठ गायकों की तालीम मुझे भले ही न मिली हो, तो भी वह सब **हमारी अपनी ही गायकी है**" १९२६ से लेकर १९९१ तक उत्तमोत्तम श्रेष्ठ गायकों के गायन मैंने सुने, उन सबके प्रति मेरे मन में नितांत आदर है । किंतु मेरा आदर्श गायक श्री अण्णासाहब ही रहे हैं । कैसा रंगीलापन है उनके गाने में! मेरे स्मृतिपटल पर गहराईतक अंकित वह गाना याद आते ही मैं गानसमाधि में लीन हो जाता हूँ । यह सौभाग्य उनके चुने हुए हम सब श्रद्धावान् विनम्र शिष्यों तथा उनके निकट के सब सुहृदों को प्राप्त हुआ है ।

अण्णासाहब ने एक बार मुझसे कहा- "दंताळे, तुम सब मेरे सुशिक्षित शिष्य हो । मेरे गुण-दोष मुझे अवगत हैं, फिर भी तुम शिष्यों की मेरे प्रति कितनी भक्ति और श्रद्धा है ! तुम्हें तथा भट, छोटू, दिनकर इ. शिष्यों को देखकर मैं गद्गद् हो जाता हूँ । अपने बच्चों को देखकर भी मुझे ऐसा एहसास नहीं होता । " गुरुवर के आत्यंतिक ममता के इन शब्दों को सुनकर मेरी आँखों में आनंदाश्रु आ गए । मैंने अण्णासाहब के चरणों में मस्तक रखा ।

अण्णासाहब ने किसी भी गायक के विषय में बोलते समय अनादर प्रकट नहीं किया अथवा

उन्होंने उसके अवगुणों की भी कभी चर्चा नहीं की । घरानेदार गायक की तालीम प्राप्त किए एवं परंपरा की रक्षा करनेवाले गायक के प्रति अण्णासाहब के मन में सदैव आदर विद्यमान रहता था, जो मैंने उनकी बातचीत में तथा ऐसे अनेक गायकों के संपर्क में आनेपर श्री अण्णासाहब के उनके साथ किए गए बर्ताव में देखा है ।

रेडियो ऑडिशन के विषय में :

केन्द्र सरकार के नभोवाणी विभाग की ओर से Cultural Audition Board के द्वारा आकाशवाणी कलाकारों के 'ग्रेड्स' निर्धारित करने के उद्देश्य से लिए गए 'ऑडिशन' का उपक्रम एक ओर जहां पुराने परंपरागत एवं नवोदित रंजक गायन-वादन करनेवाले कलाकारों के लिए वरदान सिद्ध हुआ, वहीं अण्णासाहब के सांगीतिक एवं वैयक्तिक जीवन की दृष्टि से एक बड़ी दैवी आपत्ति साबित हुआ । हम अण्णासाहब के शिष्यों के लिए वह एक अत्यंत दुःखद घटना थी । इस घटना ने अण्णासाहब के जीवन को काफी ध्वस्त किया ।

सेंट्रल ऑडिशन बोर्ड (CAB)के विषय में कुछ तथ्य :

उस जमाने में राजाश्रय छूट जाने के फलस्वरूप घरानेदार गायकों तथा सर्वसाधारण शिक्षकों को अपनी आजीविका के लिए आकाशवाणी के रूप में राजाश्रय, लोकाश्रय एवं ट्यूशन्स पर निर्भर रहना पड़ता था । प्रतिकूल आर्थिक परिस्थिति से संघर्ष करते हुए व्यावसायिक घरानेदार कलाकारों एवं उत्तम संगीत-शिक्षकों को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं, सो तत्कालीन नभोवाणी मंत्री डॉक्टर बी.व्ही. केसकरसाहबने देखा था । कलाकारों की यह परिस्थिति देखकर उन्हें प्रोत्साहन देने के लिए उनकी परंपरागत संगीत की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखकर उसे अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के उद्देश्य से तथा उनको आर्थिक सहारा देने के लिए डॉ. केसकरजी ने अण्णासाहब तथा अन्य संगीत कलाकारों से विचार-विमर्श करके IAS, IPS परीक्षाओं की तरह कलाकारों की जाँच-परीक्षा द्वारा उनके ग्रेडेशन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर 'सेंट्रल ऑडिशन बोर्ड' की स्थापना की । उसमें कलाकारों की ऑड़िशन्स लेनेके लिए 'ऑड़िशन कमिटी'पर विविध घरानों के घरानेदार कलाकारों को नियुक्त किया, जिनमें मुश्ताक हुसेनखाँ साहब, विलायत हुसेनखाँसाहब, पं. विष्णु दिगंबर के शिष्य पं. विनायकराव पटवर्धन एवं श्री कशाळकर, बीरेंद्र रॉय, किशोर चौधरी, गजाननराव जोशी, मल्लिकार्जुन मंसूर, नासिरुद्दीन खां के शिष्य इंदौर के पद्मनाभ शास्त्री इत्यादि कलावंतों का सदस्य के रूप में समावेश था, कुछ लोगों की सलाहकार के रूप में भी नियुक्ति की गई । बड़े गायकों को ऑडिशन्स से छूट दी गई ।

बुद्धिमान छात्र जिस प्रकार परीक्षा में अच्छी तरह पर्चे लिखकर उसमें उच्च श्रेणी प्राप्त करते हैं, ठीक उसी प्रकार जिन कलाकारोंने उत्तम ऑड़िशन दी गई है। उनके Practical performance के स्तर के अनुसार, अर्थात् राग का सौंदर्यपूर्ण प्रस्तुतीकरण बंदिश की सच्चाई, राग की शुद्धता, सुर एवं ताल पर प्रभुत्व आदि गुणों के आधार पर उन्हें तदनुसार संबंधित क्लास दिया गया, चाहे वह कलाकार किसी भी घराने का गायक-वादक क्यों न हो । जिन कलाकारों का उनकी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप उनका अपेक्षित ग्रेड़ नहीं मिला उनकी सिफारिश उनके ५-६ कार्यक्रम सुनकर CAB के पास की जाने की सूचना प्रत्येक स्टेशन के स्टेशन-ड़ायरेक्टर को दी गई थी । अण्णासाहब ने मुझे यह प्रत्यक्षतः बताया था । परंतु इसका पालन न होने से जिनके

ग्रेड़ में सुधार नहीं हो सका उन कलाकारों ने विद्रोह खड़ा किया । उन्होंने CAB के चेअरमन स्वयं यूनियन मिनिस्टर केसकर और व्हाइस-चेअरमन श्री. अण्णासाहब दोनों पर गालियों की बौछार करते हुए तथा उनके विषय में अनादरदर्शक बातें फैलाकर उनकी भर्त्सना करनेका लगातार प्रयत्न किया, दोनों की आयु की समाप्ति तक यह चलता रहा ।

१९६२ के पश्चात् डॉ. केसकर अगला चुनाव हार गए । पहलेवाली ऑड़िशन कमिटी, जिसमें प्रधान संगीत-निर्माता के रूप में विद्वान् संगीतज्ञ ठाकुर जयदेवसिंह का अंतर्भाव था, बरखास्त की गई । हम शिष्यों को अण्णासाहब ने ग्रेड़ेशन नहीं दिया था । अन्य विद्वान कलाकार कमिटी मेंबर्स की ही सिफारिश से हमें "A" ग्रेड़ मिल गई थी । (Established Artists) लब्धप्रतिष्ठ कलाकार के रूप में 'A' ग्रेड़ प्राप्त किए हुए हम अण्णासाहब के शिष्योंने १९४८ में ही नाम एवं स्थान कमाया था । रेडियो संगीत-संमेलन, संगीत के एवं भाषण के राष्ट्रीय कार्यक्रम, प्रादेशिक कार्यक्रम आदि डॉ. केसकर एवं अण्णासाहब की आकाशवाणी को दी हुई बहुमूल्य देन है । हम उत्तम कलाकारों एवं हमारे तैयार किए हुए उत्तम शिष्यों को अब आकाशवाणी पर कार्यक्रम प्राप्त करने के लिए कैसी प्रतिकूल परिस्थिति का मुकाबला करना पड़ता है, हमीं जानें । आखिर परमात्मा की इच्छा !

घरानानिरपेक्ष आदर-भाव :

मैं जब अण्णासाहब के साथ बंबई से कलकत्ता जा रहा था, व्ही. टी. स्टेशन पर पं. विनायकबुवा पटवर्धन से भेंट हो गई । मैंने उन्हें हाथ जोड़कर आदर के साथ प्रणाम किया । अण्णासाहब ने कहा- "दंताळे, इस तरह नहीं, झुककर प्रणाम करो ।" मैं तुरंत झुककर नतमस्तक हुआ । बुवासाहब को अत्यंत खुश होते देखा । जब जब पं. विष्णुबुवा के निष्ठावान् शिष्य पं. विनायकबुवा एवं पं. नारायणराव व्यास से मेरी मुलाकात हुई, तब तब मैं उन्हें झुककर वंदन करता था । वही बात श्री. अंतुबुवा एवं पं. गजाननबुवा के संपर्क में आने पर भी न रही। अंतुबुवा तो हमारे दादागुरु और पं. गजाननबुवा अण्णासाहब के शब्दों में 'खलीफा' थे ।

'रेड़िओ संगीत संमेलन' में गायन (१९५८):

१९५८ में दिल्ली के 'सप्रू हाऊस में अण्णासाहब का रेड़िओ संगीत संमेलन में अप्रतिम गाना संपन्न हुआ। साथ-संगति के लिए रेड़िओ ने मुझे 'बुक' किया था। व्हायोलिन की संगत के लिए बंडू भैय्या, व्ही.जी. जोग थे। अण्णासाहब बेलूरजी के यहां ठहरे हुए थे। मैं सरोजिनी नगर में अपने मित्र बाबा भाके के यहाँ ठहरा था। दूसरे दिन अण्णासाहब रियाज के लिए बैठ गए। तिलक कामोद राग में, रूपक ताल में विलंबित ख्याल की बंदिश और विक्रम ताल में द्रुत ख्याल की, खासकर सम्मेलन के लिए, नवीन बंदिश ही बनाई थी। नोटेशन करके अण्णासाहब ने मुझे वह दे दी। उन्होंने उसे गाया, उनके साथ ही गाकर मैंने उसे तुरंत आत्मसात् किया। दिनकर जी उस समय दिल्ली में ही थे। तबले की संगत के लिए आकाशवाणी के एक जाने-माने कलाकार आए थे। उन्होंने रूपक ताल जैसे तैसे बजाया। परंतु विक्रम ताल के बोल सामने लिखकर देनेपर भी वे उसे बजा नहीं सके। अनेक बार प्रयत्न करने पर भी जब वे उसमें सफल नहीं हो सके तब उन्होंने कहा- "अण्णासाहब, आपका यह गाना रेड़िओ संमेलन के लिए है। मुझे आत्मविश्वास नहीं आता। यदि आप मुझे क्षमा करें, तो मैं उपकृत रहूंगा।

दिनकर ने संतराम को विक्रम ताल की प्रैक्टिस करवाई थी। वह तुरंत उसे ले आया। संतराम ने अच्छा बजाया। तिलक कामोद के बाद परज राग की 'मैं जो जमुना पानी' बंदिश गानी थी। रियाज अपेक्षित रूप में संपन्न हुआ। दूसरे दिन संमेलन में अण्णासाहब का आखिरी गाना था। डॉ. केसकरसाहब, ठाकुरसाहब, विलायत हुसेन खांसाहब, ड़ीजी.एचसी. माथुरसाहब, हमीद अहमदखां, नरेंद्र शुक्ला, वि.रा. आठवले आदि ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ रसिक कलाकारों एवं श्रोताओं से हॉल खचाखच भरा हुआ था। अण्णासाहब ने इस प्रकार सम्हलकर रंगतदार गाना गाया कि उसने पहलेवाले गायक-वादकों के गाने का प्रभाव मिटा दिया। अण्णासाहब की आवाज़ बिलकुल नॉर्मल थी। नोम् तोम् आलाप के बाद विलंबित ख्याल को उन्होंने विविध प्रकार के सौंदर्यपूर्ण एवं बौद्धिक आकृति-बंधों के जरिए बहुत ही सुंदर ढंग से गाया। उसके बाद विक्रम ताल के द्रुत ख्याल ने भी पर्याप्त रंग भर दिया। नवीन ताल की यह बंदिश सब श्रोताओं को बेहद पसंद आई। बंडू जोग ने भी सुंदर साथ-संगत की। मेरी संगत भी अपेक्षाकृत ठीक रही। गाना खत्म होने के बाद डॉक्टरसाहब, माथुरसाहब, खांसाहब एवं सब कलाकारों ने अण्णासाहब की खूब तारीफ की। मेरे सहगायन को भी बुजुर्ग श्रोताओं ने सराहा।

अण्णासाहब के इस रंगतदार गाने की रेकॉर्डिंग अमूल्य धरोहर के रूप में आज भी मेरे पास सुरक्षित है, जिसे दशहरा, दीपावली, वर्षप्रतिपदा आदि त्यौहारों के समय सुनकर मैं अपने कान पवित्र करता हूँ। अन्य समय में भी अण्णासाहब का स्मरण होते ही, वह रिकार्ड़ बजाता हूं। मुझे कई बार ऐसा लगता है कि अण्णासाहब का यह रिकार्डिंग सभी कलाकारों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, रसिक श्रोताओं के पास कॅसेट के रूप में हो। "श्री रातंजनकरजी का गाना रुक्ष है, वह केवल शास्त्र है।" कहकर आलोचना करनेवालों का मुँह बंद करनेवाला हमारे आदरणीय गुरुवर का अमर किया हुआ सर्वांगपरिपूर्ण तिलक कामोद पिछले ६६ वर्षों में मैंने कभी नहीं सुना था।

एक बार मैं और भटसाहब बंबई में अण्णासाहब के यहां गवालिया टैंक गये थे। जानेके बाद हमने तानपूरे मिलाए। हम शिष्यों को गाना सिखानेके लिए अण्णासाहब हमेशा तत्पर दिखाई देते थे। एक घंटाभर राग पूरिया सिखाने के बाद अण्णासाहब को अड़ाणा के 'हे गिरधारी' विलंबित ख्याल का स्मरण हुआ। कुछ समय चिंतन करने के बाद अण्णासाहब ने तुरंत, बिना कागज पर लिखे वह राग हमें सिखाना आरंभ किया। बंदिश सिखाते सिखाते पूरी हो गई। फिर उसका नोटेशन करके उसे लिपिबद्ध कर रखा। अपने शिष्यों को भी अण्णासाहब ने बंदिशें बनाने के लिए प्रोत्साहन दिया। इसी प्रोत्साहन के फलस्वरूप गुरुवर के कृपाशीर्वाद से दिनकर ने सैंकड़ों उत्तमोत्तम बंदिशें बनाईं और नवीन राग भी तैयार किए। छोटू भैय्या ने भी उत्तम बंदिशें रचीं। उसी प्रकार मैंने भी २०० से अधिक ख्याल, ध्रुपद, धमार, तराने, टप्पा, ठुमरी आदि की रचना की। हैद्राबाद के वास्तव्य में मेरी आभोगी में रचित द्रुत ख्याल की 'करिए कृपा हे नाथ' बंदिश की स्थायी की आखिरी पंक्ति किसी तरह बैठती नहीं थी। मैंने अण्णासाहब को वह गा सुनाई। अण्णासाहब ने अत्यंत सुंदर शब्दों में स्वरसंगति जोड़कर स्थायी पूरी की।

बंदिश-रचना की सच्चाई, राग की शुद्धता एवं रंजकता :

लोकप्रियता एवं नामवरी हासिल किए हुए गायकों द्वारा बंदिशों को बिगाड़ना एवं राग की शुद्धता की ओर जान-बूझकर ध्यान न देना शास्त्रीय संगीत के विकास की दृष्टि से अत्यंत

घातक होता है। अण्णासाहब ने अपने एक लेख में गायक-वादकों को लक्ष्य कर किया हुआ निम्नांकित निवेदन विचारणीय है :-

"रागदारी संगीत गानेवालों को चाहिए कि जो थोड़े बहुत व्यभिचार परंपरागत राग-गायन में घुस गए हैं उन्हें हटा दें।"

एक अत्यंत ख्यातिप्राप्त गायक ने अपने एल.पी. रिकॉर्ड में सूरमलार गाया है। इस गायक को संभवत: इस राग की तालीम प्राप्त नहीं है। सुन-सुनकर ही उसने उसे गाने का साहस किया है। बालगंधर्व ने नाट्यसंगीत के अंतर्गत 'अनृतची गोपाला' पद सूर मलार में गाया है। उसीकी यह नकल है। सूरमलार का मतलब सामंत सारंग नहीं है। इसी बड़े गायक ने आभोगी की घरानेदार बंदिश 'चरन धर आये' की सम 'आ' पर रखकर बंदिश को पूरा बिगाड़ ही दिया है। उसी घराने की एक बड़ी गायिका से, जब उसे मैंने अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया था, पूछा- "आपको अपने गुरु सवाई गंधर्व ने उस बंदिश के राग की तालीम किस प्रकार दी है?" उन्होंने साफ साफ बताया, "हमारे गुरुने हम दोनों को इस बंदिश की तालीम नहीं दी है। भातखंडे की पुस्तक के आधार पर वह मैंने सीख ली है।" इस घरानेदार बंदिश की सम अन्य सब घरानेदार गायकों ने 'च' पर ही रखी है। एक अन्य लोकप्रिय गायक ने अण्णासाहब के पूर्वकल्याण के अति प्रसिद्ध विलंबित ख्याल 'होवन लागी सांझ' को द्रुत ख्याल के रूप में गाया है। यह बड़े दुर्दैव की बात है कि बड़े गवैये के एल.पी. रिकॉर्ड में गाए हुए इस ख्याल का नवोदित गायक भी अनुकरण करने लगे हैं। इन महाशय को, जो मेरे मित्रों में से हैं, मैंने अपने यहां जब चाय के लिए आमंत्रित किया था, मैंने आड़े हाथों लिया और उनसे पूछा कि आपने यह विलंबित ख्याल द्रुत ख्याल के रूप में क्यों गाया? तब उन्होंने जवाब दिया, "मैं दूसरा द्रुत ख्याल जानता नहीं था इसीलिए विलंबित ख्याल को मैंने द्रुत बनाया।" मैंने उनसे कहा कि यदि आपको दूसरी बंदिश मालूम नहीं थी तो मैं अण्णासाहब से आपके लिए वह तैयार करा देता। अण्णासाहब के प्रति उनके दिल में आदर था, वे बड़े लज्जित हुए।

टिहरी गढ़वाल में, वहां के युवराज के अभिषेक के लिए मैरिस कॉलेज के हम कलाकारों को आमंत्रित किया गया था, इनमें सखावत हुसेनखां सरोदिया, पखवाज-वादक सखारामजी, व्ही.जी. जोग, बिस्मिलाखांसाहब और उनके बड़े भाई तथा कॉलेज के अन्य लोग भी मौजूद थे। राजासाहब ने सखावतखां साहब को सरोदपर धानी राग बजाने की फर्माइश की। खांसाहब ने धानी के बदले जंगला ठोंक दिया। मैं और बंडू भैय्या मूंछों में हंसने लगे। राजासाहब शायद धानी नहीं जानते थे। कार्यक्रम के बाद खाँसाहब ने मुझसे पूछा- "अरे भई दंताळे, प्रिंसिपल साहब ने आपको धानी कैसा बताया?" मैंने उन्हें धानी गा सुनाया और उसकी परंपरागत बंदिश भी सुनाई। खांसाहेब ने तुरंत कहा- "अरे यह धुन तो मेरे नाना ने मुझे सिखाई थी।" "फिर आपने क्यों नहीं बजाई खांसाहब?" मैंने पूछा। खांसाहब ने जवाब दिया- "अरे भई, याद नहीं आया।"

संभवत: १९७२-७३ साल की बात है। मैं अण्णासाहब से मिलने गवालिया टैंक गया था। वहां पहुंचते ही एक विलक्षण दृश्य देखा। जिस हॉल में बालकृष्णबुवा, विष्णुबुवा गा चुके हैं, पं. भातखंडे जहां उन्हें सुनने के लिए आया करते थे, अण्णासाहब जहां गा चुके हैं, हम गुरुबंधुओं ने जहां तालीम पाई, गाया, खूब मनोविनोद किया, आनंद के साथ गपशप होते

देखा, उसी हॉल में छोटे छोटे पार्टिशन करके सबने अपनी अपनी अलग अलग गृहस्थी बसायी थी। अण्णाजी का सामान, खाना-पीना, चौका चूल्हा एक कमरे में। प्रत्यक्षत: अण्णासाहब की बताई हुई घटना का स्मरण हो आया। जब उनके पिता गुजर गये थे तब उनके चरणों में सिर रखकर सब भाइयों ने कसम खायी थी कि हम एक दूसरे को छोड़कर अलग नहीं रहेंगे। माता का बचपन में ही निधन होनेसे बुआ ने जीवनभर अविवाहित रहकर सांसारिक जीवन का परित्याग किया। उसी घर की भला ऐसी दुर्दशा हो? दादा का तो १९४८ में ही देहांत हुआ, दूसरे छोटे बंधु 'भाई' भी गुजर गए, मानो दुख का पहाड़ ही टूट पड़ा और खाई हुई उस कसम पर पानी फिर गया। मुझे बहुत ही बुरा लगा। अण्णासाहब बाथरूम से तौल सम्हालते हुए आ रहे थे। मैंने उनका हाथ पकड़कर, कमरे में लाकर उन्हें बिस्तर पर बिठाया। अण्णासाहब ने विषण्ण मन से कहा- 'दंताळे, तुमने इसके पहले मुझे कितना ॲक्टिव देखा है? अब मैं चल नहीं सकता, लिख नहीं सकता। मेरी इस दशा को क्या कहा जाए?''

मैं - ''आपका स्वास्थ्य जल्द ही सुधर जाएगा, दिल छोटा न करें, चिंता को छोड़ दें। यह शरीर-भोग है।''

अण्णासाहब - ''दंताळे, मेरी और ८०-९० बंदिशें तैयार हैं।''

मैं - हम छपवा लेंगे अण्णासाहब।

अण्णासाहब - ''पैसा?''

मैं - ''अण्णासाहब, हमारा पैसा आप ही का है न? भटसाहब, छोटू, दिनकर आदि हम सब गुरुबंधु उसे मिलकर छपवा लेंगे''।

माताजी चाय ले आईं। घंटाभर उनके चरणों के पास बैठकर, चाय पी और उनके चरणों में मस्तक रखकर उनसे बिदा हो गया। बाहर आने पर मैं अपने आंसुओं को रोक नहीं पाया। दरवाजे के बाहर एक कोने में जाकर आँसुओं के लिए रास्ता खुला करके मैं दिनकर के पास जाने निकला।

आखिरी भेंट:

भाई के निधन के पश्चात् दूसरे छोटे बंधु 'बाबा' भी गुजर गए। दु:ख का यह सब भार सिरपर उठाकर गवालिया टैंक से अण्णासाहब विद्याजी के फ़्लैट में माताजीसह जोगेश्वरी में रहने आए।

जोधपुर युनिवर्सिटी की बोर्ड ऑफ स्टड़िज की मीटिंग के लिए बंबई होकर जाना मैंने तय किया था; तदनुसार दिसंबर १९७३ में अंतिम सप्ताह में मैं बंबई आया। छोटू के यहां ठहर गया और छोटू के साथ अण्णासाहब से मिलने जोगेश्वरी गया।

अण्णासाहब का शरीर अत्यंत जीर्ण एवं थका हुआ था। बाहर के हॉल में वे आराम कुर्सीपर पैर फैलाकर बैठे थे। हम दोनों ने उन्हें वंदन किया और उनके पास बैठ गए। माताजी भी बाहर आईं। लगा कि इस बार अण्णासाहब कुछ बोलने की स्थिति में नहीं हैं। जब से वे फ़्लैट में रहने के लिए गए थे, बाहर के ही हॉल में पड़े रहते थे। डॉक्टर के कहने पर भी वे घर के भीतर भी घूमते फिरते नहीं थे। गैलरी में धूप में बैठना भी वे टालते थे। माताजी से हैदराबाद की वार्ता एवं क्षेम समाचार बताकर हमने उनके और अण्णासाहब के स्वास्थ्य के बारे में पूछताछ की। उन्होंने कहा- ''जब से अण्णासाहब फ़्लैट में रहने आए हैं, बाहर

के हॉल में ही बैठे रहते हैं। पूरा फ़्लैट भी उन्होंने कभी नहीं देखा। जब से गवालिया टैंक के निकट का निवासस्थान उन्होंने छोड़ दिया है वे उदास-से रहने लगे हैं।

माताजी चाय-नाश्ता ले आईं। अण्णासाहब को भी मैं अपने हाथ से चाय देने लगा। उन्होंने जोर से चिल्लाते हुए इनकार किया। छोटू ने कहा- ''आजकल अण्णासाहब ने खाना-पीना भी लगभग छोड़ दिया है।'' उन्होंने जबरदस्ती जैसे-तैसे थोड़ी-सी चाय पी, मुंह थोड़ा-थोड़ा जूठा किया।

आंखों से आंसू रोकना मेरे लिए मुश्किल हो गया। अण्णासाहब को मैंने अपनी यह दशा मालूम नहीं होने दी। घुटने टेककर, उनके चरणों में मस्तक रखा और छोटू और मैंने अण्णासाहब से भारी दिल से बिदा ली।

वह बिदाई, चरणों में नतमस्तक होकर प्राप्त किए हुए वे आशीर्वाद, वह भेंट नियति ने आखिरी ही बना दी।

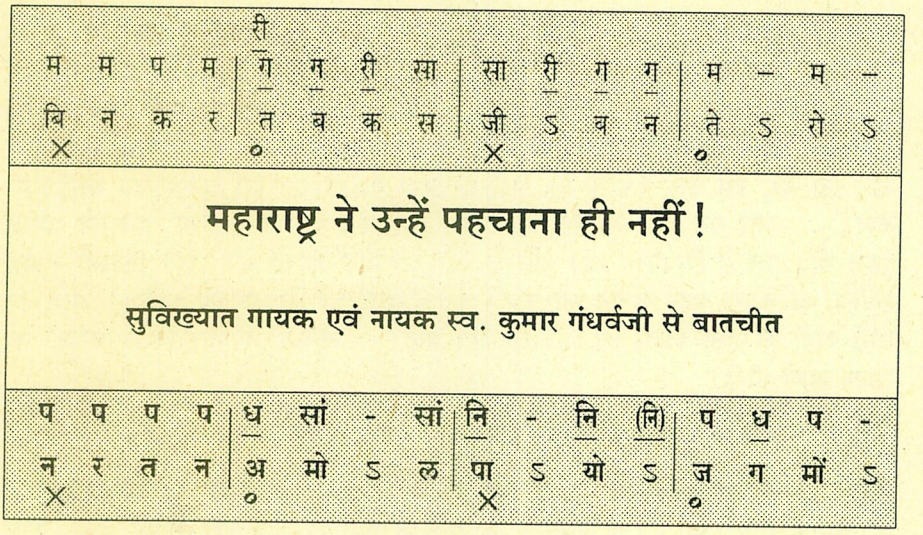

डॉ. के. जी. गिंडे, कुमारशिष्य श्री सत्यशील देशपांडे

(१ अगस्त १९९०)

गिंडे : कुमार भैया, आज हम अण्णासाहब के दरबार में बैठे हुए हैं और पुरानी यादों को उजाला देने की कोशिश कर रहे हैं। हम दोनों अपने गांव से बिछुड़ गए और चार साल बाद बंबई में ही मिले। याद है न ?

कुमार : हां, हां, याद है तो।

गिंडे : बंबई में प्रोफेसर बी.आर. देवधर ने अपने म्यूजिक स्कूल में हमारे अण्णासाहब के भाषणों का आयोजन किया था, वहां हम मिले। याने यह १९३६ की बात है। फिर मैं पढ़ाई के लिए गदग चला गया और तुम देवधर मास्टरजी के साथ बंबई आ गए।

कुमार : बिलकुल, मैं मन में यही सब स्मरण कर रहा था।

गिंडे : मेरी याद के मुताबिक बैरिस्टर जयकरसाहब ने १९३५ के आखिर में जिना हॉल में जो कान्फ्रेन्स आयोजित की थी, तब मास्टरजी ने तुम्हारा पहला प्रोग्राम पेश किया था। उस प्रोग्राम में उ. मंजीखां, उ. अल्लादियाखां, उ. फैयाजखां, उ. अब्दुल करीमखां ये सब मौजूद थे।

कुमार : हाँ, उस प्रोग्राम में मैं कलकत्ते से आया था।

गिंडे : अण्णासाहब से तुम्हारी पहली मुलाकात उसी वक्त हुई, क्यों ?।

कुमार : नहीं, मुझे ऐसा नहीं लगता। मैंने उन्हें उसके पहले देखा। लेकिन तुम्हारी याद तो बराबर थी। बचपन में हम मिले थे। गिंडे नाम भी याद था। तुम्हारे पिताजी मुझे चिदंबरस्वामी

के कार्यक्रम में ले गए थे। वह जमाना ही कुछ और था। उन दिनों वझेबुवा वहां आया करते। मैंने उनका गाना सुना था। इतना ही जानता था कि ये बहुत बड़े गवैया हैं। समझता तो कुछ भी नहीं था। तुम्हारे बड़े भैया दिलरुबा बजाते। वह तो हमारे लिए एकदम नया वाद्य था। आगे पता चला कि तुम्हारे भैया बड़े डॉक्टर हैं। तो ऐसा सब यादों का सिलसिला मन में जाग रहा था, उस वक्त १९३५-३६ में। सोच रहा था कि यह मेरा बचपन का साथी गया कहाँ? ... और सब याद आ रहा है। तुम्हारे पिता जब मुझे ले के आए, तब मैंने कमीज पहनी थी। गले में शिवलिंग था। और हम तो विष्णुपीठ जा रहे थे। तुम्हारे पिताजी ने मुझे कमीज का ऊपरी बटन लगाने को कहा। उनको शिवलिंग दिखना नहीं चाहिए! आज उन सभी बातों पर हंसी आती है। .... तो ऐसी बातें। ....लेकिन अण्णासाहब के भाषणों का स्मरण आज भी है।

गिंडे : हर शनिवार इतवार को देवधर साहब ने अण्णाजी के भाषण रखे थे।

कुमार : फिर मैंने तुमसे पूछा कि तुम आजकल कहां हो। तुमने बताया कि मैं लखनऊ में अण्णाजीके साथ रहता हूं। तो बंबई में उस वक्त अण्णासाहब शुद्ध कल्याण की चीज 'अल्ला ही बड़ा साईं' गाए थे। राजाभैय्याजी का भी गायन हुआ था। लेकिन अण्णासाहब से खास परिचय तब हुआ जब वे दो-ढाई महीने छुट्टी के लिए बंबई आते थे। .... मुझे हमारे बंडू जोग (व्ही. जी. जोग) की भी याद आती है। वह शिक्षक बनकर लखनऊ गया था। तुम लोगों को वहां वायलिन-वादक अध्यापक की जरूरत थी। बंडू को लखनऊ भेजना तय हुआ तब जोग के फुफेरे भाई आठवले मास्टरजी ने कहा कि अपने संगीतज्ञान की फिक्र मत करो। वहां पं. रातंजनकर हैं, वह सब देखभाल लेंगे। और तुम उस वक्त बंबई में नहीं थे। बैलहोंगल गए थे।

गिंडे : हां, मैं १ महीने की छुट्टी पर जाता था।

कुमार : मगर उस समय रातंजनकर जी के साथ अपना एस.सी.आर.भट था। तो कहने का मतलब यह कि मैं, बंडू, मुळे और भट वहां जमते थे। ५ बजते ही हाथ में एक कापी लेकर मैं वहां हाजिर हो जाता था। लगभग २ महीना यह उपक्रम चलता। हम उसे कभी टलने नहीं देते थे। अण्णासाहब की सोहबत में बैठना अपने में एक शिक्षा का ही अवसर था। फिर उस गपशप को सुनने और लोग भी आया करते। वह समय बिताने के लिए आते, मगर हम तो कुछ नया सीखने के लिए जाते।

भटसाहब से हमारी अच्छी दोस्ती थी। क्योंकि वह और बंडू लखनऊ में साथ साथ रहते। तुम तो क्या 'सुपीरियर क्वालिटी' के लोग! इधर हमारी महफिल कभी बंडू के यहां तो कभी देवधर सर के यहां चलती ही रहती थी। तो उस मुकाम में हर साल जबतक मैं बम्बई में रहा तबतक मुझे बहुत कुछ सीखने का मौका मिला। लेकिन अण्णासाहब की तबीयत का, उनके स्वभाव का जो रूप हमें देखने को मिला सो ग्वालियर में।

हमारे गुरुजी प्रो. देवधर साहब दिल्ली जाते तो लखनऊ भी जाया करते थे। वह हमें हमेशा बताते कि अण्णासाहब के यहां यह राग सुना, वह सुना.... वगैरेह। अण्णासाहब पर उनका

गहरा विश्वास था। और सुनो, हमारे गुरुजी यों तो भातखंडे जी की मुद्रा लिए हुए न भी थे, तो भी उन्हें रातंजनकरजी के शिष्यों में से ही एक मानना चहिए। हमारे सत्यशील के पिता श्री वामनराव और हमारे सर दोनों प्रतिदिन जाके भातखंडे जी से मिलनेवालों में थे।

गिंडे : सच है, भातखंडे जी की जीवनी में भी इसका जिक्र मिलता है।

कुमार : हमारे सर को (देवधर साहब को) भी बंदिशें जमा करनेका यह शौक भातखंडे जी की प्रेरणा से ही लग गया। अण्णासाहब जैसे संगीतकारों से मुलाकात होने पर पंडितजी को बड़ी ही खुशी होती थी। क्योंकि उन्हें हमेशा यही लगता था कि संगीतकला पढ़े लिखों के हाथ में जानी चाहिए। फिर ऐसे लोगों के साथ बड़े मन से वह काफी समझाकर और खोलकर बातें करते। उसका लाभ कितने लोग लेते होंगे इसका मुझे पता नहीं। किंतु-

गिंडे : सिर्फ राजारामबुवा पराड़कर इतवार को सबेरे जाया करते थे।

कुमार : हां... तो संगीत-कला, जिन लोगों के हाथ में रह गई है, उसे वह ठीक नहीं समझते थे। उन्हें वह मंजूर नहीं था। उन्हें बराबर लगता कि यदि हालत वही रही तो संगीत का उद्धार कदापि नहीं हो सकता। शिक्षित लोगों को इसमें दखल देनी चाहिए। उनका यह आग्रह था। हमारे गुरुवर को वे बहुत चाहते थे। वामनराव देशपांडे जैसे पढ़े-लिखे लोगों के लिए उनके मन में बड़ी चाहत थी।

गिंडे : गवैये उनसे नाराज रहते थे, किंतु शिक्षितों के मन में उनके लिए आदर का भाव था।

कुमार : गवैयों की नाराजी तो रहने ही वाली थी। क्योंकि यह संगीत को कागज पर उतारते थे, जो उन्हें एकदम नागवार था। और ज्ञान के बारे में यह उनसे प्रश्न किया करते जिससे वे परेशान हो उठते होंगे। ....हमारे गुरुजी भातखंडेसाहब के ज्ञान के बारे में हमेशा बताते। उनके पास भातखंडेजी की एक डायरी भी थी। .. मैं प्रोग्रामों के सिलसिले में दिल्ली, कलकत्ता, लखनऊ जाया करता था। और लखनऊ में तो काफी मजा रहता - तुम सब जो वहां थे! तबला-वादक सदाशिव से हमारी दोस्ती ! वह सबको लेकर इधर उधर जाता। तब मैं लखनऊ के प्रोग्राम उससे तय करवा लेता था। पहले दिल्ली, बाद में लखनऊ। अफसर लोग हमारे गुरुजी के दोस्तों में से ही थे। इससे लखनऊ का प्रोग्राम पक्का मिलता था । फिर क्या अण्णासाहब के और निकट जाने का मौका । तिसपर मैं तमाखूवाला पान खाता था, इससे और ज्यादा नजदीकी होती ।

गुरुजी हमेशा कहते तुम दिल्ली जाते हो, तो वापसी में ग्वालियर ठहरो और गाना बजाना सुन के आओ । तो मैं वैसा ही करता। और कैसा इत्तेफाक कि उन दिनों परीक्षाओं की वजह से अण्णासाहब का डेरा भी वहां रहता। उनका और मेरे ठहरने का स्थान एक ही रहता। फिर क्या चाहिए? वे ऊपर ठहरते, मैं नीचे। राजाभैय्याजी घर से नहा-धोकर आते और तब स्कूल में याने माधव संगीत महाविद्यालय में बैठक जमती। पान, चाय वगैरा हो जानेतक परीक्षा का वक्त आ जाता। मैं भी कभी कभी साथ हो लेता ।

गिंडे : रात को कोई महफिल वगैरेह.....

कुमार : अरे वह तो रोज ! उसका कोई शुमार नहीं था। ग्वालियर में कहीं आप घुस जाइए तो महफिल चालू ही हो जाती। हम कहीं भी जाएं हारमोनियम, तबला-बायां, तानपूरा सब हमारे हो जाते। उसमें गौर करने की बात यह कि ग्वालियर के लोग अण्णासाहब को बेहद चाहनेवाले। ऐसे माहौल में उनका गाना सुनने का मौका मिलना, याने वाह ! क्या कहना ! जिन्होंने अण्णासाहब का 'वह' गाना नहीं सुना उनको जो मैं यह सब बताता हूं वह सब झूठ ही लगता है ।

गिंडे : राजाभैय्या के शिक्षक गुणे मास्टर और अण्णासाहब का...

कुमार : सच है। उनके रिकार्डस' काफी अर्से बाद निकले। क्योंकि महाराष्ट्र के और लोगों ने अण्णासाहब का गाना बहुत बाद में सुना । उनके रिकार्डों से उनके गान-कौशल का पता नहीं चलता। मुझे बम्बई आदि के लोग टोकते कि क्या आप उनके सुरीलेपन वगैरेह का बखान करते हैं! मैं उन्हें बताता अरे आप लोगों ने सुना नहीं उनको। उनकी आवाज खराब होने के बाद ही आपके सुनने में उनका गाना आया। मैंने उनको खूब सुना है। मैं जो कह रहा हूं उसका विश्वास कीजिए। मैंने कितना ही उनका मनोहारी गायन सुना है ।

हां, एक शख्स ऐसे मिले - माधवराव संत। उन्होंने कहा कि अण्णासाहब के जैसा 'मिनिएचर' बगीचा लगानेवाला गाना मैंने कहीं सुना ही नहीं। सभी किस्म के फूल उसमें रहते थे। मेरी यह समझ में नहीं आता कि आवाज खराब हो जाने पर उन्होंने रिकार्डिंग क्यों करवाया। मुझे वे रिकार्ड पसंद नहीं आए। उनकी वह आवाज बाद में रही नहीं, किस वजह से, मालूम नहीं। ऐसी बारीक ऐसी सुरीली आजाज। रागों पर प्रभुत्व तो गजब का। शिर्क्षक भी बड़े ऊँचे। इससे राग ज्ञान वगैरेह का सवाल ही नहीं था। वे 'परफार्मिंग' नहीं थे। यों बहुत-से पुराने संगीतकार 'परफार्मिंग' थे ही नहीं। महफिल आ गई तो सौ 'रन' बना देंगे। बड़े मैच में खेलनेवाले कम ही संख्या में थे। अण्णासाहब का पूरा जीवन विद्यादान में गया। वे महफिलों में 'नार्मल' रह ही न पाते थे। क्योंकि सुर ही नहीं रहा था। छोटू भैया, महफिल अपने में एक अलग चीज होती है !

गिंडे : सच है ।

कुमार : अच्छे-खासे गायक भी वहां 'आउट' हो जाते हैं। मंचपर सवार होकर गाना तो बहुत सारे चाहते हैं। लेकिन वहां बैठते ही पसीना छूटने लगे तो वे करें भी क्या ? हमारे बम्बई के 'स्कूल आफ इंडियन म्यूजिक' का एक दिलचस्प किस्सा सुनो। हमारे स्कूल में हर शनीचर को 'कन्सर्ट' होते थे। हमारे कई शिक्षक वगैरेह उसमें गाना पेश करते। जब वह सिखाने बैठते तो मानो संगीत के 'राक्षस' लगते। उनका गला यों घूमता था..... कहीं अटक जाना वगैरेह का नाम तक नहीं। लेकिन महफिल में बैठने पर पता नहीं क्या हो जाता था। छात्रों के सामने हमारे मास्टरसाहब देवधर, अपने अण्णासाहब बड़े भयानक लोग थे। बड़े ही उच्च कोटि के अध्यापक। हमें उनकी कीमत आंकना नहीं आता। शिष्य के लिए गुरु कैसी महान हस्ती होता है, इसका अनुमान औरों को नहीं हो सकता। लोग उस शब्द में 'गु और रु'- दो अक्षर ही देखते हैं। उनको मिलाकर नहीं देखते। यों आजकल के गुरुलोग तो 'महागुरू' हैं। ये बराए नाम गुरु रहते हैं। बहुत-से साधकों को सच्चे गुरु से साक्षात् भी नहीं होता है।

.... तो कह रहा था, अण्णासाहब अपने छात्रों को बेहिसाब प्यार करते थे। मैं बिलकुल खुले दिल से घोषित करता हूं, हमारे जमाने में उनके जैसा गुरु हुआ ही नहीं ।

गिंडे : कुमार को तो वे पुत्र की तरह प्यार करते थे। जब वह लखनऊ आता तब उसे देखे बिना अण्णासाहब को चैन ही न आता। और कुमार को भी उनसे मिले बिना चैन नहीं आता था ।

कुमार : हां, कुछ भी हो, मुझे वे बहुत चाहते थे ।

गिंडे : फिर आते ही तुम पूछते- क्यों अण्णासाहब नया क्या चल रहा है?

कुमार : वह तो बाद की चीज। लेकिन जबसे अण्णासाहब बंदिश रचने लगे तबसे मैंने उनकी बंदिशें गाई हैं। लखनऊ आता, बंदिश सीख लेता और सीधे रेड़ियो पै पेश करता ।

गिंडे : मैं सबको हमेशा बताता हूं कि अण्णासाहब की बंदिशों को लोगों के सम्मुख कुमारजी ही लाए । क्योंकि उस काल में हम सब वहां अध्यापक थे। और कुमार तो उस वक्त भी महफिली गवैया था। इसलिए इधर बंदिश सीखी कि उधर महफिल में गा दी, ऐसा उसका रवैया था ।

कुमार : यही नहीं, मेरे बंदिश को गाने में कोई भूल हो जाए तो वे पत्र लिखकर सूचित भी कर देते थे ।

गिंडे : मुझे याद है, बम्बई रेड़ियो पर सालगवराली सबसे पहले गानेवाले तुम ही थे ।

कुमार : हां हां, उनकी बहुत सारी बंदिशें मैंने गाई हैं ।

गिंडे : और वह मालवी राग का 'उठ नमन कर ले प्यारे' का जोड 'नमो नमो नारायणा....'

कुमार : और वह पंचम राग की बंदिश! हमारे गुरु जी को (प्रो. देवधर जी को) वह राग तो मालूम था। लेकिन अच्छी बंदिश कहां थी ? अण्णासाहब की इस बंदिश पर हमारे गुरुजी बहुत खुश हुए। जगन्नाथबुवा ने तो वह मुझसे सीख ही डाली। बोले, भैया कुमार, क्या ही खास बंदिश है ! लेकिन यह तो 'जोड़' की (द्रुत ख्याल की) बंदिश बन गई। अण्णासाहब से कहो न, विलंबित भी बना दीजिए। मैंने वैसा उनको सूचित किया। फिर जोड़ के साथ उन्होंने ख्याल भी बांधा - 'चंद्र जाके भाल विराजे।' ....तो कह रहा था कि अण्णासाहब का गाना मैंने खूब सुना है, और बड़ा अच्छा गाना सुना है; लखनऊ, बम्बई, ग्वालियर सब जगह सुना है। लेकिन एक बात यह भी थी कि उनका गाना बम्बई में सुनने और ग्वालियर में सुनने के बीच बड़ा अंतर था। ग्वालियर में माहौल ही दूसरा था। वहां राजाभैया सामने हाजिर रहते थे !

मैंने अभी कहा था न कि अण्णासाहब 'परफार्मिंग' कलाकार नहीं थे। तो उसका भी मैंने बंबई में अनुभव पाया है। बम्बई में म्यूजिक सर्कल में आग्रह करके अण्णासाहब की महफिल तय की गई। प्रोग्रामवाले पाप्यूलर गायकों की खोज में रहते ही हैं। तानपूरे वगैरेह मिल गए। बंदिश भी बढ़िया पेश हुई। मगर पता नहीं क्या हुआ, उस दिन महफिल जमने का नाम नहीं

ले रही। मुझे मन ही मन बड़ा रंज हुआ। फिर वहां श्रोताओं में हमेशा के परिचित लोग भी कोई नहीं थे। इसलिए मैं हमेशा कहा करता हूं कि महफिल में दाद देनेवाले सामने रहने चाहिए । ... यह जो 'परफार्मिंग' वाला शब्द हमारी तरफ आया है न, वह पहले यहां नहीं था । कला का प्रदर्शन परिचितों की सीमित मंडली में हुआ करता था। याने कॉलेज के ग्राऊंड पर ही क्रिकेट होता था - टेस्ट मैच था ही नहीं। अब सिर्फ टेस्ट मैच ही चलता है ।

हमारे जगन्नाथबुवा को ले लो। और मौकों पर खूब बातें करते, किंतु...! स्वतंत्र भारत में कैनवास इतना बड़ा भारी हो गया है कि तुम्हें क्या आता है इसकी कोई कीमत नहीं, तुम लोगों को उल्लू बनाने में, और अपने अंदर ताकत होनेपर भी तुम उल्लू बनाने की कला में कितने माहिर हो, इसीपर तुम्हारा बड़प्पन आंका जाता है। क्योंकि रुचि बहुत बढ़ गई है। इसे मैं बुरा नहीं कहता। क्योंकि पहले वही वही लोग संगीत सुना करते थे। वे सभी प्राय: पहचान के ही रहते थे। यह हमारा, वह भी हमारा। उसमें कुछ परदा नहीं रहता था। शुरू से ही हम उनके और वे हमारे। पसंद आने की बात ही नहीं थी। हमने तो बुरे से बुरे लोगों का गायन मन लगाकर सुना है और वे भी मन लगाकर गाए हैं। पहलेवाले गवैये लोग आज के इस नए जमाने में कहांतक फिट हो सकेंगे, कहना मुश्किल है। उस जमाने में उनके गुणों को ध्यान में रखकर हम लोग सुनते थे। अब विलायत हुसेनखां का गाना है, तो उसके अंदर होनेवाले गुणों को देखकर ही तो उसे सुनना होगा। जगन्नाथबुवा पुरोहित का गाना एक हजार लोगों के सामने न जमता हो, पर वे क्या बताना चाहते हैं, उसे हम लोगों को सुनना चाहिए। पं. वझेबुवा का गाना आज के श्रोता सुनेंगे तो उन्हें वह पसंद नहीं आएगा ।

गिंडे : तुम बाम्बे सर्कल के प्रोग्राम की यादगार....

कुमार : हां तो प्रोग्राम में अण्णासाहब गाने के लिए बैठे। हमारे सब जाने-पहचाने संगीतकार सामने बैठे थे। तानपूरे पर भट था। लेकिन हमेशा की तरह कुछ बन नहीं रहा था। माईक भी नहीं था। लोग इधर उधर करने लगे। आज माईक की वजह से क्या होता है कि चींटी भी हाथी की तरह नजर आती है। यह उसका एक लाभ है। सामनेवालों पर आवाज का 'इंप्रेशन' हो जाता है। उसकी फेंक हो जाती है। बहुत जरूरी बातें हैं सब। तो मुझे उस वक्त का वह सब नागवार लगने लगा। कुछ गड़बड़ी ही महसूस होने लगी। मुझसे रहा नहीं गया। फिर मैं तानपूरे पर जा बैठा। तब महफिल कुछ संभल गई ।

बात यह है कि बम्बई ने, महाराष्ट्र ने अण्णासाहब की योग्यता को पहचाना नहीं। रातंजनकर क्या थे, उन्होंने जाना ही नहीं ।

गिंडे : उनकी बंदिशों के बारे में तुम्हारा अनुभव....

कुमार : बेशक उनकी बंदिशें बहुत ऊँचे स्तर की हैं। उनकी बहुत सारी बंदिशें मेरे पास हैं। उन्होंने शुरू में जो बंदिशें बनाईं वह पुस्तक बनाने के लिए नहीं बनाईं। उसके बाद उन्होंने जो बंदिशें रचीं वह एक दूसरे तकाजे से रचीं। क्योंकि केवल कोरा राग प्रचार में नहीं आ सकता। उसके लिए कोई देह चाहिए। वे सारी बंदिशें तुम लोगों को आती हैं, उनकी ओर मैंने ज्यादा ध्यान नहीं दिया है। शुरूवाली बंदिशों में अंतरे की फेंक वगैरेह का जो सौंदर्य

था वह.... याने उनका वजन भारी ही रहेगा ।

उनकी एकदम पुरानी बंदिश 'होवन लागी सांझ' पूर्व कल्याण की। ...बहुत पुरानी। हमारे गुरुजी (देवधर साहब) तक को, किराना घरानेवालों तक को मालूम नहीं था कि यह अण्णासाहब की रची है। बहुत बाद को उन्हें इसका पता चला। आगे वह भातखंडे जी के हिंदुस्थानी संगीत पद्धति के पांचवें-छठे भाग में आई है। और पुस्तक में आ जानेपर भी सब यही समझते थे कि भातखंडे जी के पारंपरिक संग्रह से वह आई है। उस जमाने में संगीतकार लोग बंदिश रचने के बाद यह नहीं बताते थे कि यह मेरी बंदिश है। क्योंकि परंपरा से आई पुरानी बंदिशों को ही मान्यता थी। फिर वह भले ही खरा न क्यों न हो। इसलिए अण्णासाहब, अल्लादियाखां, जगन्नाथबुवा कोई भी हो वे अपनी ओर से बताते नहीं थे कि बंदिश मेरी है। अब 'प्रेम प्रिया' की वजह से फैयाजखांसाहब की बंदिश का पता चलता था। लेकिन उन्हें जो पहली मान्यता मिली वह गायक की हैसियत से ही। सच है न !

गिंडे : हां, बिलकुल दुरुस्त है ।

कुमार : इसीलिए उनकी बंदिशें जल्द ही रसिकप्रिय हुईं। अब जयजयवंती की 'मोरे मंदिर अब लौं'। यह कोई बंदिश है? लेकिन वे गाते थे, इसलिए वह 'पाप्यूलर' हुई। इससे बढ़िया बंदिशें भातखंडेजी के ग्रंथों में हैं। यह मैं इसलिए बता रहा हूं कि यह बंदिश यू. पी. में इतनी 'पाप्यूलर' हो गई कि 'मेरे मंदिर' और जयजयवंती की जोड़ी ही जम गई ।....

अण्णासाहब की बंदिशों पर मैं लट्टू था। फिर आगे उनके फुर्ती के दिनों में उनसे मेरी मुलाकात ज्यादा नहीं हो पाई। बाद में जब मैं बीमार, बेड़ पर पड़ा था, वे और राजाभैय्या आ के गए थे। वह उनके प्रेम की बात है। उनकी पंचम राग की 'आओ गाओ रे गाओ रिझाओ' कैसी बढ़िया बंदिश है! और वृंदावनी का तराना! यार, क्या फेंक है उसकी! ऐसा तराना बहुत कम लोगों ने बांधा। और उस मुश्किल तराने को वे बेहद सहजता से गाते। आवाज पतली थी उनकी। बहुत सुंदर आवाज। थोड़ी सी नक्की थी जरूर, मगर पतली और मीठी। उनके उस्ताद फैयाजखां की तुलना में इनकी आवाज लघुरूप-मिनिएचर थी। इसलिए उनकी गायकी सोलहो आने खांसाहब जैसी नहीं लगती थी। फैयाजखां साहब का मामला ब्रॉड गेज का था। इनकी आवाज 'नैरो' गेज थी। और ब्रॉड गेज की अपेक्षा 'नैरो' गेज में सुविधाएं ज्यादा रहती हैं !

सत्यशील : फिर अण्णासाहब जो कुछ गाए उसमें भातखंडेजी का योगदान कितना माना जाए ?

कुमार : ज्ञान! फैयाजखां की अपेक्षा भातखंडेजी के पास ज्ञान असीम था। वह तो दुनिया को सुनके बैठे थे। लेकिन उनके जमाने में फैयाजखां लोकप्रिय गायक थे। और इस कलाकार को मुझे 'सरेंडर' होना चाहिए, यह भान भातखंडे साहब को बखूबी था। इसलिए तालीम के वास्ते अण्णासाहब को उन्होंने उस्ताद के पास भेज दिया। तालीम के लिए महफिल का गायक चाहिए। भातखंडेजी को गायक के रूप में मान्यता नहीं थी, उस वक्त। ज्ञानी लोग जमाने की करवट को पहचानते हैं, हम लोग नहीं पहचानते। तो बात यह कि फैयाजखां और भातखंडेजी की तुलना निरर्थक है। मैं समझ नहीं पाता कि उस जमाने में कलाकार भातखंडेजी

से डरते क्यों थे ? भातखंडे खुद सब समझते थे किंतु दिखलाते नहीं थे। उन्होंने किसी भी कलाकार को बुरा नहीं कहा। उन सबसे उन्हें कुछ न कुछ लेना था। तुम कहते हो वह भी सही और भैया तुम कहते हो वह भी ठीक। क्योंकि मुझे इन सब जनों से कुछ लेना है, मुझे विद्या का संग्रह करना है। वह कहीं से भी मिले ।

सत्यशील : और यह विद्या लेकर फिर उन्हींको लौटानी है.....

कुमार : ना ना, फिर से कहता हूं, उन्हें समझाने के लिए उन्होंने यह विद्या संग्रहीत नहीं की। हुआ यह कि जिनके पास यह विद्या नहीं जानी चाहिए उनके हाथ में वह चली गई थी। योग्यताहीन लोगों के हाथ में राज-कारोबार जाए तो कैसी हालत हो जाती है ! संगीत में ऐसा ही हुआ था। अनधिकारी लोगों के हाथ में विद्या गई थी। आजकल राजकाज में जो चल रहा वह सब हमारे संगीत में भी उस जमाने में गुजर चुका है ।

सब बातों को भली भाँति जानकर संगीत की शकल को बनानेवाले कोई रहे ही नहीं थे। संगीत में शिक्षा नाम का कोई चीज बची नहीं थी। सिर्फ सुन-सुनकर शागिर्द लोग गायक बनने लगे थे। ऐसी हालत में ज्ञान को जमा करना याने घूरे से मोती.....

गिंडे : समुद्र मंथन जैसा वह कार्य था ।

कुमार : यह बहुत अच्छा शब्द है। मैंने घूरे का उदाहरण सोचकर दिया। लेकिन बात यह नहीं कि यह शोध हमारी पहलेवाली पीढ़ी में ही हुई या भातखंडे जी ने ही की। पहले विजयनगर तथा और जगह १,००० वर्ष पहले ऐसा काम हुआ है। क्योंकि यह एक 'रिंग' है, एक वर्तुल है। एक जमाना ऐसा आता है कि बहुत-से साधक पैदा होते हैं, वे ऐसी ऊंचाई तक पहुंचते हैं, कि नीचे देखने के लिए तैयार ही नहीं रहते। और फिर वे अंतर्धान हो जाते हैं। आजकल कुछ ऐसी ही परिस्थिति से हम गुजर रहे हैं। अब लगाम किसके हाथ में दी जाए, यह एक समस्या है। लगाम हटा लें तो घोड़ा तो दौड़ेगा ही। मगर कहां जाएगा इसका क्या भरोसा ?

हमने गुरुवर की प्रेरणा से भातखंडे जी की बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं। उनकी क्रमिक पुस्तकें न सही लेकिन उनकी 'थ्योरी' वगैरह सब पढ़ा है। क्योंकि फिलहाल अपने भारत में उनके सिवा संगीत में नई स्थापनाएं वगैरह कहीं कुछ नहीं है। उन्होंने तो सब लिखके रखा है— मैंने क्या किया, क्या नहीं कर सका, और क्या क्या करना जरूरी है, सब उन्होंने लिखके रखा है। उनका कहना है कि जितना मुझे मिला, जितना मैं कर सका वह मैंने किया है। यह दावा नहीं कि सब कुछ किया। तुम लोग मुझे 'क्रिटिसाइज' कर सकते हो। न करो ऐसा मैंने कभी नहीं कहा। क्योंकि उसके बिना हम तरक्की कर ही नहीं पाएंगे। अब आगे क्या क्या करना चाहिए इसके लिए उन्होंने 'पॉइंटस्' दिए हैं। एक आदमी अपनी एक जिंदगी में कितना क्या कर सकेगा ? ढेर सारा कचरा पड़ा है। एक फावड़े से कितना उलीच सकेंगे आप ? आदमी बहुत चाहिए। यहां आदमी भी नहीं और फावड़े भी नहीं। कितना कचरा अपने सिर पर उठाएं और फेंक दें!

आज तो भातखंडे जी के वे 'पॉइंटस्' भी कोई नहीं पढ़ते। सिर्फ 'भातखंडे भातखंडे'

कहकर नाचते हैं। उनके कार्य के बारे में कोई कुछ नहीं कहता। अब तुम्हें अपनी दूकान चलाने के लिए बंदिशें चाहिए। सिखानेके लिए सामग्री चाहिए तो अब तुम्हें उनकी जरूरत पड़ी। जब वे मौजूद थे तब चार रुपये में एक पुस्तक मिलती थी। किसीने नहीं खरीदी। वे खुद ही दे देते। वे सब कुछ जानते थे। कहा करते कि मेरे जाने के बाद सब मुझे सर पर चढ़ा लेंगे। जो 'मिशनरी' होते हैं न उन्हें पूरा ज्ञात रहता है कि किसीको कुछ मालूमात नहीं हैं। कोई होश पर नहीं। सब 'हिप्नोटाइज' हुए-से बेखबर हैं। तो मैं जो काम कर रहा हूं, उसे ये समझ ही नहीं पाएंगे। भातखंडेसाहब यह भी जानते थे कि ये बड़े बड़े कलाकार मुझे मानते नहीं हैं ।

और सबसे ज्यादा 'ऑपोजिशन' विष्णु दिगंबर और भातखंडेजी को महाराष्ट्र में ही हुआ है। मैं महाराष्ट्र पर दोषारोप नहीं कर रहा हूं। एक एक जमाने का रवैया रहता है। करनेवाला अच्छी तरह जानता है कि लोगों की कोरी 'वाहवा' से कुछ नहीं होता। लेकिन भातखंडेजी को मित्र मिले। दत्तात्रय केशव जोशीजी ने उनका साथ दिया। एक आदमी भी ऐसे वक्त पूरा लगता है। 'मैं क्या कर रहा हूं' इसे दूसरा कोई देखे, इस दृष्टि से उस साथी की सहायता होती है। बाद में लोगों को उनकी कीमत का भान हुआ। मैं बचपन में जो बंदिशें गाता था, वह बड़े बड़े गायकों को भी नहीं आती थीं। उनका नाम बताना ठीक नहीं।

गिंडे : उस काल में लोगों का ज्ञान बहुत सीमित था।.....

कुमार : बहुत ही सीमित। अच्छे गायक बहुत थे। हमारे गुरुवर की एक खास बात थी। रेडियो पर एक बार गाया हुआ राग 'रिपीट' नहीं करते थे। जब तक रेडियो पर गाते रहे, तब तक हर वक्त नया राग। लेकिन बंदिश तो मिलनी चाहिए। उसकी बड़ी समस्या रहती थी।

मेरे बारे में क्या हुआ कि हमारे गुरुवर तो थे ही। किंतु अण्णासाहब, राजाभैय्या, जगन्नाथबुवा और भी कोई थे, सब हमारे गुरु ही थे। ढेर सारे गुरुजन! अंजलीबाई मालपेकर, वि.रा. आठवले सब प्रतीक्षा में ही रहते थे- कब मौका मिले और हम कुमा को सिखाएं!

सत्यशील- अण्णासाहब के साथ आपका कुछ आदान-प्रदान होता था क्या? याने आपका गाना वगैरे....

कुमार- मेरे साथ वे हमेशा बातचीत करते। संगीतकारों का मेरी तरफ देखने का दृष्टिकोण कुछ अलग ही रहा है। उनके पास इल्म लेकिन भुनानेवालों में मैं नहीं था। तो संगीत पर अण्णासाहब हमेशा मेरे साथ बात करते। इसी प्रकार गोविंदराव टेंबेजी मुझे बहुत चाहते थे। मुझे वे १९३४ से देखते आए थे। मुझे बराबर सुनते। मुझे फरमाइश करते। घुटने में दर्द होनेपर भी जीना चढ़ के आए हैं, मेरा गाना सुनने। बोले कोई बंदिश सुनाओ। मेरे अभिनंदन कार्यक्रम में १९५४ में अध्यक्ष थे। पैर में दर्द था, सो पूरा समय बैठनेवाले नहीं थे। फिर भी आए। १० मिनट भाषण दिया और मुझे बताकर गए। उनका भी मेरे बारे में मत अलग था। वे सबको बताते, तुम सब उसके जैसा करो। अण्णासाहब का स्वभाव भी ऐसा ही खुला था। रागों-बंदिशों के बारे में उनसे हमेशा चर्चाएं होती थीं। वे तो गुरुस्थान में थे, सो वे जो भी कहें सब मंजूर

ही था। वह हस्ती क्या थी, यह हमको गुरुजी से मालूम हो चुका था, उनके इल्म के बारे में संदेह उठने का सवाल ही नहीं था- बिलकुल नहीं।

सत्यशील- रागों के बर्ताव के बारे में वे कुछ बताते होंगे।...

कुमार- उसकी जरूरत ही नहीं थी। वह सब 'प्रॅक्टिकल' जो था। उनका गायन सुनने से वह समझ में आता था। वह गाकर सुनाते और मुझे वह तुरंत आ जाता। लखनऊ में उनकी क्लास में भी मैं बैठा हूं। मुझे उनका 'फुल परमिशन' था। मैं उनकी क्लास का मेंबर तो नहीं था, फिर भी वे मुझे सिखाते। वह शिक्षा का तरीका आज के जैसा नहीं था। बहुत भली प्रकार वे सिखाते। वह कक्षा बहुत ऊँचे छात्रों की रहती थी।

सत्यशील : आपकी राय में भातखंडे जी के बाद अण्णासाहब का योगदान क्या है?

कुमार : उनकी बंदिशें! उन्होंने इतनी पुस्तकें बनाई हैं - तुम्हें और क्या योगदान चाहिए? अगली पीढ़ी को रागों के रूप भली भांति ज्ञात हो जाएं, इसलिए उन्होंने बंदिशें बनाईं। अब वह उच्च स्तर की हैं या निम्न स्तर की, इसे तुम लोग तय करो। लेकिन राग का प्रयोग उससे तुम कर सकते हो। ऐसे प्रयोग भातखंडेजी ने भी किए हैं। और ऐसा करना जरूरी होता है। क्योंकि हमारे पास उतना वक्त नहीं रहता। जैसे अभोगी की वह बंदिश- 'चरन धर आयो।' 'राग कल्पद्रुम' में ये शब्द भीमपलास की रचना में हैं। बड़े अण्णासाहब याने भातखंडेजी को वे शब्द जंचे। जंचे का मतलब यह कि उन्हें झपताल के लिए एक छंद की जरूरत थी, अभोगी को प्रचार में लाने के लिए। किराना घराने के लोग उस बंदिश पर अपना हक बताते हैं। अब इसके लिए कोई क्या करे?

सत्यशील : फिर यह उन्हें कहां मिला?

कुमार : राग यात्रा कर सकते हैं। शब्द कोई भी हो, कैसे भी हों, रागों का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। अनजाने में कई सदियों में रागों ने ऐसी यात्रा की है। राग-रूप अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। तुम उसपर दवा छिड़को या और कुछ करो, उसका रूप बिगड़ता नहीं। तुम्हारा कवित्व कितना भी सुंदर रहे, राग बिगड़ जाए तो उस कवित्व को लेकर क्या करोगे? संगीत की शर्त क्या है? राग-रूप। तुम्हारा गाना जबतक राग को पकड़कर होता है, तबतक राग कुछ विरोध नहीं करता। फिर उस स्वरावली में तुम काका, मामा कुछ भी कहो। उससे उसे लेना-देना नहीं। इस लिहाज से भूपाली की यात्रा चल रही है। तुम बंदिश का अर्थ समझकर गाओ या न गाओ। उसका रूप साबित ही रहा है।

गिंडे : लेकिन भूपाली के सिर्फ स्वर दिखाएंगे तो भूपाली अपना अस्तित्व प्रकट नहीं करती।

कुमार : सही बात। उसका रूप कायम रखना होगा। रूप समरूप होना चाहिए। उसके रूप को न बिगाड़ते हुए तुम कुछ भी करो। इसीलिए तो लोगों की अभोगी के गायन में सहूलियत हो, इसीलिए उसका एक ढांचा भातखंडेजी ने बना दिया। अगर हम ही न हों तो सिर्फ आत्मा की क्या कीमत? कितने बदसूरत शरीरों के सामने हम सिर नवाते हैं। देवी-देवताओं की शकलें कितनी खराब होती हैं! हमें उसके देवत्व का अहसास होता है, इसीलिए वे इतनी सुंदर लगती हैं। अपने महात्मा गांधी, विनोबा कहां सुंदर थे? लेकिन कितने ऊंचे थे वे! वैसे ही राग-रूप

अपने में बड़ा रहता है। शरीर की कीमत कुछ नहीं। हां, अगर शरीर भी सुंदर हो तो सोने में सुगंध। तो अण्णासाहब हमारी पीढ़ी के बहुत बड़े संगीतकार और विद्वान थे। प्रेरणा देनेवाले थे। उन्होंने अपने प्रत्येक शिष्य को उसकी बुद्धिमत्ता के मुताबिक बढ़ने का अवसर दिया। कैसा प्यार दिया है उन्होंने मुझे!

एक बार मैंने जगन्नाथबुवा का एक तराना सुना। मैंने सोचा राजाभैय्या के यहां जाकर इसे सीख लिया जाए। उनसे पूछा तो उन्होंने कहा कि वह पुस्तक में है। मैंने कहा फिर भी आप मुझे सिखाइए। याने उनकी ईमानदारी देखिए। उन्हें ऐसा नहीं लगा कि पुस्तकवाली बात छिपाई जाए। सरस्वती राग बाळाभाऊ उमड़ेकर वगैरह सभी गाते-बजाते थे, पर बताते कुछ नहीं थे। जिन्हें मालूम था उन्होंने भी नहीं बताया, इसका मुझे बहुत गुस्सा आता है। ऐसी बातें आज के जमाने में नहीं चलनी चाहिए।

गिंडे : इधर कुछ लोग राजाभैय्या को ग्वालियर का गायक मानते ही नहीं।

कुमार : कहनेवाले कहा करें। जाननेवाले जान लेते हैं। यह नहीं कि वे लोग नहीं जानते। सब जानते हैं। मगर वह कुछ बहलानेवाली बात की खोज में रहते हैं। हम कोई बात कहेंगे तो चार लोग सुननेवाले निकलेंगे ही। वे ऐसा सोचते हैं। बीच बीच में चोरी करो, जिससे पुलिस थाने में जाने का मौका मिलता है। हमेशा सभ्य समाज में रहना नहीं चाहिए। कुछ ऐसा ही रवैया उनका रहता होगा।

राजाभैय्या भी क्या बंदिशें गाते-सजाते थे। लेकिन पुराने लोगों को सुनाकर उनसे 'वाहवा' लेने की दिलचस्पी उनमें नहीं थी। २-४ बंदिशें गा दीं और फिर गुटका फांकने को तैयार! हमारे इंदौर के केशवराव आपटे कभी इस झमेले में नहीं फंसे। आम गायकों की तुलना में देखें तो कभी लगता ही नहीं था, कि ये गानेवाले हैं। कहते हैं कि भास्करबुवा का ढंग भी कुछ ऐसा ही था। उनका हुलिया देखकर लगता था कि अभी अभी साड़ियां बेचकर आए हैं। लेकिन दो तानपूरों के बीच बैठेंगे तो ऐसी की तैसी कर देनेवाले! बड़प्पन का गरूर उनमें कहीं था ही नहीं।

अंजनीबाई भी मेरी गुरु ही रहीं। भातखंडेसाहब का उन्हें कितना अभिमान! उनके बारे में बहुत बताया करतीं। यही बात वझेबुवासाहब की भी थी। माईजी (अंजनीबाई) की महफिल में हाजिर होने का अवसर मिलना याने उन्हें अपना गौरव लगता था। उनके पास के तबक को मैं ही हाथ लगा सकता था; उनका बेटा भी नहीं। तो अण्णासाहब जब बम्बई आते तो किसीसे मिलना, गपशप करना वगैरेह में रस नहीं लेते थे। क्योंकि वे छुट्टी पर आया करते थे। वह बम्बई का काल कुछ अलग ही था। आग्रावाले, जयपुरवाले ऐसा 'जातिवाद' काफी था। ऐसी बातों से अपने कामों में बाधा पैदा होती है, यह सोचकर वे ऐसे मामलों में दखल नहीं देते थे। और उन्हें जरूरत भी नहीं थी। उन्हें कभी महफिल जीतने जाना नहीं था। किसीकी दखलअंदाजी उन्हें पसंद नहीं थी। लखनऊ में भरपूर छात्र थे। उनपर अपार स्नेह रखनेवाले लोग थे। और क्या चाहिए? इतना सब मिलने पर भी लोग उसका लाभ नहीं उठाते।

.... छोटू, तुम आज आए। अण्णासाहब के बारे में बहुत-सी पुरानी बातों को उजाला मिला।

गिंडे : हां, उनके लिए जैसे हम थे वैसे ही तुम भी।

कुमार : बेशक, इसमें दो राय नहीं । वे मुझे कुमारप्पा कहते थे । मैं कन्नड़िग था न ।

गिंडे : इधर के लोगों को उनके बारे में मालूमात ही कम हैं। तुम जैसे व्यक्ति से कुछ सुनने को मिले तो उसकी पूर्ति होगी; यह हमारा उद्देश्य था।

कुमार : अब भी लोग पूछते हैं । परसों ही ललिता राव बोलीं "अण्णासाहेब की बंदिश गाकर सुनाइए।"

गिंडे : जब मैं चंदनवाडी में अण्णासाहब की अंत्येष्टि में गया था, तब वहां तुम भी थे। लोगों ने तुम्हारे सामने माइक रखा। तुम बोले कुछ नहीं। पुणे में महफिल थी। तुमने उस दिन सारी महफिल अण्णासाहब की बंदिशें गाकर ही श्रद्धांजली के तौर पर पेश की।

कुमार : हां, हां, वैसा ही हुआ। दो ही दिन पहले कलकत्ते में अमीरखां चल बसे थे।

मैं उन दिनों इत्तेफाक से बंबई में था। अण्णासाहब तब जोगेश्वरी में रहने गए थे। वे सायन को 'वल्लभ संगीतालय' में जाते थे। मुझे यह मालूम नहीं था। मैंने उन्हें बस स्टॉप पर आम आदमी की तरह खड़े देखा। मैं रुक गया, उनसे बात की। जब आगे बढ़ा तो मुझे रोना आया। मन में कहा- "ऐसी हस्ती को बस से जाने की नौबत आ गई!" उनके बारे में जो गुजरा उसे सोचकर मन बेचैन हो उठता है। जिंदगीभर सबको विद्यादान करते रहे - बदले में कुछ भी नहीं लेकर। ऐसी महान आत्मा!

म	म	प	म	रे ग	ग	रे	सा	सा	रे	ग	ग	म	–	म	–
बि	न	क	र	त	ब	क	स	जी	ऽ	व	न	ते	ऽ	रो	ऽ
×				०				×				०			

गुणनिधान गुणवंत

डॉ. वसंतराव राजोपाध्ये

प	प	प	प	ध	सां	-	सां	नि	-	नि	(नि)	प	ध	प	-
न	र	त	न	अ	मो	ऽ	ल	पा	ऽ	यो	ऽ	ज	ग	मों	ऽ
×				०				×				०			

(ग्वालियर घराने के बुजुर्ग गायक, मान्यवर संगीतवेत्ता, रचनाकार, संगठन-कुशल कार्यकर्ता। विष्णु दिगंबर के शिष्य पं. नारायणराव व्यास से तालीम प्राप्त। संगीत-प्रसार एवं संगीत शिक्षा के लिए समर्पित। संगीतविषयक ग्रंथ एवं लेख प्रकाशित।)

कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो पहली ही मुलाकात में कुतूहल पैदा कर देते हैं। पचपन छप्पन वर्ष पहले की यह स्मृति है। मेरे पास तबला सीखने के लिए आनेवाले कारवारी विद्यार्थी ने एक रविवार को प्रात: अपने मित्र के गाने के एक कार्यक्रम में मुझे आमंत्रित किया। हिंदू कॉलनी में, व्हिन्सेंट स्क्वेअर की एक इमारत में पहली मंजिल के एक ब्लॉक में मैं पहुँच गया। इने-गिने रसिक वहां इकट्ठा हो गए थे। गानेवाला व्यक्ति मेरे लिए अपरिचित था। साँवले वर्ण का, छरहरे बदन का यह व्यक्ति गायन के मंच पर विराजमान था। बैठक दस बजे शुरू हुई। गानेवाले ने देशी और कुछ अप्रसिद्ध राग सुनाए। मुझे यह गायन-शैली अलग प्रतीत हुई और इस गायक के विषय में मेरे मन में कुतूहल पैदा हुआ।

उस समय मैं हिन्दू कॉलनी में ही रहता था और संगीत का अभ्यास करते हुए संगीत में तैर रहा था। अभी मुझे काफी मंजिलें तय करनी थीं। संगीत-विद्या के कण-कण मैं संग्रह कर रहा था। उन दिनों की उक्त बैठक मुझे आज भी याद है।

पता चला कि गायक व्यक्ति श्रीकृष्ण ऊर्फ एस्.एन्. रातंजनकर थे। साथ ही यह भी मालूम हुआ कि वे लखनऊ के मैरिस म्युझिक कॉलेज के प्रिन्सिपल हैं। उनका वास्तव्य लखनऊ में ही है, किन्तु कभी कभी वे बंबई आया करते हैं। चूँकि रातंजनकर के मंडल से मेरा संबंध नहीं आया, मैं रातंजनकरजी से निकट संपर्क स्थापित नहीं कर सका।

सन १९३२ के अनंतर दस-पंद्रह वर्षों में, जब संगीत-संगोष्ठियों की सर्वत्र धूम मच गई थी, उनमें भाग लेने के लिए पं. नारायणराव व्यास, पं. विनायकराव पटवर्धन हमेशा जाया करते थे। उनकी बातों में श्री रातंजनकरजी का जिक्र चलता था। पं. रातंजनकरजी पं. भातखंडेजी

के पट्टशिष्य थे और सर्वश्री व्यास, पटवर्धन आदि पं. विष्णु दिगंबरजी के शिष्य थे। इन दो संगीतप्रवाह के संप्रदायों में एक प्रकार की होड़ लगी रहती थी, ईर्ष्या का भाव विद्यमान रहता था। हरएक को अपनी संगीत-पद्धति पर अभिमान भी हुआ करता था। लगता था कि ये दोनों प्रवाह अलग अलग बह रहे हैं और उनके शिष्यों में निकटता नहीं है। मेरे मन में यह तीव्र इच्छा जाग उठी कि संगीत-कला के प्रति समर्पित व्यक्तित्ववाले एवं विद्यादान करके भावी गायकों की पीढ़ी का निर्माण करनेवाले श्री रातंजनकर जी से मेरी पहली पहचान हो जाए। उनके इने-गिने गाने ही सुननेका मौका मुझे प्राप्त हुआ। कित्ते भंडारी हॉल का उनका उच्च कोटि का गायन और स्व. चिदानंद नगरकरजी का तबलची के साथ आत्मविश्वासपूर्वक किया हुआ संवाद आज भी ज्यों का त्यों मेरी आँखों के सामने हैं।

आदत जिगर हिसाब

दिन गुजरते जा रहे थे। मैं भी संगीत में प्रगति कर रहा था। 'गांधर्व महाविद्यालय मंडल' में काम करते करते मैं मंत्री एवं परीक्षा-विभाग प्रमुख बन गया। हमारी परीक्षाएँ आरंभ होनेसे पहले विदर्भ में 'भातखंडे-मैरिस कॉलेज' की परीक्षाएं हुआ करती थीं। मुझे अपने विदर्भ के कार्य में इस बात की प्रतीति हुई कि उक्त परीक्षाओं का तथा परीक्षक की हैसियत से पं. रातंजनकरजी का बहुत बड़ा आतंक सब पर छाया रहता था और साथ ही श्री रातंजनकर के प्रति भीतियुक्त आदर भी सब को महसूस होता था। इसलिए मुझे इस बात का भी एहसास हुआ कि ऐसे व्यक्ति से मुझे पहचान अवश्य कर लेनी चाहिए।

मैं गांधर्व महाविद्यालय से संबद्ध था तो श्री रातंजनकरजी भातखंडे परंपरा के थे। उनकी तुलना में मैं सब दृष्टि से 'छोटा' था। इसलिए मुझे आशंका थी कि यदि मैं उनसे मिलने जाऊं तो उनके यहाँ मेरा स्वागत कैसे होगा। श्री रातंजनकरजी से भेंट होने का एक अवसर दिल्ली के 'गांधर्व महाविद्यालय' में उपस्थित हुआ। वहां उनका 'आदत जिगर हिसाब' विषय पर एक व्याख्यान हुआ। उनके व्याख्यान से मैं भावविभोर हो गया। अत्यंत आसान भाषा में, धारावाही शैली में उन्होंने व्याख्यान के विषय का सोदाहरण प्रतिपादन किया। मुझे मन ही मन लगा कि यह व्याख्यान बंबई के विद्यार्थियों को सुनाया जाना चाहिए। उस समय मैंने श्री रातंजनकरजी से परिचय भी प्राप्त कर लिया। हमारे 'व्यास संगीत विद्यालय' का काम और अपनी ट्यूशन्स की वजह से मैं प्राय: बंबई से बाहर नहीं जा सकता था। अत: ऐसे ही जब दिल्ली गया था, उस वक्त रातंजनकरजी से भेंट होना एक संयोग की बात माननी चाहिए।

व्याख्यान का विषय मस्तिष्क से हटता नहीं था। पं. रातंजनकरजी भाषण देने आएंगे या नहीं इस बारे में संदेह था। आखिर एक मौके का फायदा उठाने का विचार मैंने किया। हमारे 'व्यास विद्यालय' की ओर से हम पलुसकर और भातखंडे की पुण्यतिथियों के निमित्त स्वर-श्रद्धांजलि समर्पित करने का उपक्रम चलाया करते हैं। एक बार भातखण्डे पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में मैंने उनसे प्रमुख अतिथि के रूप में आकर आदत जिगर हिसाब' विषय पर व्याख्यान देने की प्रार्थना की। 'गुरुजी' हरएक छात्र का विक पॉइंट होता है - श्रीरातंजनकरजी ने आना स्वीकार किया, आकर व्याख्यान भी दिया। व्याख्यान के पूर्व पं. भातखंडेजी की प्रतिमा को पुष्पहार पहनाकर उन्होंने अपने व्याख्यान में प्रतिपादित किया कि "भातखंडेजी केवल शास्त्रज्ञ नहीं थे, बल्कि उत्कृष्ट रूप में गायन भी करते थे, जो बात उनके ग्रंथ में लिखित राग-विस्तार

से प्रमाणित होती है। शास्त्र में अपना लक्ष्य केंद्रित करनेके कारण उन्हें महफिलें जमाने के लिए अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ।'' उनके इस कथन का परिणाम यह हुआ कि श्री भातखंडेजी के बारे में विद्यार्थियों के मन में स्थित अज्ञानमूलक पूर्वाग्रह दूर होने में मदद मिल गई।

इस व्याख्यान के फलस्वरूप मैं श्री रातंजनकरजी के निकट संपर्क में आया। आगे चलकर 'संगीत नाटक अकादमी' पर मेरी नियुक्ति के पश्चात् वहां की सभाओं में वह अधिक दृढ़ हो गया। वे जब जब बंबई आते, राघवजी रोड़ के उनके निवास-स्थान पर मैं उनसे मिलने जाता।

लोगों में रातंजनकरजी को लेकर बहुत ही गलत धारणाएं हैं। जैसे- वे मिलनसार नहीं हैं, वृथा अभिमानी हैं, इ.। अपनी प्रकांड विद्या पर उन्हें पूर्ण अभिमान है। शास्त्र, कला, संगीत-रचना, संस्कृत आदि में वे पारंगत हैं। कर्नाटक संगीत का भी उनका अध्ययन है। उन्होंने अपने कुछ वर्णन हिन्दुस्तानी संगीत के लिए रचे हैं। ये सब बातें ऐसी हैं जिनपर हमें अभिमान होना चाहिए। उनकी अभिमानी वृत्ति की ओर दोषैक दृष्टि से देखा गया। तिसपर आकाशवाणी की श्रवण-कसौटी की बाबत उन्हें बड़ी यंत्रणा से होकर गुजरना पड़ा, अनेक लोगों के रोष का शिकार बनना पड़ा। कुल मिलाकर वह सब मामला सब के लिए तापदायक ही सिद्ध हुआ। किन्तु यह लक्षणीय है कि पं. रातंजनकरजी ने श्रवण-कसौटी का अपना काम बिना लोगों के विरोध की ओर ध्यान दिए, पूरी निष्ठा के साथ संपन्न किया।

श्रुतियों के मर्मज्ञ

लखनऊ के मैरिस कॉलेज का भातखंडे विद्यापीठ में रूपांतर, सर्वश्री गिंडे, भट, नगरकर, दंताळे, कायकिणी जैसे शिष्यों का निर्माण, संगीतविषयक 'लक्ष्य संगीत' पत्रिका, बंदिशों की 'अभिनव राग मंजरी' शीर्षक पुस्तकें आदि उनके अनेकविध कार्यों के गौरव के उपलक्ष्य में 'संगीत नाटक अकादमी' ने उन्हें फेलोशिप प्रदान की। उसके उपलक्ष्य में, 'व्यास संगीत विद्यालय' द्वारा आयोजित सम्मान-समारोह में उन्होंने अपने व्याख्यान के माध्यम से सब श्रुतियों का सुरम्य दर्शन कराया। इससे उनके स्वर-श्रुतिविषयक प्रकांड अध्ययन का प्रमाण लोगों को प्राप्त हुआ, एक प्रकार से सब लोगों को प्राप्त वह एक अविस्मरणीय अनुभूति थी। भारत सरकारने उन्हें 'पद्मभूषण' उपाधि प्रदान करके उनके संगीतविषयक कार्य की कद्र की।

अन्य लोगों के लिए श्रीरातंजनकरजी चाहे जैसे भी प्रतीत हुए हों, मुझे तो वे आस्थावान, आतिथ्यशील सज्जन ही महसूस हुए। जब जब मैं उनसे मिलने जाता, वे अत्यंत प्रेम से मेरा स्वागत करते, अत्यंत आस्थापूर्वक मेरी पूछताछ करते और आग्रहपूर्वक चाय पिलाया करते थे!

यहां एक संस्मरण का उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता। एक बार ऐसे ही जब मैं उनसे मिलने गया था, 'पूर्व्या-पूर्वा' राग के विषय में मैंने उनसे पृच्छा की, क्योंकि उस राग का एक अलग स्वरूप मैंने सुना था। तब उन्होंने तुरंत अपनी अलमारी से भातखंडे ग्रंथ निकालकर उसमें से उक्त राग का स्वरूप मुझे बताया और यह स्पष्ट किया कि भातखंडेजी को यही स्वरूप अभिप्रेत था।

रचनाकार के रूप में रातंजनकरजी अपनी बहुविध एवं बहुरंगी बंदिशों के कारण ख्यातनाम हुए। साहित्य और रागदारी की लय के साथ उनकी की हुई क्रीड़ा विलोभनीय है। वैसे अप्रसिद्ध

रागों में छोटे ख्यालों की कमी ही है। इसीलिए शायद उन्होंने ऐसे अनेक रागों में ढंग की बंदिशें तैयार कीं। कौसी कानड़ा की 'काहे करत मोसे' बंदिश आजकल नई पीढ़ी के सभी गायक गाया करते हैं, यह केवल बानगी के तौर पर ही मैंने कहा है। खट राग की 'बंधा समां' बंदिश के रचना-कौशल के संबंध में श्री गिंडेजी ने यह किस्सा बता दिया था कि उस रचना को आह्वान समझकर उसे उन्होंने एक ही रात में तैयार किया था। संगीत उनके रोम-रोम में निरंतर बहता था। मौका पाते ही वह उछलकर फव्वारे की तरह फूट पड़ता था। वे लखनौ के अपने सहाध्यापक पं. नातूजी को बंदिशों के माध्यम से कुछ संगीतविषयक प्रश्न, उन्हें प्राप्त कुछ अनुभूतियां, संवेदनाएं आदि मालूम करा देते थे। दोनों के बीच का यह 'डायलॉग' बड़ा रोचक हुआ करता था। इसे रचना-क्षेत्र का एक अनोखा प्रकार कहना चाहिए। यह 'डॉयलॉग' अवश्य प्रकाशित होना चाहिए।

लखनऊ से अवकाश प्राप्त करनेपर खैरागढ़ के 'इंदिरा कला विश्वविद्यालय' के वाइस चैन्सलर का पद उन्हें अनायास प्राप्त हुआ। कागजातों के चक्कर में शायद उनका मन न रमा हो, कार्यक्रम समाप्त होनेपर वे बंबई आए तथा नाद-ब्रह्म में विलीन होनेतक यहीं रहे।

ऊपरी तौर पर कुछ रुक्ष-से प्रतीत होनेवाले श्री रातंजनकरजी कटहल की तरह थे। बहिरंग कंटीला और भीतरसे मधुर। अपने शिष्यों से उन्हें अपने बच्चों जैसा प्रेम था। विद्या अर्जित करने के पश्चात् उनके शिष्य श्री गिंडेजी जब उन्हें छोड़कर कुछ स्वतंत्र करतब दिखाने के उद्देश्य से बंबई चले आए, तब उन्होंने दुःखावेग में 'वियोग वराली' नाम के राग में एक बंदिश बनाई। श्री गिंडेजी के लखनऊ छोड़कर चले जाने के उपरान्त कई दिनतक उन्होंने अपने को कमरेमें जकड़ रखा था। 'छोटू' का वियोग उनसे सहा नहीं जाता था। ऐसे प्यारे पितृवत् गुरु ने श्री गिंडेजी को 'जियो तुम करोर' बंदिश के माध्यम से जीवन में सफल होने का दिल खोल कर आशीर्वाद दिया।

'गुणनिधान गुणवंत' आशय की एक पुरानी बंदिश है। उसे भले ही किसी व्यक्ति ने किसी के लिए बनाया हो तो भी वह आज भी श्री रातंजनकरजी पर बखूबी चरितार्थ होती है। इसमें सचमुच कोई संदेह नहीं है कि सब लोगों के लिए आदरणीय बने हुए श्री रातंजनकर ऊर्फ अण्णासाहब संगीत के 'गुणनिधान, गुणवंत' थे।

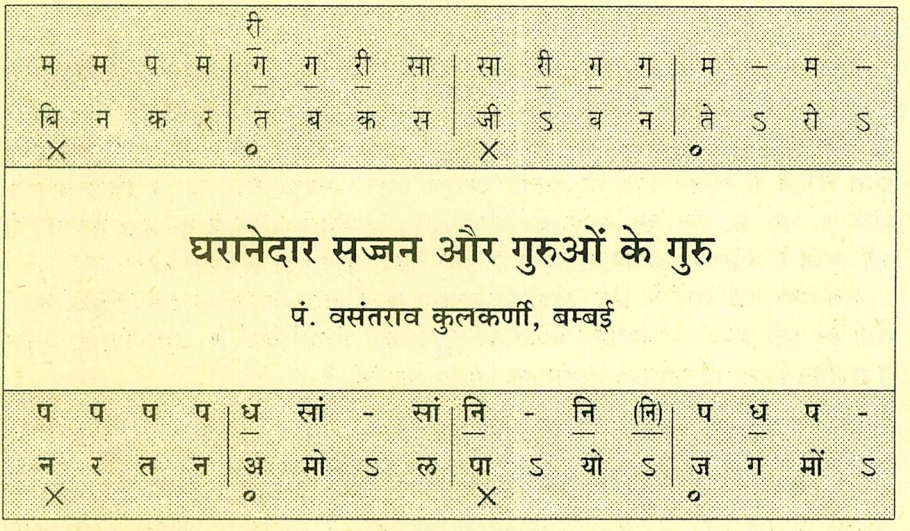

[पं. अनंतराव मनोहर जोशी के शिष्य, (बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर गायनाचार्य के नाती शिष्य)। साथ ही पं. जगन्नाथबुवा पुरोहित तथा उ. खादिम हुसेन से भी तालीम प्राप्त। श्रीगुरु समर्थ गायन विद्यालय के संचालक। मान्यताप्राप्त गायनगुरु]

''क्यों समधि बुवा?'' सामने के व्यक्ति ने मुझसे पूछा। संगीत की दुनिया में दूसरे व्यक्ति को 'बुवा', 'पंडितजी', 'खांसाहब' जैसे नामों से पुकारने की रूढ़ि ही बन गई है। अत: 'समधि बुवा' के नाम से पुकारने पर मैं पसोपेश में पड़ गया। क्योंकि पुकारनेवाले व्यक्ति गुरुवर अण्णासाहब थे। मेरे चेहरे पर उन्हें ऐसा संभ्रम का भाव दृष्टिगोचर हुआ जो अप्रचलित राग सुनने पर दिखाई देता है। उन्होंने ही हंसकर अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा- ''अरे भाई मेरे शिष्य, मानसपुत्र, श्री महाले ने आपकी शिष्या मानसकन्या लता भडसावळे से विवाह किया। तो क्या फिर हम दोनों समधि हो गए कि नहीं?'' बिना कन्यादान किए ही अण्णासाहब का किया हुआ यह 'नोटेशन' अनोखा था।

सजीव गायन-कोश

पं. रातंजनकरजी उन इने-गिने कलाकारों में से हैं जिन्होंने भारतीय संगीत की उपासना को ही अपना लक्ष्य माना। उन्होंने गायन की तरफ अर्थोपार्जन के साधन के रूप में कभी देखा ही नहीं। उन्होंने ऐसा कोई भी समझौता नहीं किया कि जिससे प्रसिद्धि या द्रव्यप्राप्ति के लोभ से अभिजात कला को बाधा पहुँच जाए। इसीलिए पंडितजी को सजीव गायन कोश ही कहना चाहिए।

पंडितजी एक 'कोठीवाले' नायक थे। अनेक प्रचलित, अप्रचलित रागों की अलग अलग घरानों की, अलग अलग शैली की बंदिशें संपूर्ण स्थायी-अंतरे के साथ उन्हें कंठगत थीं। 'नित्य नया कुछ न कुछ अर्जित किया जाए' इस नीति के अनुसार किसी आदर्श विद्यार्थी की तरह

उनकी ज्ञानलालसा पराकोटि की थी।

वे संगीत-कला का एक चलता-बोलता विद्यापीठ ही थे। 'विद्या विनय से शोभित होती है और दान से विकसित होती है।' इस ख्याल का निरंतर रियाज करनेवाले! किसीके सामने कोई सांगीतिक प्रश्न उठ खड़ा हो ही जाए, तो वह बेशक अण्णासाहब के पास जाए। वे तुरन्त कठिन से कठिन प्रश्न भी अत्यंत आसान ढंग से समझा देंगे, वह भी बिना ज्ञान के घमंड या गर्व के, सब कुछ साफ एवं स्पष्ट! प्रश्न करनेवाला छोटा है या बड़ा यह भेद वे नहीं मानते थे न उसकी कुव्वत के विषय में उनके मन में कोई संदेह ही रहता था।

सब बड़ी बड़ी बैंकों के लिए उनकी कठिनाइयों का निवारण करनेवाली एक 'रिझर्व्ह बैंक' होती है। उसी प्रकार अण्णासाहब संगीत की दुनिया की 'रिझर्व्ह बैंक' थे। ऐसी बैंक जो संगीत से संबंधित किसी भी मुश्किल सवाल को आसान कर देती है।

शिष्य की 'वियोग वराली'

एक आदर्श विद्यार्थी होनेसे वे आदर्श गुरु थे। पूरी लगन के साथ संगीत-विद्या सीखनेवाले विद्यार्थी के प्रति उनके मन में सदैव सहानुभूति रहती थी। पं. गिंडेजी के पिताजी ने छोटे कृष्ण को अण्णासाहब के हवाले किया, तब एक पिता अपने छोटे बच्चे को बड़े विश्वास के साथ अपने को सौंप रहा है इस विचार से ही अण्णासाहब गद्‌गद् हो गए और बोरीबंदर के प्लैटफार्म पर उन्होंने साक्षात् दंडवत किया और कृष्ण की ठीक तरह से देखभाल करने का उन्हें आश्वासन दिया।

यही कृष्ण पंद्रह वर्ष तक कठोर तपश्चर्या करके, गुरु की कृपा प्राप्त करके लखनौ से बंबई आने निकला तब अण्णासाहब की स्थिति वधू-पिता के समान हुई। गड़करी कहा करते थे कि 'कन्यादान के समय के आंसू दुख के होते हैं या आनंद के, इस का अंदाजा लड़की के बाप के सिवा कोई भी दूसरा बाप नहीं लगा सकता।' किन्तु गुरुशिष्य के पुण्यप्रभावी भावबंधन से आबद्ध अण्णासाहब ने उसका अचूक अंदाजा लगाया था। अत: कृष्ण को बिदा करते समय मंगलाष्टक की तरह स्वरचित 'वियोग बराली' राग में साश्रुनयनों से उन्होंने आशीर्वाद दिया-

"लाख करोर जियो ऐ नाद के पुजारी
जस कीरत अनत बढ़े, तिहारी या जग में ही॥
गावो, सुनावो, रिझावो, गायक गुनी कहावो,
सदा रत रहो, संगीत सुधा रस में हो-"

संगीत-कला के एक ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध, बुजुर्ग के द्वारा अपने शिष्य को 'नाद के पुजारी' कहकर संबोधित करना लोकविलक्षण ही है।

"किसी कठिनाई में फँसे व्यक्ति को फंदे में डालकर उससे बंदिशें वसूल करना तो अण्णासाहब की प्रकृति ही नहीं थी, उलटे अपने पासकी अनेक सांगीतिक बंदिशों को इस बुजुर्ग ने लेनेवाले की पात्रापात्रता का विचार भी न करके, किसी प्रकार की अपेक्षा न रखते हुए, निरपेक्ष भाव से लुटा दिया था! अण्णासाहब निर्मल मन के, साफ विचारों के व्यक्ति एवं संगीत के एक स्वच्छ झरना थे। मेरा सिर उनकी स्मृति में अपने आप झुक जाता है!

मेरे संगीत-जीवन के ब्रह्मा, विष्णु, महेश

मेरे बाद के दो गुरुवर पं. जगन्नाथबुवा पुरोहित (गुनीदास) और उस्ताद खांसाहब खादिम हुसैन खां (सजन पिया) दोनों जैसे गुणी शिष्य, उदार गुरु, उच्च श्रेणीके गायक के रूप में पहचाने जाते हैं, उसी प्रकार रसीले, रंगीले, रचनाकार के रूप में भी वे ख्यातनाम हैं। उन दोनों के बनाए नवीन राग एवं काव्यगुणों से सजी हुई बंदिशें लोकप्रिय हैं।

रचना के विषय में इन दोनों गुरुवरों ने अगर किसी को अपना गुरु माना हो तो वह 'पद्मभूषण' अण्णासाहब रातंजनकर को ही! अण्णासाहब का स्वर-रचना का कल्पनाविलास, माधुर्य पर उनका स्वामित्व, गाते समय महसूस होनेवाला अनोखा वजन दोनों को मुग्ध कर देता था और दोनों को अपने अधूरेपन का एहसास होता था। दोनोंका अण्णासाहब की रचनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण जारी था। उसके मूल में उनकी शैली के नुक्स पर अंगुलिनिर्देश करने का उद्देश्य नहीं है। पूर्णत्व की राह पर ले जानेवाले अण्णासाहब उन दिनों के एक दृष्टि से गुरु ही थे और विशेष बात यह है कि इस ऋण को दोनों ने ही खुले दिल से मान लिया है!

गुनीदास के मन में तो बीच-बीच में अण्णासाहब से मिलनेकी उत्कट इच्छा होती थी। कई बार वे मुझे भी अपने साथ ले जाते। अण्णासाहब की नई बंदिशें, नए विचार, सुनकर वे अपनेको लाभान्वित समझते थे। उनके रचना-सौष्ठव, शैली, रचना का आकृतिबंध आदि का वे गहराई में जाकर विचार करते थे। केवल कार्बन पेपर न बनकर ब्लॉटिंग पेपर की तरह उनके सार-तत्त्व को वे सोख लेते थे और अपनी काव्य-प्रतिभा को उजाला देते थे। उनमें कुत्सित चर्चा, खिल्ली के तौर पर उपस्थित की गई शंकाओं, घृणास्पद असूया आदि के लिए स्थान नहीं होता था। केवल 'गुनीजन सब होत नाही, गुन की चरचा नाहि' का निर्मल भाव और 'सेवा गुनियन की कीजे' वाली निरपेक्ष वृत्ति उनके मन में विद्यमान रहती थी। इसीलिए 'बुवा' जी की अनेक बंदिशों पर अण्णासाहब की ढंगदार शैली का प्रभाव अनायास पड़ा दिखाई देता है। उसका एक ही उदाहरण पर्याप्त है। गुनीदास की अहीर भैरव की 'तेरो जिया सुख पावे' बंदिश के अंतरे की रचना, चलन आदि अण्णासाहब की 'सालग़बराली' जैसा प्रतीत होता हो तो वह अचरज की बात नहीं है।

खांसाहब खादिम हुसेन खां साहब को अण्णासाहब की झिंजोटी राग की ढंगदार बंदिश 'मेरो मन सखी हर लीनो' ने इतना मोहित किया कि खांसाहेब ने उससे स्फूर्ति लेकर उसी तरीके पर 'सांवरे सलोने से लागे मोरे नैना' बंदिश बनाई और विशेष बात यह कि महफिल में उसे गाते समय अण्णासाहब के इस ऋण को उन्होंने खुले दिल से प्रकट रूप में स्वीकार लिया।

'गुनीदास' और 'सजन पिया' ये दोनों तो मेरी संगीत-विद्या के गुरु ही ठहरे। किन्तु इन दोनों ने गुरुसमान श्रद्धा रखी तो अण्णासाहब के प्रति ही! उन्होंने एकलव्य की तरह कला-साधना की। इन दोनों के कारण ही अण्णासाहब के साथ मेरा घनिष्ठ संबंध जुड़ गया और विचारों को भी नई दिशा प्राप्त हुई। 'धन धन भाग' जैसा यह अपूर्व योग है। इसीलिए मेरे संगीत-जीवन के शिल्पकार इन तीनों - ब्रह्मा, विष्णु, महेश- के सामने दो हाथ और तीसरा मस्तक जोड़कर मैं अपनी विनम्र आदरांजली इन शब्दों में उनको अर्पित करता हूं- "गाऊं गुनन कैसे तुमरो, गुन नाहिं मोमें अब-"

जिस प्रकार मेरे इन दो गुरुओं का ऋणानुबंध अण्णासाहब से जुड़ गया था, लगभग उसी प्रकार का अनोखा ऋणानुबंध मेरे पहले गुरु स्व.पं. अंतुबुवा जोशीजी से भी जुड़ा हुआ था। संप्रति मेरे चलाए जानेवाले 'श्रीगुरु समर्थ गायन विद्यालय' के मूल संस्थापक श्री अंतुबुवा ही तो हैं!'' गिरगांव में १९०९ में स्थापित इस विद्यालय की आगे चलकर बहुत ही समृद्धि हुई। उसी समय पं. अण्णासाहब श्री अंतुबुवाजी के पास गाना सीखने जाते थे। फलत: एक प्रकार से मैं अण्णासाहब का गुरुबंधु ही हूं। इसीलिए मेरे पहले गुरु को 'गुरु: साक्षात् परब्रह्म' के रूप में विनम्र अभिवादन!

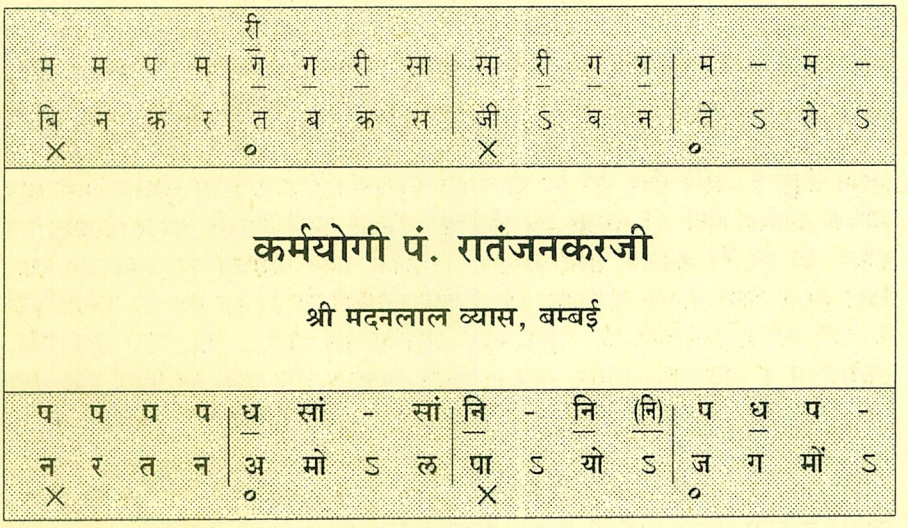

(श्री मदनलाल व्यास बहुत ऊंचे संगीतज्ञ और जाने-माने संगीत-समीक्षक हैं। अबतक आपने संगीत के अनेक मूल्यवान ग्रंथों का संपादन एवं अनुवाद किया है। 'नवभारत टाइम्स' तथा अन्य पत्रिकाओं में संगीत-समीक्षा लिखते रहे हैं ।)

अथाह सागर जब शांत और निश्चल रहता है तब उसका गांभीर्य किसीको भी विस्मित कर सकता है, किंतु जब उसमें तरंगों का वेग उठता है तब ऐसा लगता है कि वह जैसे सबको अपने में समा लेगा। उसका शांत भाव उसकी विशालता का परिचायक और गहन चिंतन का प्रतिरूप है और तरंगायित स्थिति उसके मुखरित होने की उत्कट आकांक्षा की अवस्था। ध्वंस-निर्माण-ध्वंस-पुनर्निमाण प्रकृति का नियम है और उसीमें चिरंतन स्वर अपनी अद्‌भुत छवि के साथ रूपायित होता है ।

पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर के व्यक्तित्व को भी इसी रूप में देखना उचित होगा। इस पुरुष के अंतर में उसी विशालता, व्यापकता एवं गंभीरता के दर्शन किये जा सकते थे। इसके अंतर से उठनेवाली तरंगें रुद्र रूप नहीं, बल्कि शीतलता, आनंद प्रदान करनेवाली थीं, पथिक का पथ आलोकित करनेवाली थीं। यह मानव एक उद्देश्य लेकर चला था, अपने गुरु के प्रकाश-पुंज को विस्तृत करने, मुखरित करने को प्रवृत्त हुआ था। उच्चादर्श, दार्शनिक आधार और उदार भाव से जिस रूप में संगीत के उदात्त स्वरूप को कायम रखने, शिक्षा का स्वस्थ रूप प्रतिष्ठापित करने में अपने मार्गदर्शक गुरु पं. विष्णु नारायण भातखण्डे के निर्धारित लक्ष्य की ओर निस्वार्थ, निःस्पृह भाव से वे अग्रसर हुए, मनन-चिंतन से जैसा रचना-संसार खड़ा कर सके, वह निःसंदेह आदर्श कहा जा सकता है। घर के विशाल हॉल के एक कोने में बहुमूल्य ग्रंथों से घिरे शास्त्रों के प्रस्थापित मतों का मंथन करते हुए, संगीत महफिल में स्वर-लहरियों के साथ चिंतन-प्रवाह में विचार करते हुए एवं ईदगिर्द के वातावरण से निर्लिप्त इस भावप्रवण पुरुष को 'कर्मयोगी' ही कहना ठीक होगा ।

नवसर्जन के पथचारी पं. रातंजनकर सही अर्थ में वाग्गेयकार थे। नवरागों के सर्जन के साथ उनकी रचनाओं में अद्‌भुत लालित्य एवं भावगांभीर्य मिलता है। सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि इस गुणी वाग्गेयकार की बंदिशें रागविशेष के अंतर्निहित भावों की वाहक हैं। इनमें शब्दों का चयन जिस रूप में किया गया है, उससे पाठ्य एवं गेय दोनों रूपों में वे रचनाएं अपने आपमें संपूर्ण हैं। इसमें संदेह नहीं कि वह रचना-कौशल और भावप्रवणता स्वर-सज्जा के साथ अधिक मुखरित होती है। संस्कृत एवं हिंदी की रचनाएं समान रूप से अपना गौरवमय रूप कायम रखे हुए हैं। कर्नाटक शैली के राग, एवं उनके गायन-वैशिष्ट्य को सम्माननीय स्थान प्रदान करना उनके व्यापक दृष्टिकोण को दरसानेवाली विशेषता है। इस पक्ष को उजागर करने के लिए यहां कुछ बंदिशों का उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा। 'चंद्र लज्यो मुख देखि' (केदार) में पं. रातंजनकर स्तरीय कवि हैं जिसमें अलंकार और शब्दों का प्रवाह स्वर-सज्जा का आधार लेकर देदीप्यमान हुए हैं। इसी प्रकार 'गिरि कैलास पीठ' (बैरागी भैरव) में भगवान शंकर का वैरागी रूप मूर्त होता है, 'गगनमय थाल' (यमन), 'आद नाद ब्रह्मनाद' (यमन), दार्शनिक एवं समर्पण भाव की प्रतीक रचना 'नहीं मांगता हूँ' (खमाज), भक्तिभाव-प्रदर्शक रचना 'नमोनमो जयश्री सरस्वती दयानी' (छायानट), 'मेरो मन सखी हर लीनो' एवं 'सांवरी मन भायो' (झिंझोटी), 'दुर्गे महारानी पातक निवारिनी' (दुर्गा), 'दुर्गे महिषासुरमर्दिनी' (शंकरा), 'वंदे देवीम् श्री वाग्देवीम् श्री' (केदार गौल-वर्णम-संस्कृत) आदि कुछ ही उदाहरण यहां दिए गए हैं। उनके इस रचना-संसार ने संगीत-भण्डार को समृद्ध ही नहीं, समुज्ज्वल किया है, गौरवान्वित किया है।

यह रचना-कौशल उनके बहु-आयामी कार्य का एक मात्र पक्ष था। संगीत के व्यावहारिक और औपपत्तिक दोनों पक्षों का उन्होंने पूर्णता के साथ अध्ययन किया था और इनपर अपने सुचिंतित मत भी प्रकट किए थे। संगीत-शिक्षा के व्यवस्था-पक्ष को भी उनकी कर्मठता और सचेष्टता ने एक निश्चित रूप प्रदान किया, भातखंडे संगीत विद्यापीठ (लखनऊ) और खैरागढ़ संगीत विश्वविद्यालय उसके साक्षी हैं। इस कार्य को निश्चित स्वरूप प्रदान करने में उन्हें कितना त्याग करना पड़ा, यह बात भी छिपी नहीं है। पारिवारिक कष्ट झेलते हुए निःस्वार्थ भाव से सेवारत रहना निश्चित उद्देश्य को लेकर 'अवतरित मानव' के लिए ही संभव है और "अण्णासाहब" (पं. रातंजनकर) ने इसे संपन्न कर दिखाया। आज उनका शिष्य-परिवार तथा उस धरोहर को वहन करनेवाले संगीत विद्यालयीन शिक्षार्थी उनके आजीवन ऋणी रहेंगे। यह था उनका संगठन तथा व्यवस्था- पक्ष। यहां यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने उपनिषद् और स्वामी रामकृष्ण परमहंस के आप्त वाक्य का निर्वाह करते हुए 'मैं' को कभी प्रधान नहीं होने दिया बल्कि 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' को ही प्रमुखता दी। पं. रातंजनकर की उद्‌ग्र कर्तव्यपरायणता और बहुमुखी संकल्पों के समन्वय से खैरागढ़ विश्वविद्यालय गौरवमय स्थान पा सका। और उसकी नींव दृढ़ता से प्रस्थापित हो सकी। पं. रातंजनकर कला-विक्रय के घोर विरोधी रहे।

वीरेन्द्रकिशोर रायचौधरी के अनुसार पं. रातंजनकर भारत में संगीत-शिक्षा के प्रमुख स्तंभ थे और आदर्श शिक्षक भी। श्री अमृतराव निस्ताने (नागपुर) ने कहा है कि ध्रुपद अंग की गायकी, संगीत का वैशिष्ट्य, समप्रकृतिक रागों के सूक्ष्म भेद अण्णासाहब बहुत सहज भाव से समझा देते थे। उनका शास्त्रज्ञान अद्‌भुत था, यह सब उनकी विद्वत्ता और अलौकिक बुद्धिमत्ता का साक्षी है। श्री टी.एल. वेंकटराम अय्यर ने उन्हें हिंदुस्तानी और कर्नाटक संगीत की एकता

का प्रतीक बनाया है। प्रा. पी. साम्बमूर्ति ने पं. रातंजनकर को भारत का सर्वोत्तम लक्षणलक्ष्य विद्वान और आदर्श प्राचार्य कहा है। श्रीमती अरुणा देसाई ने पं. रातंजनकर को संगीतज्ञ, पंडित, अद्‌भुत शिक्षाविद् और सर्वोपरि आदर्श शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उत्तराधिकारी बताया है।

संगीत जैसे विशद एवं जटिल विषय का शायद ही ऐसा कोई अंग रहा, जिसपर उन्होंने प्रकाश न डाला हो। श्रुति जैसा उलझा एवं गाणितिक विषय, लोकसंगीत, ठाठ रचना, जाति एवं जाति उद्‌भूत रागों की सृष्टि, आर्ष संगीत, रागदारी संगीत की पूर्वपीठिका और उसका भविष्य, सांगीतिक परंपरा, कर्नाटक और हिंदुस्तानी संगीत, प्राचीन और आधुनिक संगीत-शिक्षा, राग का अर्थ एवं उद्देश्य आदि विषयों पर जिस रूप में उन्होंने प्रकाश डाला है उसीसे इस दुर्बल शरीर के 'महामानव' के विशद ज्ञान की अथाह सागर से तुलना की जा सकती है।

अंत में राग मेघ के संबंध में पं. ननीगोपाल बंदोपाध्याय और स्वामी प्रज्ञानानंद को लिखे गए पत्रों के अंश उद्‌धृत करना समीचीन होगा।

(स्वामी प्रज्ञानानंद लिखित ग्रंथ 'राग ओ रूप' से)

Lucknow
24/8/48

My Dear Nani Babu,

Your letter of the 12th instant. 'Meggh Malhar' itself is some time called 'Megh'. It is a variety of Malhar. The swaras are सा रे म प नि सां- सां नि प म रे सा। It is distinguished from Sarang by the following points.:

(1) Madhyam is 'Vadi' in Megh, while Rickhav is vadi in Sarang. Shadja is samvadi in Megh and Pancham in Sarang. Accordingly there will be a 'niyas' on madhyam in Megh and on Rikhav in Sarang.

(2) 'Meed' from म to रे (म रे) and री-प संगति and peculiar manner of swaroccharana (स्वरोच्चारण) are distinguishing marks of Megh.)

xxx xxx xxx

Some musicians use Komal ग in it, probably to distinguish it more clearly from Sarang. But that not frequently- eg. म, रे प, सा रे, सा, रे, सा,

सा सां, नि, प, मप, म ग, म ग, म, सा रे सा

In rainy season it may be sung any time. Accordingly it is night Raga.

इस विषय में और प्रश्नों के साथ पत्र लिखे जाने पर पं. रातंजनकर का उत्तर-

MARRIS MUSIC COLLEGE
LUCKNOW
10th September 1948.

To
Shri Swami Prajnanananda,
Ram Krishna Vedanta Math, Calcutta.

Dear Sir,

x x x You are laying much stress on your following the 'Hanuman Mat'. This has created in me a hope that you have, after all, come across an old sanskrit work representing the 'Hanuman Mata'. I should, in case, like to know the name of the Grantha, its basic side i.e: its Shudda & vikrit swaras as compared to the modern Gamut, in general scheme and system of classification of Ragas.

So far no Grantha representing the Mata has been discovered. Whatever little we hear about the 'Hanuman Mata' is from the quotations of its scheme of Raga and Ragini classification quoted in Damodar's 'Sangit Darpana' and such other works and from some old musicians.

xxx xxx xxx

Regarding Mallar and Megh Mallar, I do not know either the Megh or Mallar of Hanuman Mata beyond what is given in the following sloka.

मेघपूर्णोधत्रय: स्यादुत्तरायतमूर्छन:।
विकृतो धैवतो ज्ञेय: शृंगाररसपूरक:॥
धा नि रि ग म प ध
मल्लारी 'स-प'हीना स्याद् ग्रहांशन्यासधैवता।
औडुवा पौरदीयुक्ता वर्षासु सुखदा सदा॥
धा नि रि ग म ध

But unfortunately we cannot sing these, because we do not know how much above 'Pa' is the vikrit 'Dha' of 'Hanuman'. Damodar does not explain it. In fact we do not know the Suddha vikrit swara of 'Hanuman'. The difference in words comes to this :-

मेघ- संपूर्ण, धैवत विकृत
मल्लारी (not Mallar)- औड़व, स-प वर्जित
Hanuman does not give any raga by name Mallar.

xxx xxx xxx

Now let us come to current system. The Raga known as Suddha Mallar

(or Mallar simply) is an oudav Raga omitting नि and ग।

xxx xxx xxx

Now Megh is a variety of Mallars. It is called Megh Mallar or Simple मेघ।

xxx xxx xxx

There is no Raga in vogue called Megh without reference to Mallar. There is no मेघ-अंग as such, so it is not possible to say that मेघमल्हार is a combination of मेघ and Mallar.

x x x

It is time we left their 'matas' to themselves. It is a wild goose chase, so long as the very foundation i.e. स्वरसमूह remains obscure.

- Ratanjankar

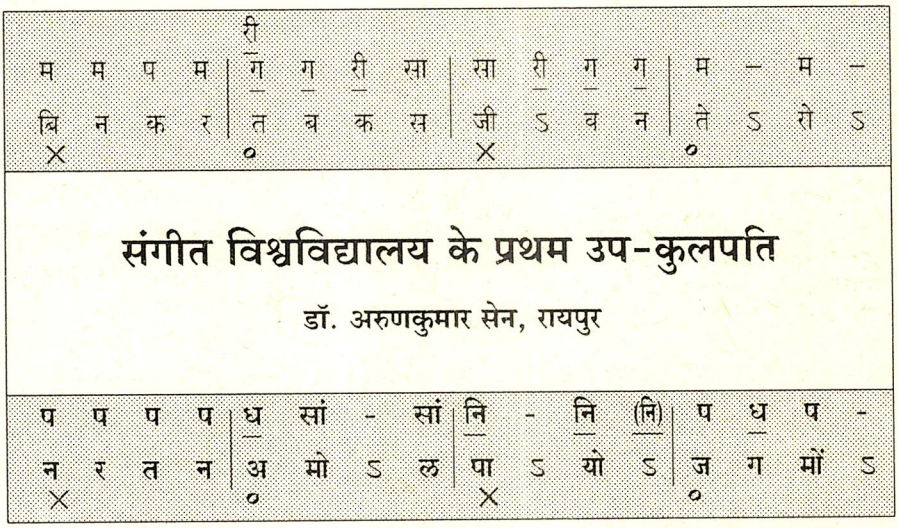

(बहुमुखी प्रतिभा के संगीत कोविद। एम.ए. (नागपुर वि.विद्यालय), संगीत निपुण (लखनऊ), पीएच.डी., साहित्यरत्न (प्रयाग), धर्मविशारद - उपाधियां। कमलादेवी संगीत महाविद्यालय रायपुर के प्राचार्य, इंदिरा सं.क. विश्वविद्यालय के डीन और तत्पश्चात् उपकुलपति रह चुके हैं। अनेक ग्रंथों के लेखक। उत्तर भारतीय संगीत का ऐतिहासिक विवेचन (पं. भातखंडेजी के अंग्रेजी ग्रंथ का अनुवाद).... इत्यादि। प्रस्तुत लेख अण्णासाहब के षष्ठिपूर्ति अभिनंदन ग्रंथ, १९६०, से लिया गया है।

इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय खैरागढ़ की स्थापना भारतीय संगीत की एक ऐतिहासिक घटना है, क्योंकि संविधान के आधारपर सर्वप्रथम मध्यप्रदेश विधान-सभा को ही इस विश्वविद्यालय की स्थापना का श्रेय सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्राप्त हो सका। इं.क.सं.वि. एक्ट क्र. XIX १९५६ भारतीय संगीत के इतिहास का इसी हेतु एक अभूतपूर्व स्मरणीय पृष्ठ है। और श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर इस अभिनव विश्वविद्यालय के प्रथम महान उपकुलपति हैं।

इस विश्वविद्यालय को क्रियात्मक रूप देने का श्रेय स्व.पं. रविशशंकर शुक्ल, मुख्य मंत्री मध्यप्रदेश, को है जिनके हृदय में एक स्वप्निल चित्र इस विश्वविद्यालय का बन चुका था, जिसे आदरणीय रानी पद्मावती एवं राजा साहब खैरागढ़ ने राजमहल एवं अन्य उपकरण दान में देकर साकार किया था।

मुझे उस बात की याद है जब स्व.पं. शुक्ल ने इस विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति के लिए मुझसे विचार-विमर्श शुरू किया था। यद्यपि वे संगीत के जानकार नहीं थे पर संगीत संसार की गतिविधियों से परिचित थे और जब श्रद्धेय रातंजनकरजी का उल्लेख इस बारे में किया गया तो वे बड़े उत्फुल्ल हो गये। उन्होंने तुरन्त विश्वास कर लिया कि वे ही इस उत्तरदायित्व-पूर्ण पद के लिये सर्वथा योग्य हैं। लखनऊ छोड़कर उनके एकाएक खैरागढ़ आने की बात पर मुझे शंका थी, क्योंकि भातखंडे संगीत विद्यापीठ एवं भातखंडे संगीत महाविद्यालय, लखनऊ, का

क्रमिक विकास-कार्य उनके जीवन का व्रत बन गया था। मेरी शंका के संबंध में श्री शुक्लजी का ख्याल शायद यह था कि श्री. रातंजनकरजी संगीत के पथ-प्रदर्शक हैं अत: भारत के इस प्रथम कला एवं संगीत विश्वविद्यालय को उनकी आवश्यकता है। वे कदापि हमें निराश नहीं करेंगे। अंत में आदरणीय रातंजनकर को ही यह महा गौरवपूर्ण पद एवं साथ ही उत्तरदायित्व लेना पड़ा। उन्होंने यह पद दि. ५ फरवरी १९५७ को स्वीकार किया और लखनऊ के जनबहुल जीवन से मानों संन्यास लेकर खैरागढ़ की नीरवता में संगीत की प्रतिष्ठा हेतु चले आए। मध्यप्रदेश का संगीत-समाज इस कर्मठ नि:स्वार्थ योगी की कला-साधना को पाकर धन्य हुआ।

सौभाग्यवश इस विश्वविद्यालय के निर्माण काल से ही मेरा इससे घनिष्ठ सम्पर्क रहा है, इसलिए विश्वविद्यालयीन गतिविधि एवं आदरणीय रातंजनकरजी के ठोस रचनात्मक कार्य-कलापों को अंतरंग रूप से जानने एवं समझने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ है। आचार्य रातंजनकरजी विश्वविद्यालय के एक ऐसे उपकुलपति थे जिसके लिए कोई दूसरी उपमा नहीं थी। भारत ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण सभ्य जगत् में इस विश्वविद्यालय के समान किसी संस्था का निर्माण सम्भव न हो सका था। संगीत-क्षेत्र में अखिल भारतीय स्तर पर कार्य करनेवाली कुछ संस्थाएं अवश्य थीं किन्तु संविधान की धारा से शासकीय स्तर पर अनुदानित ऐसा कोई विश्वविद्यालय नहीं था।

इन समस्याओं के होते हुए भी आ. रातंजनकरजी ने दृढ़ता से इस विश्वविद्यालय की स्वस्थ प्रगति के लिये भगीरथ प्रयत्न किये एवं 'विश्वविद्यालय धारा' के नियमों की रक्षा करते हुए उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रमों की व्यवस्थित परम्परा इस विश्वविद्यालय में स्थापित की। विश्वविद्यालयीन विधिविधान आदि की जटिलता का सम्यक् अध्ययन कर उचित कार्यों का सम्पादन करना एक सुयोग्य कलाकार ही नहीं वरन एक सुयोग्य विधि-व्यवसायी का क्षेत्र था और आ. रातंजनकरजी ने अपने जीवनभर के अनुभवों का निचोड़ इस विश्वविद्यालय की जड़ में डाल दिया।

अपने कार्य-काल में मैंने चिंतनशील एवं व्यस्त रातंजनकर जी को बड़े समीप से देखा एवं समझा है। वे बड़ी गहराई से हर तत्त्व का स्वयं अध्ययन कर ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचते थे, जिनसे संगीत का वास्तविक कल्याण सम्भव हो सके। फिर इस दिशा में निर्णय आदि लेते समय उन्हें कभी कभी बड़ा मानसिक क्लेश होता था, क्योंकि अपने पथ का अपने ही विवेक-बुद्धि एवं आन्तरिक प्रकाश से उन्हें स्वयं निर्माण करना पड़ता था। दूसरे विश्वविद्यालयों की अपेक्षा इस विश्वविद्यालय का रूप पूर्णरूपेण संपन्न होने के कारण कई बातों में बड़ी सावधानी से आदेश देने पडते थे। आचार्य रातंजनकरजी की ही योग्यता थी जो विश्वविद्यालय का मार्ग क्रमश: प्रशस्त करती गई। कभी-कभी केवल कुछ ही घंटों का अवकाश लेकर दिन-रात अक्लांत परिश्रम उन्होंने किया।

किसी भी ज्ञान का परिरक्षण एवं शोध-कार्य बिना आर्थिक बल के सम्भव नहीं होता। विश्वविद्यालय की आर्थिक समस्याओं के साथ आचार्य रातंजनकरजी की उदात्त कर्तव्यपरायणता एवं बहुमुखी संकल्पों का समन्वय नहीं होता था। प्रांतीय शासन से केवल एक लाख रुपया प्रतिवर्ष इस विश्वविद्यालय को मिलता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जो भारत के समस्त विश्वविद्यालयों को विविध कार्य-कलापों के लिए अनुदान देता है, इस विश्वविद्यालय के हेतु मौन रहा है। जिनकी कल्पना का यह विश्वविद्यालय साकार रूप था, वे.पं. शुक्ल भी विश्वविद्यालय

के प्रारम्भिक काल में ही दिवंगत हो गए। अधिकारियों में भी सभी की सहानुभूति इस विश्वविद्यालय को प्राप्त न हो सकी। ललित कलाओं के लिए विश्वविद्यालय की रूप-रेखा को ही कुछ तथाकथित विद्वज्जनों ने संदिग्ध दृष्टि से देखा। इस विषम परिस्थिति में आचार्य रातंजनकरजी का व्यक्तित्व और भी निखर उठा और विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त कर्मचारियों की सुरक्षा हेतु उन्होंने ५०० रु. प्रति माह और कभी उससे भी अधिक द्रव्य विश्वविद्यालय को अपने वेतन से दे दिया। उनके इस दान की महानता से कार्यकारिणी के सब सदस्य परिचित नहीं हैं, क्योंकि उनका यह आर्थिक सहयोग सदा प्रचार से दूर रहा और जननी के दुग्ध के समान गोपनीय रहकर विश्वविद्यालय शिशु का पोषण करता रहा।

मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र की सांगीतिक जन-चेतना भारत के अन्यान्य क्षेत्रों की तुलना में बहुत कम रही है। महाकोशल में बहुत कम संगीत-संस्थाएं कार्य कर रही हैं, जिन्हें प्रारम्भिक मान्यता एक प्राथमिक शाला के रूप में दी गई थी। आचार्य रातंजनकरजी के परिश्रम का ही यह परिणाम है कि आज केवल प्रांतीय सरकार ही नहीं अपितु भारत सरकार ने इन्हें विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता दी है। यह आदरणीय रातंजनकरजी की प्रेरणा थी कि भारत शासन, शिक्षा मंत्रालय से सर्वप्रथम संगीत महाविद्यालय को एक विराट रंगशाला निर्माण हेतु ३५००० रु. का अनुदान प्राप्त हो सका। प्रथम उपकुलपति के नाते खैरागढ़ की शैक्षणिक सीमाओं का पर्यवेक्षण कर उन्होंने ऐसी छात्र-वृत्तियों की योजना की, जिनसे सीलोन आदि दूर दूर से संगीत-छात्र खैरागढ़ आए। यातायात, ठहरने आदि की कठिनाइयों के बावजूद माने हुए विद्वज्जन एवं भारतीय संगीत-समाज खैरागढ़ की ओर आकृष्ट हुआ। यह एकमात्र रातंजनकरजी के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व का परिणाम था। निश्चित अवधि से ६ मास अधिक रहकर उन्होंने इस विश्वविद्यालय की भित्ति इतनी दृढ़ता से स्थापित कर दी कि अब उसका सुयोजित पथ पर अग्रसर होना शासन और जनता की सक्रिय सहानुभूति से संभव हो सकता है।

आचार्य रातंजनकरजी ने संगीत के साथ साथ अन्यान्य ललित कलाओं के योग्य अध्यापन एवं शोधकार्यों के लिए भी विश्वविद्यालयीन स्तर पर बड़ा कठोर परिश्रम किया है।

उनकी विस्तृत योजनाओं को कार्यान्वित कर प्रान्तीय एवं केंद्रीय शासन अवश्य ही लाभान्वित हो सकते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में इन योजनाओं में नि:संदेह पर्याप्त आर्थिक सहायता आवश्यक है किन्तु आगे चलकर इन योजनाओं से उपलब्ध कलात्मक कृतियों से इतना द्रव्य देश एवं विदेश से प्राप्त हो सकेगा, जो इन योजनाओं की सम्पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके।

अंत में यही कहना चाहता हूं कि किसी भी कला एवं विज्ञान में उच्चस्तरीय ज्ञान देश की महान सम्पत्ति है और उस सम्पत्ति का मूल्यांकन दैनंदिन उपयोगिता के आधार पर कभी सम्भव नहीं। पहले कतिपय महान शासकों के आश्रय में उच्चस्तरीय ज्ञान का यदा-कदा विकास होता था किंतु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद आज इसका पूर्ण दायित्व हम सब का है। हम सब की सम्मिलित शक्ति एवं एकात्मता से आचार्य रातंजनकरजी द्वारा अंकुरित इस विश्वविद्यालय का क्रमश: पल्लवित, प्रस्फुटित रूप भारतीय ललित कलाओं का वास्तविक विकासकेंद्र बन विश्व का विद्यालय बने, यही कामना है।

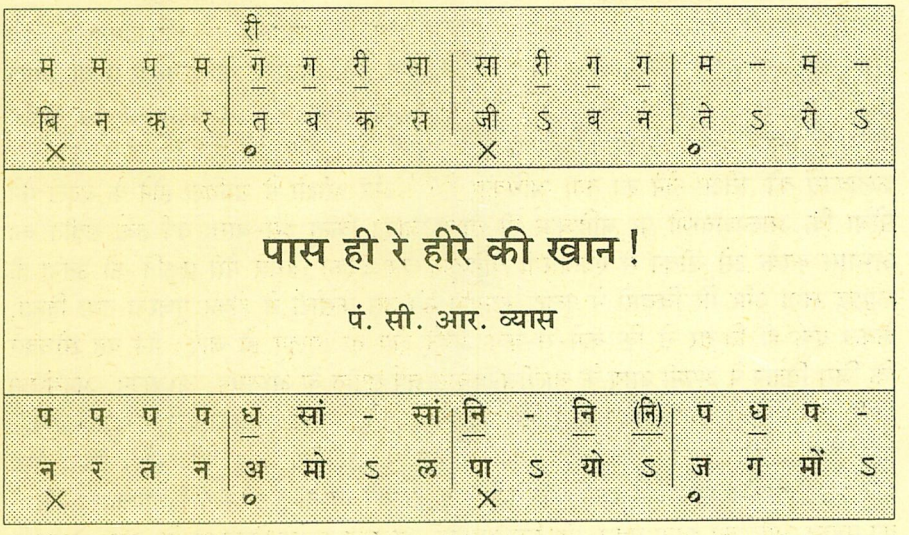

[पं. चिंतामणी रघुनाथ- (सी.आर. व्यास) : भारतीय संगीत-कला के नि:सीम उपासक। 'पद्मभूषण', संगीतशास्त्र के उत्कट जिज्ञासु, गानपंडित तथा गायनगुरु। पं. राजारामबुवा पराड़कर, पं. मिराशीबुवा तथा. पं. जगान्नाथबुवा पुरोहित आदि से संगीत-शिक्षा प्राप्त। जाने-माने महफिली गायक तथा अनेक बंदिशों के रचयिता के नाते वाग्गेयेयकार भी। 'संगीत सरिता' नामक संग्रह प्रकाशित। पं. व्यास का प्रस्तुत लेख अण्णासाहब की षष्ठचब्दिपूर्ति के अवसरपर प्रकाशित अभिनंदन-ग्रंथ (१९६०) से उद्धृत किया गया है।]

महाराष्ट्र में आजतक अनेक शूर, राजनीतिज्ञ, पंडित, संत, कलाकार, साहित्यकार जैसे श्रेष्ठ पुरुष पैदा हो चुके हैं। 'महाराष्ट्र की भूमि' का यह गुण ही है ऐसा विधान किया जाए तो मुझे लगता है वह सत्य स्थिति के अनुरूप ही है।

इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं होगी कि संगीत के क्षेत्र में पं. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर महाराष्ट्र में आविर्भूत एवं भारत को अनायास प्राप्त एक भूषण है। संगीत के क्षेत्र में मैं उनका नाम लगभग पिछले २५-३० वर्षों से सुनता आया हूं। मैंने सपने में भी नहीं सोचा था कि कुछ वर्ष पूर्व उनसे मेरी पहचान होगी और उनके संपर्क का लाभ मुझे मिलेगा, बल्कि मेरा तो यह अनुभव था कि यह बात असंभव ही है। क्योंकि उनका कार्य-क्षेत्र उत्तर हिंदुस्तान में होने से महाराष्ट्र में उनका वास्तव्य बहुत ही कम रहा करता था। फिर भी शास्त्रीय संगीत की उनकी कीर्ति सुनकर मेरे मनमें यही मनीषा विद्यमान रहती थी कि मुझसे उनकी पहचान हो जाए और उनके सान्निध्य का लाभ मुझे प्राप्त हो। मुझे यह कहने में संतोष होता है कि सौभाग्य से आगे चलकर ऐसा संयोग भी जुड़ गया और उनके प्रति मेरे मन में जो आदर-भाव पैदा हो गया था वह हजार गुना बढ़ गया।

सन १९५३ में, कलाकारों की परीक्षा लेकर उनका उचित स्तर निर्धारित करने के लिए आकाशवाणी द्वारा जो समिति नियुक्त की गयी थी उसके उपाध्यक्ष की हैसियत से उनके नाम

का बहुत ही बोलबाला हुआ। चूंकि सन १९४७ से मैं आकाशवाणी पर गाता आया हूँ, मुझे उस कसौटी से होकर गुजरना क्रमप्राप्त ही था। किन्तु उक्त व्यवस्था के फलस्वरूप वातावरण कुछ दूषित-सा हो जाने से, उनके प्रति मेरे मन में जो धारणा थी उसे थोड़ा-सा धक्का पहुँच ही गया। मनुष्य प्राय: प्रवाहपतित ही होता है। अन्य लोगों की तरह मुझे भी लगा कि 'इन्हें कलाकारों की परीक्षा लेने का क्या अधिकार है?' और परीक्षा में शामिल होने के बदले मैंने सोचा कि आकाशवाणी पर बहिष्कार ही डाला जाए। किन्तु दस-बारह वर्ष तक संगीत का अभ्यास करके उसे जीवन से एकबारगी बहिष्कृत कर देनेका विचार मेरी प्रकृति को उतना ही कष्टप्रद लगा और मेरे विचारों ने पलटा खाया। मैंने उस कसौटी से होकर गुजरना तया किया, केवल एक ही विचार से कि कम-से-कम अपने दोष तो मालूम हो जाएं। मैंने यह सोचकर कि जिस विद्वान ने अपनी आयु के चालीस-पचास वर्ष संगीत के अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान आदि में गुजारे हों, वह अधिकार में निश्चय ही बड़े होंगे, केवल व्यावसायिक संगीत कलाकार नहीं होंगे। उनके विषय के कुविचारों को मैंने मन से हटा दिया और मैंने उन्हें सचमुच वैसा ही पाया। शास्त्रीय संगीत में रागों की विशेषताएं, उनका विस्तार, उनमें गाई जानेवाली बंदिशों का महत्त्व आदि का इतना गहरा और विस्तारपूर्वक अध्ययन उन्होंने किया था कि उनके मार्गदर्शन में यदि संगीत का सामान्य छात्र भी अध्ययन करे तो उस कला में वह नि:संदेह प्रभुत्व प्राप्त कर लेगा। कम से कम मिलावटी शास्त्रीय संगीत तो वह न तो गाएगा, न सुनेगा ही। कुछ लोगों की यह धारणा है कि 'संगीत' शास्त्र नहीं, बल्कि कला है और वह कला बंधनातीत हो तभी उसका विकास होगा, अन्यथा यदि उसे अधिक बंधन में जकड़ रखा जाए तो वह लुप्त होगी।

हीनता ग्रंथि का परिणाम

यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण एवं गहन है कि 'संगीत' शास्त्र है या कला, और यदि वह दोनों है तो शास्त्र पहले है या कला? इसपर आजतक अनेक विद्वानों एवं अधिकारी व्यक्तियों ने अपने अपने अलग अलग मत प्रदर्शित किए हैं, किन्तु इस प्रश्न का एक मात्र निश्चित उत्तर देना संभव नहीं है, क्योंकि उसमें सर्वप्रथम यह दूसरा महत्त्वपूर्ण मुद्दा उपस्थित होता है कि कला की व्याख्या अभी तक कोई भी साहित्यकार समाधानपूर्वक एवं सर्व सम्मत रूप में नहीं कर सका है। सभी विद्वानों के मतों के आधारपर निष्कर्ष निकाला जाए तो इतना ही कहा जा सकता है कि 'संगीत' को कुछ हदतक शास्त्र की अपेक्षा हुआ ही करती है। उस शास्त्र का निर्माण भी 'शास्त्र आवश्यक है' इस विचार से बुद्धिपुरस्सर रूप में नहीं किया गया है, बल्कि अनेक उच्च कोटि के कलाकारों के प्रत्यक्ष गायन का विश्लेषण एवं विवेचन करने के उपरांत उसमें सर्वसाधारण रूपरेखा यानी नियम दृष्टिगोचर होने के पश्चात् ही उसका उल्लेख किया गया है। अर्थात् प्रत्यक्ष गायन-कृति में वह अंतर्भूत था ही। भाषाशास्त्र या शब्दशास्त्र यानी व्याकरण भी भाषा के निरीक्षण के फलस्वरूप उसमें दृष्टिगोचर शास्त्र ही तो है। संगीत-कला को यदि बंधनातीत, यानी मुख्यत: रागों के नियमों से परे रखा जाए, तो मेरी राय में, उसका विस्तार या उद्धार तो दूर ही रहा, उल्टे उसकी अधोगति ही होगी। क्योंकि 'राग' (Melody) अपने भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्राण है और यही उसकी विशेषता है। यदि इसमें गायक ने स्वतंत्रता से काम लिया, दूसरे शब्दों में, यदि वह ताल स्वर के साथ किन्तु 'राग' याने रंजकत्व को

ही त्याग कर गाने लगे तो मुझे नहीं लगता कि उसके गायन को 'कला' कहना कोई पसंद करेगा।

यदि चार-पांच सालतक अध्ययन किए हुए छात्र ने कहा कि "रातंजनकर शास्त्र का चर्वित चर्वण करके संगीत के रस को नष्ट करनेवाले एक संगीतज्ञ हैं, उन्हें गायन-कला की माधुरी ज्ञात ही नहीं हुई है।" तो मुझ जैसा उस कला का एक जिज्ञासु यही कहेगा कि उस छात्र की संगीत की बुनियाद मजबूत नहीं है; क्योंकि उसकी जानकारी के पांच-दस रागों एवं उनमें आत्मसात् की हुई पंद्रह-बीस बंदिशों से ही वह अपने को कृतार्थ मानता है। उससे आगे थोड़ी-सी तानबाजी वह कर सकता हो तो वह अपने से परे किसी को भी नहीं मानेगा; उसका दृष्टिकोण हमेशा दूसरों की कला के विषय में अपने साथ तुलना करनेवाला ही होगा, यथा "इसके गले से तान ठीक नहीं निकलती, इसकी आवाज मधुर नहीं है, फलाने व्यक्ति का रागज्ञान अधूरा है।" आदि। उसकी अध्ययनशीलता लुप्त होती जाती है। संगीतकला के जिज्ञासु को सदैव अध्ययनशील वृत्ति का अवलंब करना चाहिए। अंधश्रद्धा या अंधानुकरण व्यर्थ है। इस कला में छात्रों के सामने विविध शंकाएं, अड़चनें आदि पैदा होती हैं। उनका निरसन गुरुजी के द्वारा कराकर उनके कहने और सिखाने के अनुसार रियाज और मेहनत करते हुए अपनी क्षमता के अनुसार कला को अर्जित करने का संप्रदाय अबतक चलता आया है, किंतु फिलहाल काल का प्रवाह पलट गया है।

सौ साल पहले शास्त्रीय संगीत कितना दुर्लभ था! किन्तु आज वही विपुल मात्रा में उपलब्ध हो गया है। यह निःसंदेह है कि इसका श्रेय सर्वथा स्व. विष्णु नारायण भातखंडे जैसे संगीतशास्त्रज्ञ एवं गायकवर्ग के अविस्मरणीय कार्य की ओर ही जाता है। पं. भातखंडेजी की ही धुरा का वहन श्री रातंजनकर निःस्वार्थ भाव से एवं अविश्रांत परिश्रम से अबतक करते रहे हैं। बहुजनसमाज के लिए कला मुक्त हो, उसमें उसे अभिरुचि पैदा हो और सर्वसाधारण श्रोतृवर्ग को उसका महत्त्व जंच जाए इस उद्देश्य से पं. भातखंडे एवं रातंजनकर ने इस कला को स्थिर एवं व्यवस्थित प्रणाली का स्थान प्राप्त करा दिया है। यह सब लिखनेका कारण इतना ही कहने के लिए है कि श्री रातंजनकर जी जैसे महाराष्ट्रीय गुणी सज्जन की सराहना करना तो दूर, किन्तु उनके विषय में अनुदार उद्गार सुनने में आएं यह बडे दुख की बात है! इस बात का कारण मुझे यही प्रतीत होता है कि श्री रातंजनकरजी के कार्य की प्रशंसा करने और उनके श्रेष्ठ एवं गुणी कलाकार होने की बात को स्वीकार करने में दूसरों के हीन होने की हीनता-ग्रंथि की भावना काम कर रही है। जो कुछ भी हो, मुझे तो लगता है कि श्री रातंजनकर के किए गए कार्य का एहसास महाराष्ट्र को न होना जितनी खेदजनक बात है, उतना ही महाराष्ट्रीय सर्वसाधारण समाज़ की प्रकृति का वह एक गर्हणीय पक्ष है! यहां मैं यह रेखांकित करना चाहता हूं कि पं. रातंजनकरविषयक उपर्युक्त बात मैं प्रत्यक्ष अनुभवोपरान्त कर रहा हूं।

भ्रांत कल्पनाएं

इसीलिए श्री रातंजनकर के बारे में मुझे जो अनुभव हुआ उससे थोड़े में लिखना चाहता हूं। सबसे पहले यहां उनके विषय में प्रसृत भ्रांत कल्पनाओं की सूची देता हूँ (इसका मूल, लगता है, सन १९५३ में आकाशवाणी की जांच-परीक्षा के समय उठ खड़े हुए तूफान में निहित है।):-

(१) श्री रातंजनकर जी घरानेदार गायक नहीं हैं, न ही उन्हें घरानेदार कला की तालीम ही प्राप्त है; (२) पोथीनिष्ठ गायक हैं; (३) वे कृति की अपेक्षा शास्त्र की ही चर्चा अधिक करते हैं; (४) वे दुराग्रही हैं; (५) उनके गायन में रस नहीं है; (६) उनमें व्यक्तित्व का अभाव है; (७) संगीत के क्षेत्र में वे दूसरों की अपेक्षा स्वयं को बहुत बड़ा समझते हैं; (८) दूसरों के दोष निकालने की उनकी जबर्दस्त प्रवृत्ति है; आदि। अब ये कुतर्क किस प्रकार निराधार हैं, इसे आगे अपने अनुभव के सहारे बताने की कोशिश करता हूँ।

अपनी आयु के ७ वें वर्ष से लेकर संगीत की संथा लेकर उन्होंने तीन-चार वर्ष के भीतर केवल बारह स्वरों का ज्ञान और उनपर इतना प्रभुत्व प्राप्त किया कि उनके स्वरज्ञान से स्व. भातखंडे जैसे गुणी एवं तज्ज्ञ पुरुष ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें नियमित रूप से कई वर्षतक स्वयं संगीत की तालीम दी। कई लोगों की यह धारणा है कि पं. भातखंडेजी भी स्वयं गायक नहीं थे किन्तु मुझे यहां यह स्पष्ट करना उचित लगता है कि श्री भातखंडेजी न केवल पंडित थे, बल्कि आला दर्जेके आवाजदार, घरानेदार गायक थे। उनका नाम जिन्होंने प्रत्यक्षत: सुना है ऐसे अनेक श्रोता आज भी मौजूद हैं। यह विधान मैंने अपने परमपूज्य गुरुजी पं. राजारामबुवा पराड़करजी से अनेक बार सुना है। इसके सिवा, जो व्यक्ति स्वयं गा नहीं सकता, क्या यह इतनी गहराई के साथ संगीत-शास्त्र एवं संगीत-कला के विषय में अधिकार के साथ लिख पाएगा? नितांत असंभव है। उनके विपुल लेखन से विचारकों को निश्चय ही विश्वास हो जाएगा कि पं. भातखंडे न केवल शास्त्रकार हैं, बल्कि उत्तम श्रेणी के गायक भी होने चाहिए। हाँ, यह बात सही है कि पं. भातखंडेजी ने संगीत-कला को अपनी आजीविका का साधन नहीं बनाया अथवा किसी भी कार्य के हेतु केवल द्रव्योपार्जन के लिए महफिलबाज़ी नहीं की है, न ही दूसरों को केवल खुश करने के लिए उन्होंने गाया है। इसीलिए मुझे लगता है कि उनके बारेमें कुछ लोगोंने यह गलत धारणा बना ली है। यह बात उनसे परिचित कोई भी सज्जन बता सकेगा कि पं. भातखंडेजी ने स्वयं कई मशहूर घरानों के गायकों का गंडा बँधवाकर प्रत्यक्ष तालीम भी पा ली है। अस्तु। ऐसे इस महापुरुष ने स्वयं श्री रातंजनकरजी को कई वर्ष तक तालीम देकर, उन्हें महफिलबाज गवैये की भी प्रत्यक्ष तालीम प्राप्त हो उस इद्देश्य से उन्हें बड़ौदा में मरहूम उस्ताद फैयाज हुसेन खां के पास पांच वर्ष तक तालीम प्राप्त करा देनेकी व्यवस्था की। इसके अलावा संगीत-शिक्षा के आरंभ में उन्हें पतियाला घरानेके प्रसिद्ध कालेखां के शिष्य स्व. कृष्णभट होनावर और तत्पश्चात् ग्वालियर घरानेके प्रसिद्ध बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर जी के शिष्य पं. अनंत मनोहर जोशी जी की तालीम भी प्राप्त हुई। ऐसा होनेपर भी वे घरानेदार गायक नहीं हैं अथवा उनतक घरानेदार संगीत-कलाकी तालीम नहीं पहुंच पाई ऐसा कहना सत्य के विपर्यास की चरम सीमा कहनी चाहिए।

फिर उनपर आक्षेप है कि वे पोथीनिष्ठ गायक हैं। मुझे संदेह है कि ऐसा आक्षेप करनेवाले लोगोंने स्वयं इस आक्षेप का मतलब समझा है या नहीं। ग्रांथिक गायक का मेरा अभिप्रेत अर्थ तो यह है कि (१) ग्रंथ में लिखी हुई बातों के आधार पर, याने केवल शास्त्र के आधार पर गानेवाला अथवा (२) ग्रंथ में देखकर, पढ़कर, कंठगत न किया हुआ गायक अथवा (३) केवल संगीत-शिक्षा का व्यवसाय करनेवाला, यानी गायन-शिक्षक। जिन मार्मिक रसिकोंने उनका संगीत-गायन निष्पक्ष भावसे सुना हो उन्हें तुरंत ज्ञात होगा कि उपर्युक्त तीनों आरोप नितांत झूठे और निराधार हैं। मेरी राय में राग के नियमों का निर्वाह करके, किन्तु एक ही राग में

भिन्न भिन्न समय पर अलग अलग रंग भर देनेवाले तथा उस राग में अभिनव कलात्मक दृष्टिसे विस्तार करनेकी कितनी गुंजाइश है, सो आसान ढंग से समझा देनेवाले जो चंद कलाकार हैं उनमें श्री रातंजनकर की गिनती करनी होगी। पुस्तक में देखकर गीत कहनेका मतलब यह है कि पं. रातंजनकरजी को बंदिशें कंठगत नहीं हैं। अलग अलग ढंग की सैंकड़ों रचनाओं का जिन्होंने निर्माण किया तथा उन्हें लोकप्रिय भी बनाया है, यही नहीं तो उनमें से कुछ तो समयानुसार अल्पावधि में, उन्हें कंठगत करने या ग्रांथिक विद्या की भला क्या जरूरत है? श्री. रातंजनकरजी ने शिक्षा का यानी विद्यादान का व्यवसाय अवश्य किया है किन्तु उसके साथ ही उन्होंने यह सावधानी भी बरती है कि संगीत की कलात्मता को बिलकुल धक्का न पहुंच जाए। शिक्षण-व्यवसाय के साथ ही साथ उन्होंने उत्कृष्ट गान-क्रिया का व्यवसाय भी चालू रखा है और था, जिसका प्रमाण उन लोगों को अवश्य प्राप्त हुआ होगा जिन्होंने लखनौ, दिल्ली, ग्वालियर, बड़ौदा, बनारस, बंबई, पुणे, कलकत्ता, मद्रास आदि स्थानोंपर संपन्न उनका गाना सुना है। राग-विस्तार अपनी बुद्धि एवं प्रतिभा का भाग है। और उनके इसी गुण की ओर कम ध्यान दिए जाने का कारण यह है कि वह आलोचकों की बुद्धि से परे होता है। इसलिए फिर 'अंगूर खट्टे हैं' कहने के सिवा कोई चारा नहीं रहता।

विद्यादानी गायक

शास्त्र की चर्चा के विषय में कहना हो, तो उनके द्वारा किए गए प्रश्नों का उत्तर न दे सकने से मिलनेवाला आसान मार्ग और उत्तर यह है कि वे 'शास्त्र की चर्चा अधिक करते हैं' कहना। दुराग्रह का आरोप भी उसी प्रकार का है। चर्चा करते समय आदमी स्वभावत: अपना तर्क प्रस्तुत करके उसे समझा देनेका प्रयत्न करता है और वह समझ में न आनेपर समझनेवाला दुराग्रही ठहरता है। मेरा अपना अनुभव बिलकुल भिन्न है। मैंने भी उनसे बिलकुल खुले दिल से चर्चा की है। तत्त्व के लिए उनके साथ झगड़ा भी किया है। किन्तु बादमें जब ठंडे दिमाग और निर्मल मन से उनके विधान का विचार किया तब उन बातों के सत्य होने तथा उनके गहन अध्ययन का मुझे एहसास हुआ। अर्थात् विरोधकों को उनका कहना जँचे या न जँचे यह सवाल व्यक्तिगत मान-अपमान और महानता को मानने या न मानने पर निर्भर होता है। अगला मुद्दा यह है कि उनके गाने में रस नहीं है। अपनी आयु के ४० वर्ष तक जिस व्यक्ति ने लोगों के गले से गला मिलाकर उन्हें संगीत की शिक्षा प्रदान की और ऐसा करते वक्त इस बात का विचार तक नहीं किया कि वह बिलकुल नौसिखुआ है, उसको स्वरज्ञान नहीं है, उसका गला अपने जैसा नहीं चलता, इ. बल्कि उन्होंने पत्थरों को भी आकार दिया, रूप दिया, जो यह भी नहीं जानते थे कि स्वर किस चिड़िया का नाम है, उन्हें भी अच्छी तरह तैयार किया, और इस प्रकार एक नहीं, दो नहीं, बल्कि पचास-साठ से भी अधिक छात्रों को उन्होंने शिक्षा प्रदान कर उन्हें तैयार किया, ऐसे व्यक्ति को रसहीन गायक कहना केवल विचारशून्यता ही कहनी पड़ेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि कोई भी ख्यातनाम गायक कम से कम एक वर्ष उनकी तरह पढ़ाकर दिखाए, सिखाने में उनके जैसा कष्ट उठाए और साथ ही महफिल में भी गाए, तो श्रोताओं को ज्ञात हो जाएगा कि श्री रातंजनकरजी की तुलना में उनके गाने में एक दशांश भी रस नहीं है।

महफिलबाजी करना आसान है किन्तु विद्यादान का कार्य बहुत ही दुष्कर एवं मुश्किल है।

लोगोंके गले से गला मिलाकर अपने कंठ को खराब करके लोगों में संगीत के प्रति अभिरुचि पैदा करना कितना बड़ा त्याग है। किन्तु इतना सोच-विचार भला कौन करता है? यह तो दुनिया का न्याय ही है कि त्याग करनेवाला मूर्ख साबित होता है।

घर की मुर्गी...

अब इस आक्षेप पर विचार करें कि वे दूसरों के दोषों की ओर ही ध्यान देते रहते हैं। कोई कलाकार अगर उनसे उसके अपने स्वयं के गायन के बारे में उनका प्रामाणिक मत पूछ रहा हो और उसमें उन्हें कोई दोष दिखाई दे तो वह उसे दूर करे इस शुद्ध एवं अच्छे हेतु से वे कहा करते हैं - "भई, यह दोष है, ऐसा नहीं गाया जाता।" उदाहरण के तौर पर वे उनमें से चार-पांच बंदिशें भी सुनाकर उसे समझा देंगे। किन्तु सुननेवालों ने यदि उससे गलत अर्थ लिया तो इसमें दोष किसका है? यदि यह कहा जाए कि दोष निकालना उनका व्यसन है, तो उनके द्वारा संपन्न किये हुए कार्य का संगीत को योगदान प्राप्त न हुआ होता। उन्होंने अपना समय यदि इन मामूली बातों में खर्च किया होता तो वे इतना बड़ा कार्य कर भी नहीं सकते थे। जिस मनुष्य की कार्यनिष्ठा महाराष्ट्र के बाहर गौरवपात्र सिद्ध हुई है वह लोगों के दोष निकालकर नहीं, बल्कि उसमें उन्होंने अपना तन मन धन खर्च किया है इसलिए।

बाह्य व्यक्तित्व से संपन्न होना मनुष्य के बस की बात नहीं है। और यदाकदाचित् परमात्मा ने उन्हें वह दिया होता तो लोगों ने ऐसा भी कहा होता कि उनका बाह्य व्यक्तित्व तो अच्छा है, किन्तु उनमें विद्वत्ता नहीं है। आलोचकों की कल्पना कहां से कहा जा पहुंचेगी इसका कोई ठिकाना नहीं है। अस्तु। अपने यहां एक कहावत है। - 'घरकी मुर्गी दाल बराबर!'

इस प्रकार ऐसी कई बातें हैं, जो लिखी जाएँ उतनी थोड़ी ही होंगी। वस्तुत: मैंने उनकी पद्धति से गाना नहीं सीखा है अथवा उनके साथ मेरा विशेष संपर्क भी नहीं रहा। किन्तु जितने अल्प संपर्क में ही उनके आचार-विचार मैंने जान लिए उनके किए हुए कार्य को देखा, कि ऐसा लगता है कि महाराष्ट्र इस संगीतज्ञ ज्ञानेश्वर की आरती उतार उनके मन को पहचान ले, और ऐसी परिस्थिति पैदा करे कि जिनसे उनके हाथों महाराष्ट्र के लिए कुछ न कुछ तो ठोस कार्य संपन्न हो। महाराष्ट्रीय जनता से मेरी यही विनम्र प्रार्थना है। इस लेख के मूल में दूसरों को हीन समझकर केवल उन्हींको महानता प्रदान करने का मेरा इरादा नहीं है, बल्कि उनके जैसे ही और भी कई व्यक्ति होंगे, अज्ञात व्यक्ति होंगे, उन्हें एक साथ लाकर उनके ज्ञान का लाभ समाज को प्राप्त करा दिया जाए यही मेरा अभिप्राय है। कविवर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के शब्दों में— "पास ही रे हीरे की खान। भटकता कहां नादान!"

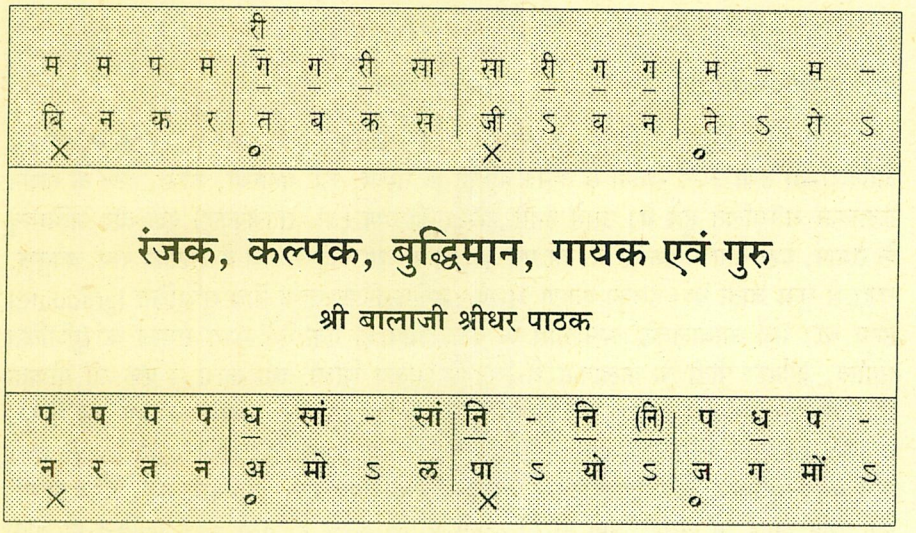

[१९२६ से संगीत के शिक्षक (मैरिस कॉलेज में और बाद में प्रयाग विश्वविद्यालयमें)। आचार्य रातंजनकरजी के शिष्य। उसके पूर्व पं. राजाभैय्याजी से शिक्षा पाई। प्रस्तुत लेख अण्णासाहब के षष्ठिपूर्ति के अवसर पर प्रकाशित अभिनंदन-ग्रंथ से लिया गया है।]

अपने बाल्यकाल में १९२० से १९२६ तक ग्वालियर के 'माधव संगीत महाविद्यालय' में गायन की शिक्षा प्राप्त करते समय अनेक बार श्रद्धेय पूज्य गुरुवर्य स्व. पं. भातखंडेजी के मुख से उनके प्रिय शिष्य डॉ. रातंजनकरजी के विषय में प्रेमोद्गार सुनने के कारण उनसे मिलनेकी तथा देखनेकी तीव्र इच्छा हृदय में विराजमान थी। सौभाग्य से यह अवसर शीघ्र ही मुझे प्राप्त हुआ। सन् १९४२ के 'अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन, लखनौ,' में मुझे कुछ सहाध्यायियों के साथ हमारे पूज्य गुरुजी स्व. राजाभैय्या साहब की संरक्षता में सम्मिलित होने की विद्यालय की ओर से आज्ञा हुई। उस समय मुझे एक साथ दो सुयोग प्राप्त होने के कारण अत्यधिक आनंद हुआ। एक संगीत सम्मेलन देखने का, जिसकी मुझे कुछ भी कल्पना न थी, दूसरा वहां मुझे श्री बाबूराव (डॉ. रातंजनकरजी) जिस नाम से पंडितजी इन्हें पुकारते थे, को मिलने का।

लखनौ पहुंचकर जब हम लोग गु. राजाभैय्याजी के साथ गु.पं. भातखंडेजी के दर्शन करने उनके निवासस्थान पर गये, वहां एक पाश्चात्य वेषभूषासंपन्न तरुण युवक को पंडितजी के समीप बैठे देखा। पंडितजी के पैर छूकर हमारे बैठते ही उन्होंने कहा "यह मेरा 'बाबू', जिसके विषय में मैं तुम्हें ग्वालियर में कहता था।" मैं श्री बाबू की ओर श्रद्धायुक्त, प्रेम भरे नेत्रों से किन्तु आश्चर्य से देखता ही रह गया। ग्वालियर में तथा उनको समक्ष देखने के पूर्व मैंने अपने हृदय में (कलाकार के नाते) आपका जो चित्र खींचा था तथा वेषभूषा के विषय में अपनी बाल्य-बुद्धि से जो धारणा की थी उससे कहीं भिन्न पाया। डॉ. रातंजनकरजी ने जब स्मितयुक्त प्रेमभरे शब्दों में आत्मीय भाव से हमारे विषय में हमारे गुरुजी से पूछताछ की तथा हम लोगों का परिचय

प्राप्त किया, मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे मैं बिछड़े हुए ज्येष्ठ भ्राता से मिल रहा हूँ।

वह संस्मरणीय गायन

उस संगीत सम्मेलन में रामपुर, जयपुर, अलवार, धौलपुर, इंदौर, बड़ौदा, ग्वालियर, महियर आदि राज्यों तथा अन्य स्थानों से अनेक संगीत के धुरंधर, रथी महारथी, भीष्म, द्रोण के समान कलाकार सम्मिलित हुवे थे। उसमें हमारे मास्टर श्रीकृष्ण (डॉ. रातंजनकर) एक वीर अभिमन्यू के समान, यहां वहां चमक रहे थे। हर एक कलाकार तथा श्रोतृ-समाज में आपका नाम, कौतुक, श्रद्धा से सुना जाता था। इसका कारण आपका संगीत-निपुणता के साथ सुशिक्षित (graduate) होना था। सर्व आबालवृद्ध कलाकारों के मध्य आप ही एक ऐसे सभ्य समाज के सुशिक्षित सुयोग्य, वर्तमान पीढ़ी के कलाकार थे जिनकी शालेय शिक्षा तथा कला में एक-सी योग्यता थी। यह उस समय एक कुतूहल, आदर तथा अभिमान का विषय था। उस सम्मेलन में मुझे तथा मेरे सहाध्यायी मित्र श्री गोविंद नारायण नातू को डॉ. रातंजनकर जी के साथ तानपूरे लेकर गाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उस समय आपके गाये हुए राग, देसी तथा भीमपलासी, की ध्वनि आज भी स्मरण आते ही मेरे कानों में गूंज उठती है, तथा हृदय पुलकित हो जाता है।

सन १९२६ में ग्वालियर की शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् मैंने पूज्य पंडितजी को बम्बई में पत्र लिखकर उनके पास उच्च शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। उससे उनका अपने प्रिय शिष्य की कला की योग्यता पर कितना विश्वास, कितना संतोष था, यह स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है। पंडित जी ने मुझे लिखा था "मैं गायक नहीं, मेरा कंठ तैयार नहीं, तुम्हें मेरे पास आने से कोई लाभ नहीं होगा। तुम्हें किसी अच्छे कलाकार के सान्निध्य में रहकर तालीम लेनी चाहिए। उसके लिए तुम्हें लखनौ जाकर श्री रातंजनकर के पास अध्ययन करना चाहिए; वे ही सुयोग्य व्यक्ति हैं जो तुम्हारी सहायता कर सकते हैं।"

सौभाग्य से यह मेरी इच्छा शीघ्र ही पूर्ण हुई। इसी वर्ष पूज्य पंडितजी ने मुझे लखनौ मैरिस म्यूझिक कॉलेज में शिक्षक के रूप में बुला लिया।

व्रतस्थ अध्यापक

मुझे गुरुवर्य पूज्य स्व. पं. भातखंडेजी तथा डॉ. रातंजनकरजी के साथ लखनौ में पांच छह वर्ष एक ही भवन में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस अवधि में मेरी डॉ. रातंजनकरजी से घनिष्ठता हुई, जिस कारण आपके व्यक्तित्व, आपका संगीत क्षेत्र में अधिकार, आपका स्वभाव, शिक्षा-पद्धति आदि बातों का पूर्ण परिचय हुआ। उसीके आधार पर संक्षेप में अपनी योग्यतानुसार वर्णन करने का प्रयास कर रहा हूँ। मैं करीब ९/१० वर्ष लखनौ में रहा। उस काल में मुझे आपकी गुरु-श्रद्धा, गुरु-भक्ति कितनी अटल है इसका अनेक बार साक्षात्कार हुआ। डॉ. रातंजनकरजीने लखनौ में पंडितजी की आज्ञा के ही कारण करीब तीस वर्ष तक निरपेक्ष अल्प वेतन पर सेवा की। वर्तमान समय के पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त तथा सुधारक समाज में इतनी गुरु-भक्ति विरले ही लोगों में दिखाई देगी। लखनौ की संस्था स्थापित होने के पश्चात् २०/३० वर्षों तक आपने स्वयं को उसे अर्पण कर दिया। संस्था के ही कारण आपने गृहस्थी-जीवन को पूर्ण रूप से नहीं अपनाया। संस्था के आर्थिक संकट के समय आपने अल्प वेतन पर कार्य

किया, किन्तु इस विषय में कभी भी आप असंतुष्ट नहीं दिखाई दिए। आपसे शिक्षा ग्रहण करने के हेतु समस्त भारत अपितु सीलोन, बर्मा आदि स्थानों से विद्यार्थी आकर शिक्षा ग्रहण कर वापिस गए। विद्यार्थियों से किसी प्रकार की भेंट आपने कभी स्वीकार न की। संगीत की निरपेक्ष सेवा के व्रत के कारण आपने किसी संगीत सभा सम्मेलन से गायन शुल्क नहीं ग्रहण किया। कॉलेज के होस्टल के एक कमरें में रहकर दिन-रात विद्यादान देना ही आपका दैनिक कार्यक्रम रहा। आपके जीवन में अनेक समय आपको उच्च वेतन पर अनेक संस्थाओं ने आमंत्रित किया किन्तु अपने गुरु के लगाये पौधे को अपने त्याग रूपी जल से सींचकर वृक्ष रूप में फलने फूलने तक आपने उसे छोड़कर जाना उचित नहीं समझा। मेरे लखनौ के ९-१० वर्ष के निवास के समय में अनेक बार आपका गायन श्रवण करने का तथा आपसे कुछ शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुवा। मैंने आपके मुख से यमन बिलावल से लेकर नट-नारायण, भंकार, दीपक आदि प्रचलित तथा अप्रचलित सभी रागों को सुना है। आप सभी रागों को समान अधिकार से गाते हैं। पूज्य स्व. पंडितजी का क्रमिक पुस्तकों का पांचवा, छठा भाग सन १९३६ के लगभग प्रसिद्ध हुआ, किन्तु इन पुस्तकों में प्रकाशित गीतों को आपके मुख से मैंने अनेक वर्ष पूर्व कंठस्थ सुना था। कोई ऐसा विलम्बित या द्रुत ख्याल नहीं जो आपको स्मरण न हो। उस समय हम लोगों को आश्चर्य होता था कि डॉ. रातंजनकरजी ने इन सब गीतों की शिक्षा कब प्राप्त की होगी! कब शालेय तथा कॉलेज के विषयों का अध्ययन किया होगा! संगीत-शास्त्र के रत्नाकर, नाट्यशास्त्र, रागतत्त्व-विबोध, लक्ष्य-संगीत, आदि ग्रंथों का कब अवलोकन किया होगा! इतनी अल्प अवस्था में इन सब वस्तुओं का अध्ययन तथा उसपर प्रभुत्व यह दैवी कृपा से ही हो सकता है।

उनकी गायन कला

एक कलाकार का गायन के आलाप, तान, बोलतान, लयकारी इन अंगों में से किसी एक या दो पर विशेषाधिकार रहता है। अन्य अंग उसके पोषक रहते हैं। मैंने डॉ. रातंजनकरजी से अनेक बार भिन्न भिन्न अंगों की विशेषता के साथ एक ही राग का गायन सुना है। आपका गायन सुनकर यह दृढ़तापूर्वक कहना कठिन है कि आपकी गायनशैली में अमुक अंग की विशेषता है। जितना वक्र राग अथवा मिश्र राग होगा उतनी ही आपकी प्रतिभा अधिक रूप में विकसित होती जाती है। समप्रकृतिक रागों को बचाते हुवे तिरोभाव करते हुवे विविध अंगों द्वारा भिन्न भिन्न कर्ण-मधुर रचनाद्वारा जब राग को आप सुशोभित कर दिखाते हैं, उस समय विद्वान श्रोता आपकी कल्पकता एवं बुद्धिमत्ता को देख आश्चर्यचकित होकर आनंद-विभोर हो जाते हैं।

मुझे अपने इस जीवन-काल में अनेक उत्तम उत्तम कलाकारों को श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किन्तु राग की प्रकृति, उसके अंग आदि का संपूर्ण ज्ञान जितना डॉ. रातंजनकरजी के गायन में स्पष्ट दिखाई देता है उतना शायद ही किसी कलाकार के गायन-वादन में दृष्टिगोचर हुआ होगा। डॉ. रातंजनकर किस घराने की शैली के प्रतिनिधि हैं यह निश्चित रूप से प्रतिपादन करना सरल नहीं है। यद्यपि वे आग्रा घराने के, अर्थात् स्व. खांसाहब फैय्याजखां के, प्रमुख शिष्य हैं, किन्तु आपके गायन में सभी शैलियों का आभास समय समय पर होता जाता है। जिस समय जिस शैली के Mood में आप हों उसी शैली के अंग की प्रधानता गायन में दिखाई देती है। अनेकों का आक्षेप है कि डॉ. रातंजनकर की ताल अंग में कमजोरी है, किन्तु जिन्होंने

आपके आलाप, तान, बोलतान, सरगमांग की विभिन्न लयों द्वारा रचना का अवलोकन किया है, वे कदापि इस आक्षेप से सहमत नहीं होंगे। यह सत्य है कि आपको तबला-वादक की लड़त, उछल-कूद पसंद नहीं है। इस क्रिया से मन का संतुलन, विचार-श्रृंखला भंग हो राग-रचना की माला के गुंफन में विघ्न उपस्थित हो जाता है। आपके गायन का वैशिष्ट्य, रंजकता में, आपकी रागरचना में, कल्पकता में, बुद्धिमत्ता में है तथा उसीमें आप डूबे रहते हैं।

अद्वितीयता का प्रमाण

संगीत-शास्त्र संबंधी लेख आपने इन २०/२५ वर्षों में समय समय पर 'संगीत', 'लक्ष्यसंगीत' तथा अन्य संगीत-पत्रिकाओं में प्रकाशित किये हैं। उनके द्वारा आपका अध्ययन तथा उस पर विशेष अधिकार प्रमाणित हो जाता है। मेरी यह धारणा है कि क्रियात्मक कला तथा उसके शास्त्र दोनों पर समान योग्यता रखनेवाला पुरुष वर्तमान समय में हिन्दुस्थानी संगीत में आप ही एक मात्र हैं। आपकी गेय रचना की ग्रंथों में वर्णन किए लक्षणों से तुलना की जाय तो डॉ. रातंजनकर एक सच्चे वाग्गेयकार हैं, यह प्रमाणित हो जाता है। 'अभिनव-गीत मंजरी' ग्रंथ का जिन्होंने अध्ययन किया है तथा इन गीतों की शिक्षा प्राप्त की है वे अवश्य इस बात से सहमत होंगे कि आपकी गेय रचनाएँ, चीजों की बंदिशें उच्च कोटि की हैं। अनेक रचनाओं की तो कोई तुलना ही नहीं हैं। जिन रागों में विलम्बित तथा द्रुत ख्याल उपलब्ध नहीं थे, उनमें शब्द, स्वर-सौंदर्यपूर्ण रचनाओं का आविष्कार कर संगीत-समाज पर आपने उपकार ही किये हैं। आपके स्वयंरचित गीत प्रत्यक्ष गायन के लिए कितने अनुकूल हैं इसका प्रमाण गायक ही दे सकते हैं।

आपके स्वभाव का पूर्ण परिचय आपके शिष्य, मित्रवर्ग तथा जिनसे आपका घनिष्ठ संबंध आया है उन्हींको विशेष रूप से हुआ है। आपके हृदय में विद्यादान, संगीत की सर्वांगीण उन्नति तथा समाज की निरपेक्ष सेवा की इच्छा सदा विराजमान रहती है। इसके अनेक प्रमाण दिए जा सकते हैं। आप भातखंडे पद्धति के सच्चे समर्थक तथा एकमेव अनुयायी हैं। अतएव अनेक समय संगीतज्ञों में आपके विषय में अशुद्ध धारणाएं उत्पन्न हुई हैं, किन्तु गुरु के कार्य तथा पद्धति में दृढ़ विश्वास के कारण विरोधियों के सम्मुख आप कभी झुके नहीं। वर्तमान समय के अनुकूल आत्मप्रशंसा, आत्मप्रतिष्ठा, उसके लिये योग्य-अयोग्य प्रचार, संगीत-क्षेत्र में गुट-बंदी, पद्धति-प्रचार के लिये सत्य-असत्य योजनाएं आदि से आपको अत्यंत घृणा है। पद्धति के प्रचार में इससे कुछ बाधा भी उत्पन्न हुई। प्रचार के शस्त्र से असत्य आगे बढ़ा किन्तु इसकी आपने किंचित् भी परवाह नहीं की। आप सदा यही कहते रहे हैं कि वह दिन दूर नहीं जब समाज का सुशिक्षित वर्ग सत्य-असत्य, योग्य-अयोग्य को पहिचान जाएगा। आपके विनयशील स्वभाव के कारण अनेक समय आपको कष्ट भी हुए किन्तु आपने कभी विरोधियों का कठोरता से प्रतिकार नहीं किया।

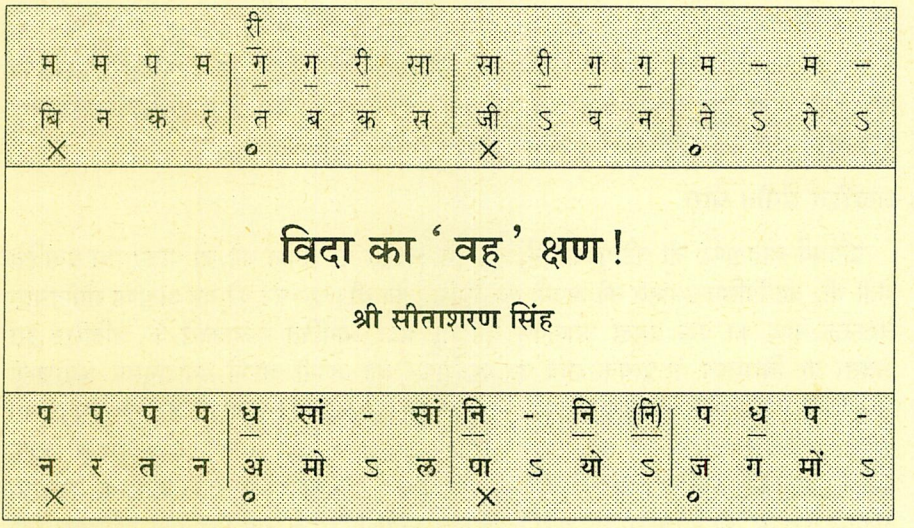

[लखनऊ विश्वविद्यालय के एम्.ए. एवं भातखंडे संगीत विद्यापीठ के बी. म्यूज. (संगीत विशारद)। लगभग सात-आठ वर्ष भातखंडे संगीत महाविद्यालय में श्री. रातंजनकर तथा अन्य शिक्षकों के पास गायनकला का अभ्यास। एम्.ए. उत्तीर्ण करके लखनऊ के शासकीय टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में कुछ वर्ष अध्यापन-कार्य। प्रस्तुत लेख अण्णासाहब की षष्टिपूर्ति के अवसर पर प्रकाशित अभिनंदन-ग्रंथ से लिया गया है।]

सन १९५५ की बात है। भातखण्डे संगीत विद्यापीठ, लखनऊ, के छात्र-छात्राओं एवं अध्यापकों में एक सनसनी-सी फैल गई थी। सब एक दूसरे से सशंकित हो कर पूछ रहे थे "क्या सचमुच प्रिंसिपलसाहब जा रहे हैं?" बात सच थी। विद्यालय के प्रिंसिपल डाक्टर श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर जिन्हें शासन की ओर से 'पद्मभूषण' की उपाधि से अलंकृत किया जा चुका था, विद्यालय छोड़कर जा रहे थे। पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। किसी को साहस भी नहीं हो रहा था कि स्वयं जाकर प्रिंसिपलसाहब से इसका स्पष्टीकरण कर ले। डर था, कहीं वह भी यह न कह दें, "हां, यह बात सच है कि मैं जा रहा हूं।" सच पूछिए तो कोई इसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था कि प्रिंसिपलसाहब भातखण्डे विद्यापीठ छोड़कर कभी जा भी सकते हैं। विगत २७ वर्षों में प्रिंसिपलसाहब का व्यक्तित्व विद्यापीठ की नस नस में कुछ ऐसा व्याप्त हो गया था कि प्रत्येक व्यक्ति के कल्पना-चित्र में स्वयं प्रिंसिपलसाहब ही विद्यापीठ थे और प्रिंसिपलसाहब के जाने का अर्थ था विद्यापीठ का जाना। उन्होंने भातखण्डेजी की इस धरोहर की शान में अपना सब कुछ बलिदान कर दिया था। विद्यालय के एक कमरे में ही उन्होंने अकेले रह कर अपने यौवनकाल के २७ वर्ष बिता दिये थे। परिवार बम्बई में था। चौबीसों घंटे विद्यालय में रहना, विद्यालय की ही प्रगति की चिन्ता में मग्न रहना और छात्र-छात्राओं को सिखाने में अपना अस्तित्व ही मिटा देना शायद उनका ध्येय था।

जिस समय प्रिंसिपलसाहब की कक्षा चल रही होती, दूर से ही मालूम हो जाता। छात्र-छात्राओं

की एक अच्छी-खासी भीड़ मंत्रमुग्ध-सी खड़ी शिक्षण के आनन्द में मग्न दूर से ही नजर आ जाती। तानपूरे की मधुर ध्वनि में समाए हुए प्रभावशाली स्वरोच्चार जैसे आने-जाने वालों को बाँध लेते। और यदि कभी किसी कार्यवश प्रिंसिपलसाहब दो चार दिनों के लिए बाहर चले जाते तो जैसे विद्यालय का सूना वातावरण स्वयं इस बात की सूचना दे देता।

अखंडित संगीत धारा

प्रतिवर्ष भातखण्डे जी की पुण्यातिथि के शुभ अवसर पर संगीत की जो पावनधारा प्रवाहित होती थी, वह प्रिंसिपलसाहब की अपनी एक विशिष्ट देन थी। ७२ घंटे की यह अखण्ड संगीतधारा लखनऊ नगर का एक प्रमुख आकर्षण बन गई थी। आमंत्रित कलाकारों के अतिरिक्त इस अवसर पर विद्यालय के प्रत्येक छात्र एवं अध्यापक को अपनी अपनी मर्यादानुसार श्रद्धाञ्जली के रूप में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत करने का सुअवसर मिलता था। श्रोताओं के लिए इस उत्सव में कोई टिकट या पास नहीं होता था। फलत: सहस्रों की संख्या में लोग इस धारा के प्रवाह का आनन्द लेने आते थे। इस सम्बन्ध में एक बार एक सज्जन ने सुझाव दिया कि कार्यक्रम अखण्ड ७२ घंटे का न रक्खा जाए क्यों कि इसका कार्यकर्ताओं के और विशेषकर प्रिंसिपलसाहब के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, किन्तु प्रिंसिपलसाहब अड़िग रहे। उनका उत्तर था - "हमारे कदम आगे की ओर बढ़ने चाहिए और आप की सलाह है कि हम अपना बढ़ा हुआ कदम भी वापस ले लें?.... और फिर आप तो जानते हैं कि हमारी यह संगीत-धारा संगीत-उपासकों के लिए एक तीर्थ का रूप धारण कर चुकी है। भारत के कोने-कोने से लोग इसके वार्षिक पर्व की प्रतीक्षा में रहते हैं। क्या आप इन संगीत-प्रेमियों को यूँ ही निराश कर देंगे?"

अतएव जबतक प्रिंसिपलसाहब विद्यालय में रहे, संगीत के सहस्रों प्रेमियों ने यह तीर्थ-लाभ किया। पूरे ७ घंटे का कार्यक्रम पहले से ही छापकर जनता में बाँट दिया जाता था और श्रोतागण अपनी रुचि और सुविधानुसार बड़ी संख्या में उपस्थित हो जाया करते थे। शास्त्रीय संगीत की ७२ घंटे की यह अद्वितीय सभा प्रति वर्ष १९ सितम्बर को प्रात:काल ६ बजे प्रिंसिपलसाहब के गायन से आरम्भ होती थी और २२ सितम्बर को प्रात:काल ६ बजे उन्हींके गायन से समाप्त होती थी। उत्तर प्रदेश के उन दिनों के मुख्य मंत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द राज्यकार्य में अति व्यस्त होते हुए भी प्रति वर्ष २२ सितम्बर को लगभग ३-३० बजे प्रात:काल इस सभा में अवश्य पधारते थे। शायद वह प्रिंसिपलसाहब का उस समय का गायन सुनने का लोभ संवरण नहीं कर पाते थे। धन्य थी वह घड़ी! ऐसा प्रतीत होता जैसे स्वयं भातखण्डेजी की आत्मा प्रिंसिपलसाहब में एकाकार होकर समस्त श्रोताओं पर छा रही हो। ऐसे ही अपूर्व क्षण की एक सरस घटना याद आ रही है। लगभग ४-३० बजे थे। प्रिंसिपलसाहब ललित के द्रुत ख्याल के गायन में तल्लीन थे। श्रोतागण आनन्द से झूम रहे थे। अकस्मात् देखा गया कि एक ३ या ४ वर्ष का बालक, जो अपनी माँ की गोद में सोया हुआ था, उठकर खड़ा हो गया और आँखें बन्द किये हुए ही ख्याल की लय फुदकने-सा लगा। यूं तो उस अलौकिक वातावरण में सभी श्रोता आनन्दविभोर होकर फुदक ही रहे थे, परंतु अन्तर केवल यह था कि बालक अर्धनिद्रावस्था में होने के कारण शरीर से भी फुदक रहा था जब कि अन्य श्रोता सभा-धर्म की ओर से सतर्क रहने के कारण केवल मन ही मन में फुदक रहे थे।

विदा समय का गायन

आज उन्हीं प्रिंसिपलसाहब के जाने की खबर ने सम्पूर्ण विद्यालय में एक सनसनी पैदा कर दी थी। प्रत्येक छात्र-छात्रा चिन्तामग्न थे। सबके मन में एक ही शंका समाई हुई थी कि अब विद्यालय का क्या होगा? कौन इतना समर्थ व्यक्ति है जो प्रिंसिपलसाहब के स्थान की पूर्ति कर सकेगा? अतीत की कुछ स्मृतियाँ आज एक टीस-सी पैदा कर रही थीं।

गणेशचतुर्थी के अवसर पर एक बार एक ऐसे लोकप्रिय गायक का कार्यक्रम हुआ जिसकी विशेषता थी फिरत की तान। ४५ मिनट में उस गायक ने तीन राग सुनाए। तत्पश्चात् प्रिंसिपलसाहब को गाना था। उन्होंने उस दिन अपने आपको बिलकुल उस गायक की शैली में ढाल दिया। लगभग आध घंटे तक राग परज को उसी शैली में गाते रहे, मानो उस कलाकार के सम्मान में उसीकी शैली पेश कर रहे हों। श्रोता यह देख कर दंग थे कि यह शैली उस कलाकार की अपेक्षा प्रिंसिपलसाहब के कण्ठ में कहीं अधिक आकर्षक लग रही थी। इसके बाद अपनी गायकी से उसी परज राग को उन्होंने सवा घंटे तक इतनी सुन्दरता से बरता कि लगता था जैसे १५ मिनट ही गाया हो।

इसी प्रकार एक सभा में एक ऐसे विख्यात कलाकार के बाद प्रिंसिपलसाहब का गाना हुआ जो तीन सप्तक की सपाट तानों का बड़ा प्रेमी था, यद्यपि उसके ये सप्तक के स्वर नकली कण्ठ के थे। उस दिन शायद अतिथि-सम्मान के नाते प्रिंसिपलसाहब ने तीन सप्तक की सपाट तान की गायकी में ही गाना उचित समझा। अन्तर केवल यही था कि प्रिंसिपलसाहब का स्वरोच्चार अतिमन्द्र से अतितार तक स्पष्ट ही नहीं वरन् हृदयग्राही था। गा क्या रहे थे मानो उदाहरण देकर समझा रहे थे कि सपाट तान यदि तीन सप्तक की ली जाए, तो ईमानदारी से ली जाए, या यूं कहिये कि शास्त्रोक्त ली जाय।

आज उन्हीं प्रिंसिपलसाहब की बिदाई की सूचना से जैसे सम्पूर्ण विद्यालय विक्षुब्ध-सा हो गया था। यदि थोड़ा-बहुत संतोष था तो इस बात का कि वे इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय के उपकुलपति हो कर जा रह थे। किन्तु निश्चित रूप से विदा की बात मालूम हुई जब केवल दो दिन शेष थे। जल्दी जल्दी में छात्र और प्राध्यापकों ने मिल कर एक विदाई-सभा का आयोजन किया। इस सभा में कुछ छात्रों ने तो जैसे हृदय ही निकाल कर रख दिया। कुछ ने रातोरात जग कर ऐसी कविता बना डाली कि जिसे सुन कर सभा शोकविह्वल हो उठी। कविताकार ने प्रश्न किया था कि "दो चार दिनों की अनुपस्थिति तो हम किसी प्रकार झेल लेते थे पर अब तो आप विद्यालय छोड़ कर ही जा रहे हैं। अब हमारा क्या होगा?" इसका जो उत्तर प्रिंसिपलसाहब ने दिया था उसे कोई कभी नहीं भूल सकेगा। उनके शब्द थे- "मेरे जाने के बाद आपका विद्यालय, आपके सहपाठी, आप के अध्यापक सभी आपके साथ होंगे केवल मैं नहीं रहूँगा। इस प्रकार आपको तो केवल एक की जुदाई सहन करनी पड़ेगी पर मेरा तो सब कुछ छूट रहा है। मुझे तो धैर्य बँधानेवाला भी कोई नहीं होगा! ऐसी दशा में मेरा क्या हाल होगा इस पर भी आप ने कुछ ध्यान दिया है?" इस उत्तर ने सब को जैसे स्तब्ध कर दिया। सबकी पीड़ा जैसे एकदम उड़ गई यद्यपि आँखें सबकी भर आईं।

भातखण्डे की जय!

अंत में विदा का वह क्षण भी आ पहुँचा। चारबाग स्टेशन का प्लैटफार्म नम्बर ५ भातखण्डे

संगीत विद्यापीठ के छात्र, छात्राओं से खचाखच भरा हुआ था। सबके हाथ में एक सुन्दर माला थी। प्रिंसिपलसाहब कम्पार्टमेन्ट के द्वार पर खड़े थे। एक एक व्यक्ति आगे बढ़ता जाता और हार पहनाकर चरण-रज माथे पर लेता जाता, यहांतक कि मालाओं का एक बड़ा भारी ढेर लग गया। यदि प्रिंसिपलसाहब इन मालाओं को उतार-उतारकर रखते न जाते, नामुमकिन था कि सारी मालाएँ उन्हें पिन्हाई जा सकतीं। मैंने अपने जीवन-काल में बहुत-सी बिदाइयाँ देखी हैं। बड़े से बड़े अफसरों और नेताओं को बड़ी से बड़ी भीड़ द्वारा गगनभेदी नारों के साथ विदा होते देखा है; पर आज की विदा का यह क्षण कुछ और ही था। इतनी बड़ी भीड़ होनेपर भी एक विलक्षण शान्ति थी। सबों के मुँह पर जैसे ताले पड़े हुए थे। शून्य भविष्य की कल्पना ने जैसे सब को संज्ञाहीन कर दिया था। यकायक सीटी बजी और गाड़ी धीरेसे रेंग उठी। सब की दृष्टि गुरुजी पर थी। सब देखा, जैसे किसी अद्‌भुत शक्ति से प्रेरित होकर गुरुजी का दाहिना हाथ अति वेग से हवा में उठा और साथ ही हर्षातिरेक में उनकी ओजस्वी वाणी सुनाई दी 'भातखण्डेजी की'.... 'जय'! इस नाद ने जैसे सारे प्लेट-फार्म को हिला कर रख दिया। यकायक सब के चेहरे प्रसन्नता से खिल उठे जैसे इस नारे ने उनकी समस्या हल कर दी हो। इस नारे के पीछे गुरुजी का सन्देश स्पष्ट था कि भावावेश में हमें कर्तव्य नहीं भूल जाना चाहिए और संगीत की जो ज्योति भातखण्डेजी ने जगाई उसे सदा प्रज्वलित रखने के लिए हमें अपना सब कुछ बलिदान करने को तैयार रहना चाहिये।

धन्य था वह विदा का क्षण!

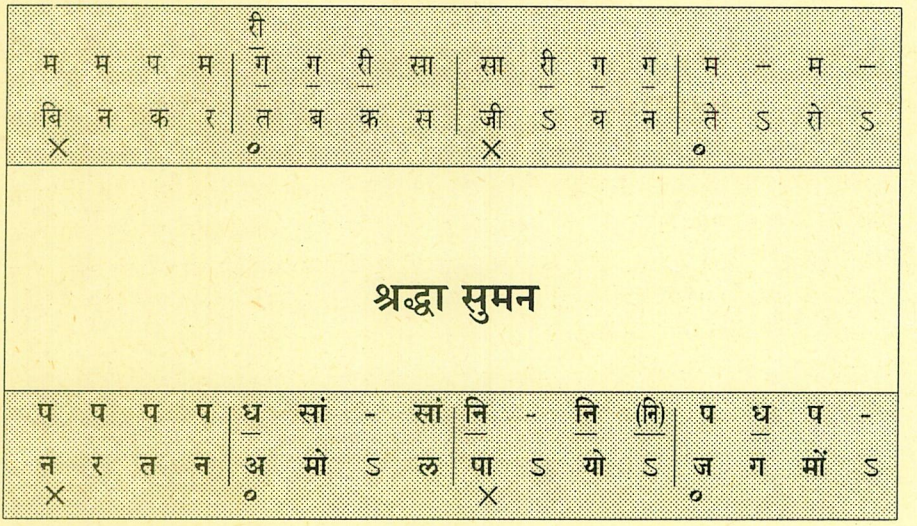

श्री विष्णु नारायण से प्रसाद पा
शिष्य हुए 'श्रीकृष्ण' मुदित,
स्वर्णिम आभा ललाट अंकित
सुर का सूरज हो गया उदित।
मन वीणा मधुर बजाई
संगीत-सुधा शुचि लहराई।

कोटिश: नमन शत शत प्रणाम
'श्रीकृष्ण नारायण' भव्य नाम
निज योग - साधन तपस्या
से पाया है पुण्य धाम
रत्न समान "रत्नजंकर" की
स्मृति सकल उभर आई
संगीत-सुधा शुचि लहराई।

हे सरस्वती के वरद पुत्र!
तुम श्रुति-सागर में सरसाए
संगीत-सरित का ले प्रवाह
गायन के निर्झर झरवाए
शास्त्रों की परंपरा बरती
सत् ज्ञान सुर-सरि उतराई
संगीत-सुधा शुचि लहराई।

आजीवन सेवा का व्रत ले
अमरत्वामृत का पान किया
गीतों की रचनाओं द्वारा
तुमने भावों का दान दिया
श्रद्धा के सुमन समर्पित हैं
हो सुगंध सबको सुखदाई
संगीत-सुधा शुचि लहराई

पद विभूषित स्वयं श्री
श्री कृष्ण नारायण रत्नजंकर
संगीत गगन के मार्तण्ड
स्वर प्रेमी जन के अभ्यंतर
गुरु चरणों में नत मस्तक हो
'कूला' की मति ने गति पाई
संगीत-सुधा शुचि लहराई।

कमला श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापिका (संगीत शास्त्र एवं व्यवहार)
भातखण्डे हिंदुस्तानी संगीत महाविद्यालय,
लखनऊ